साईं बुल्लेशाह

राधास्वामी सत्संग ब्यास

65

65

साईं बुल्लेशाह

जे. आर. पुरी
टी. आर. शंगारी

राधास्वामी सत्संग ब्यास

साईं बुल्लेशाह

—प्रो. जनक पुरी

डॉ. टी. आर. शंगारी

हिन्दी अनुवाद : प्रो. आर. पी. प्रेमी

प्रकाशक :
सेवासिंह,
सेक्रेटरी,
राधास्वामी सत्संग ब्यास,
डेरा बाबा जैमलसिंह,
ज़िला अमृतसर [पंजाब]

© Radha Soami Satsang Beas-1985.

पहली बार	1985	2,000
दूसरी बार से छटी बार	1985 से 1994 तक	49,000
सातवीं बार	1995	20,000

मुद्रक : सरताज प्रिंटिग प्रेस, जोशी एस्टेट, टांडा रोड, जालन्धर शहर ।

समर्पण

सतगुरु और सतगुरु के प्यारों को !

कौन आया पहन लिबास कुड़े।
तुसीं पुच्छो नाल इखलास कुड़े।
हत्थ खूंडी मोढे कंबल काला, अख्खियां दे विच वस्से उजाला।
चाक नहीं है कोई मतवाला, पुच्छो बिठा के पास कुड़े।
चाकर चाक न इस नूं आखो, इह न ख़ाली गुझड़ी घातो।
विछड़िया होया पहली रातों, आया करन तलाश कुड़े।
न इह चाकर चाक कहीं दा, न इस ज़रा शौक महीं दा।
न मुश्ताक है दुध दहीं दा, न उस भुख्ख प्यास कुड़े।
बुल्ला शहु लुक बैठा ओहले, दस्से भेत न मुख से बोले।
बाबल वर खेड़िआं तों टोले, वर मांहढा मांहढे पास कुड़े।
कौन आया पहन लिबास कुड़े।
तुसीं पुच्छो नाल इखलास कुड़े।

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से 7

लेखकों की ओर से 9

साईं बुल्लेशाह : जीवन 11—34

1. रूहानी उपदेश 35
2. बन्धन मुक्ति का साधन 49
3. हमाओस्त 65
4. प्रियतम की खोज 77
5. रूहानी अभ्यास 89
6. कलमा या शब्द 107
7. सतगुरु या हादी 135
8. विद्या और आध्यात्मिकता 153
9. कर्मकाण्ड और आध्यात्मिकता 165
10. उपसंहार 185

भाषा एवं शैली 193

साईं बुल्लेशाह की वाणी 199

वाणी का सम्पादन 201

1. कुछ चुनी हुई प्रसिद्ध काफ़ियाँ 203
2. बारहमाह 321
3. सीहरफ़ी 327
4. गंढाँ 329
5. अठवारा 333
6. दोहे 337

वाणी अनुक्रमणिका 341

संदर्भ-ग्रन्थ 343

प्रकाशक की ओर से

कुछ वर्ष पूर्व डेरा के प्रकाशन-विभाग की ओर से हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी की आज्ञा से 'पूर्व के सन्त' नामक पुस्तक-माला को आरम्भ किया गया था। प्रसन्नता का विषय है कि इस योजना के अन्तर्गत अब तक सन्त तुकाराम, तुलसी साहिब, पलटू साहिब, मीराबाई, सन्त नामदेव, दादू दयाल, गुरु रविदास, गुरु नानक साहिब एवं कबीर साहिब के जीवन और आध्यात्मिक उपदेश पर आधारित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जो सत्संगियों और जिज्ञासुओं में बहुत प्रिय हुई हैं। अब इसी कड़ी के अन्तर्गत भारत और पाकिस्तान के प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त साईं बुल्लेशाह के जीवन, उपदेश और वाणी पर आधारित यह रचना संगत को भेंट की जा रही है।

पुस्तक के लेखकों का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। प्रो. जनकराज पुरी उत्तरी भारत के दर्शन-शास्त्र के प्रसिद्ध प्राध्यापकों में से हैं। आप पहले महेन्द्रा कालेज, पटियाला में दर्शन-शास्त्र के स्नातकोत्तर विभाग के अध्यक्ष थे और बाद में पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला से दर्शन-शास्त्र के विभागाध्यक्ष के रूप में सेवा-निवृत्त हुए। आप उपरोक्त पुस्तक-माला के अधीन ही सन्त नामदेव, तुलसी साहिब और गुरु नानक साहिब पर पुस्तकें लिख चुके हैं। आपका फ़ारसी साहित्य, विशेष रूप से इस भाषा के सूफ़ी सन्तों की वाणी का बहुत गहन अध्ययन है, जिसके उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर दर्शन होते हैं।

डॉ. तिलकराज शंगारी, डी. ए. वी. कालेज, जालन्धर में पंजाबी के स्नातकोत्तर विभाग के अध्यक्ष के रूप में कई वर्षों से बाबा फ़रीद, साईं बुल्लेशाह, हज़रत सुल्तान बाहू और अन्य सन्तों की वाणी पढ़ा रहे हैं। आपने 'गुरु नानक का हुक्म सिद्धान्त' विषय पर शोध-प्रबन्ध लिख कर पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ से पी. एच-डी. की उपाधि प्राप्त की है।

आपने संसार के प्रमुख धर्मों का गम्भीर अध्ययन किया है। डॉ. कृपालसिंह 'ख़ाक' के सहयोग से लिखी गई आपकी पुस्तक 'सन्तमत विचार' और डॉ. खाक, डॉ. गुरदीपसिंह भंडारी तथा डॉ. मनमोहन सहगल के सहयोग से लिखी गई आपकी रचना 'नाम-सिद्धान्त' और 'उपदेश राधास्वामी' आध्यात्मिक साहित्य में मील-पत्थर बन गई हैं।

इस पुस्तक-माला का प्रमुख प्रयोजन यह स्पष्ट करना है कि पूर्ण सतगुरु किसी धर्म, देश, काल और जाति में क्यों न आये हों, उनकी परम सत्य की व्याख्या और उससे मिलाप करने की युक्ति समान होती है। भाषा और वर्णन का अन्तर होना स्वाभाविक है, परन्तु उनके द्वारा वर्णन किये गए सत्य में कोई अन्तर नहीं होता। पुस्तक के विद्वान लेखकों ने इस दृष्टि से साईं बुल्लेशाह की वाणी के भिन्न-भिन्न पक्षों को गहनता और विस्तार-पूर्वक वर्णित किया है और इसका अन्य अनेक सन्तों एवं दरवेशों की वाणी से भी तुलनात्मक अध्ययन किया है। इससे पूर्व के इस महान सूफ़ी सन्त की वाणी को आध्यात्मिक दृष्टि से समझने में विशेष सहायता मिलती है।

डेरा बाबा जैमलसिंह, एस. एल. सोंधी
ज़िला अमृतसर (पंजाब) सेक्रेटरी,
18 नवम्बर, 1985. राधास्वामी सत्संग ब्यास।

लेखकों की ओर से

साईं बुल्लेशाह की वाणी में हमारी शुरू से ही दिलचस्पी रही है, परन्तु इसको गहराई में जाकर विचार करने और इसके सिद्धान्त का क्रमानुसार मूल्यांकन करने से, इसमें से रूहानी भाव के जो विशाल-भण्डार देखने में आये हैं, उनसे हमें आश्चर्यजनक प्रसन्नता हुई है। हम महाराज चरनसिंह जी के ऋणी हैं, जिन्होंने हमें इस कामिल फ़कीर की वाणी सम्बन्धी इस प्रकार की खोज करने की प्रेरणा दी और पग-पग पर हमारा मार्ग-दर्शन किया।

अब तक साईं बुल्लेशाह की वाणी को अधिकतर साहित्यिक दृष्टि से ही परखा जाता रहा है। हज़रत अनवर अली रोहतकी ने इसके कुछ पहलुओं को आध्यात्मिक दृष्टि से समझाने का प्रारम्भ किया और बाद में भी यह क्रम जारी रहा, परन्तु साईं बुल्लेशाह की वाणी के आधार पर उनके सूफ़ी-सिद्धान्त और जीवन-दर्शन की क्रमानुसार, विस्तृत व्याख्या बहुत कम हुई है। यह पुस्तक किसी सीमा तक इस कमी को पूरा करेगी।

सन्तों-फ़कीरों की वाणी को साहित्यिक दृष्टि से विचार करने वाले विद्वान इसको एक ऐतिहासिक कृति के रूप में ही देखते हैं। इस प्रकार इस वाणी पर पड़े बाहरी प्रभावों का भी अध्ययन किया जाता है। उदाहरणत: सन्तों-फ़कीरों की रचना पर वेदान्त, इस्लाम, सूफ़ीमत, भक्ति-लहर आदि का प्रभाव देखने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रसंग में यह बात अवश्य सम्मुख रखना चाहिये कि पूर्ण सन्तों की वाणी में मिलते समान तत्वों का आधार बाहरी प्रभावों के स्थान पर समान अन्तर्मुख आध्यात्मिक अनुभव होता है। पूर्ण पुरुष अपने विचार पुस्तकों या व्यक्तियों से उधार नहीं लेते। उन्होंने अमली रूहानी साधना में सत्य के साक्षात् दर्शन किये होते हैं जिस कारण उनके सत्य के वर्णन में समानता होना स्वाभाविक है।

साईं बुल्लेशाह की वाणी के अध्ययन में एक बड़ी समस्या पाठ-भेद की है। कई स्थानों पर पाठ में बड़े सूक्ष्म एवं महत्वपूर्ण अन्तर हैं क्योंकि आपके अपने जीवन-काल में इस वाणी की कोई प्रामाणिक पाण्डुलिपि नहीं लिखी गई और सारी वाणी बाद में कव्वालों से एकत्रित की गई। इसके बावजूद इस वाणी में बहुतायत ऐसी सामग्री की है जिसकी प्रमाणिकता के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता और जिसके आधार पर आपके अनुभव और उपदेश की एक रमणीय झांकी के दर्शन किये जा सकते हैं।

साईं बुल्लेशाह की वाणी आध्यात्मिक दृष्टि से तो महान है ही, साहित्यिक दृष्टि से भी इसको कला की उच्चतम प्राप्तियों में सम्मिलित किया जा सकता है। वाणी के साहित्यिक गुणों का अध्ययन पुस्तक की मूल योजना का भाग न होने के बावजूद इसकी भाषा और शैली के बारे में एक संक्षिप्त वर्णन पुस्तक में सम्मिलित कर दिया गया है।

पुस्तक की तैयारी में समय-समय पर अवकाश-प्राप्त उपकुलपति श्री नारंग से जो प्रेरणा और सहायता मिली है, उसके लिये हम उनके विशेष रूप से धन्यवादी है। हम प्रकाशन-विभाग के साथियों के भी आभारी हैं, जिनसे हमें अमूल्य सुझाव प्राप्त हुए हैं। डॉ. कृपालसिंह 'खाक' ने पुस्तक के संशोधन में जो सहायता दी है, उसके लिये हम उनके ऋणी हैं। हमारे मित्र, प्रो. राजेन्द्रपाल 'प्रेमी' ने पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद अत्यन्त सरल तथा सरस भाषा में किया है जिसके लिये हम उनके हार्दिक आभारी हैं।

राधास्वामी कालोनी, ब्यास
ज़िला अमृतसर [पंजाब]

जे. आर. पुरी,
टी. आर. शंगारी।

साईं बुल्लेशाह

जीवन

साईं बुल्लेशाह, जो बुल्लेशाह कादरी शतारी के नाम से प्रसिद्ध हैं,[1] सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के कामिल सूफ़ी फ़कीर हुए हैं। आपका निर्मल, पवित्र और पाक रहन-सहन था। उच्च श्रेणी की आध्यात्मिक प्राप्ति के कारण हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि अलग-अलग धर्मों में आस्था रखने वाले लोग आपसे एक जैसा प्यार करते हैं। विद्वानों एवं दरवेशों ने आपको 'शेख-ए-हर-दो आलम' (दोनों लोकों का शेख), 'मरदे हकानी' (सत्य या परमात्मा का सेवक), 'पोशीदा राज़ों का वाकिफ़कार' (गुप्त भेदों का ज्ञाता) आदि कई सम्मान-सूचक उपाधियाँ प्रदान की हैं। आपको पंजाब का सबसे बड़ा सूफ़ी कवि कहा जाता है तथा आपकी रचना को 'सूफ़ी कलाम के शिखर' का दर्जा दिया गया है। आपके व्यक्तित्व तथा आपकी वाणी के कई पहलुओं की महान सूफ़ी सन्तों— मौलाना रूम, शम्स तबरेज़ आदि से तुलना की गई है। आपके जीवन-काल से आज तक सारे उत्तरी भारत तथा उस सारे क्षेत्र में, जो अब पाकिस्तान कहलाता है, आपके व्यक्तित्व और वाणी के प्रति अगाध प्रेम और श्रद्धा प्रकट की जाती है।

साईं बुल्लेशाह का असली नाम अब्दुल्ला शाह था। अब्दुल्ला शाह से बुल्लाशाह या बुल्लेशाह हो गया। "प्यार से आपको कोई बाबा बुल्लेशाह कहता है, कोई साईं बुल्लेशाह तथा कोई केवल बुल्ला।"[2] आपकी 'चालिसवीं गंढ'[3] के अन्त में आपके असली नाम के बारे में सीधा संकेत

1. **A Histoy of Sufism in India,** Saiyad Athar Abbas Rizvi. Vol. II ; p. 445 (Hereafter quoted as **History of Sufism in India)**

2. डॉ. गुरदेवसिंह : **'कलाम बुल्लेशाह'** पृ. 12.

3. गंढ का अर्थ गाँठ है। यह एक प्रकार का पंजाबी काव्य-रूप है।

मिलता है :

हुन इक अलाह आख के[1] तुम करो दुआईं।
पिया ही सभ हो गया अबदुला नाहीं।

बुल्लेशाह के जीवन-काल के विषय में कई मतभेद हैं। परन्तु आपका समय अधिकतर सन् 1680 से 1757-58 तक माना जाता है। आपके जन्म-स्थान के विषय में भी इतिहासकारों और विद्वानों में दो मत हैं। कुछ विद्वान आपका जन्म रियासत बहावलपुर (पाकिस्तान) के गाँव 'उच गलानियाँ' में हुआ मानते हैं।[2] उनका कहना है कि बुल्लेशाह के छः महीने के होने तक[3] उनके माता-पिता इसी गाँव में रहते रहे, परन्तु इसके पश्चात् किसी कारण वे गाँव मलकवाल (तहसील साहीवाल) में चले गये, जहाँ उनके वंशज पहले से ही रह रहे थे। उनको इस गाँव में आये अभी थोड़ा समय ही हुआ था कि 'पांडोके' नामक गाँव के स्वामी को अपने गाँव की मसजिद के लिये एक मौलवी की आवश्यकता पड़ी और वह मलकवाल के लोगों की सिफ़ारिश पर बुल्लेशाह के पिता, शाह मुहम्मद दरवेश को पांडोके ले आया। पांडोके की मसजिद के मौलवी के अतिरिक्त उन्हें गाँव के बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देने का कार्य भी सौंप दिया गया।

इस बात से तो सभी विद्वान सहमत हैं कि बुल्लेशाह के माता-पिता का पैतृक गाँव उच गलानियाँ ही था और वे वहाँ से ही पहले मलकवाल में और बाद में पांडोके में आकर बस गये। परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि बुल्लेशाह का जन्म उसके माता-पिता के पांडोके आने के बाद में हुआ था। यह गाँव 'पांडोके भट्टियाँ' के नाम से प्रसिद्ध है। यह कसूर (पाकिस्तान) से लगभग चौदह मील दक्षिण-पूर्व में एक प्रसिद्ध कस्बा है। कस्बे की वर्तमान ख़्याति में साईं बुल्लेशाह के नाम का भी हाथ है। कहा

1. कह कर।

2. मौलाना बख़्श कुश्ता, डॉ. लाजवन्ती रामा कृष्णा तथा डॉ. फ़कीर मुहम्मद ने 'खज़ीना-तुल-अश्फीआ' में प्राप्त सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है।

3. कुछ विद्वानों का मत है कि छः वर्ष के होने तक।

जाता है कि साईं बुल्लेशाह के पूर्वजों में सैयद जलालुद्दीन बुखारी तीन सौ वर्ष पहले 'सुर्ख-बुखारे' से मुलतान आये और हज़रत शेख़ ग़ौस बहाउद्दीन ज़करिया मुल्तानी के द्वारा बैंत होकर[1] उच गलानियाँ में आकर रहने लगे। बुल्लेशाह के दादा सैयद अब्दुर्रज़ाक उनके ही वंशज थे। इसका अर्थ यह हुआ कि एक ओर बुल्लेशाह का वंश सैयद होने के कारण हज़रत मुहम्मद के साथ जुड़ा हुआ था तथा दूसरी ओर सूफ़ी विचार-धारा और परम्परा के साथ उनका सदियों पुराना सम्बन्ध था।

बुल्लेशाह के पिता शाह मुहम्मद दरवेश को अरबी, फ़ारसी और कुरान शरीफ़ का अच्छा ज्ञान था। आप आध्यात्मिक झुकाव वाले नेक दिल मनुष्य थे। कहा जाता है कि परिवार में बुल्लेशाह के साथ उसकी अपनी बहन का सबसे अधिक स्नेह था, जिसने उन्हीं की तरह कुंआरी रह कर संयम और भक्ति से जीवन व्यतीत किया। बहन और भाई दोनों पर पिता के उच्च चरित्र का प्रभाव था, जिसकी नेकी के कारण उसको दरवेश कह कर आदर दिया जाता था। आज भी बुल्लेशाह के पिता का मज़ार पांडोके भट्टियाँ में विद्यमान है। प्रति वर्ष उनके मज़ार पर उर्स लगता है और रात को बुल्लेशाह की काफ़ियाँ गाई जाती हैं। इस प्रकार पिता और पुत्र दोनों की बड़ाई एक-दूसरे में मिलजुल कर एक ऐतिहासिक याद और एक लोकप्रिय परम्परा का रूप धारण कर गई है।

बुल्लेशाह का बचपन पांडोके में अपने पिता की देखरेख में व्यतीत हुआ। आपने प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के अन्य बच्चों की भाँति अपने पिता से ही प्राप्त की। इसके बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये आपको क़सूर भेजा गया, जो उन दिनो इस्लामी शिक्षा का केन्द्र था।

कसूर में हज़रत गुलाम मुर्तज़ा और मौलाना मुहीउद्दीन जैसे उच्चकोटि के उस्ताद मौजूद थे। इन शिक्षकों की ख़्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। बुल्लेशाह ने भी कसूर में रह कर हज़रत गुलाम मुर्तज़ा से उच्च शिक्षा प्राप्त की। बुल्लेशाह में ऐसी बौद्धिक और चारित्रिक विशेषताएँ

1. नामदान लेकर; सूफ़ी मत में मुर्शिद या सतगुरु से नामदान लेने को बैत होना कहा जाता है।

मौजूद थीं, जिनके कारण उन्होंने ऐसे योग्य शिक्षकों की संगति से पूरा-पूरा लाभ उठाया।

अनेक ऐतिहासिक उद्धरणों में बुल्लेशाह को अरबी और फ़ारसी का उच्चकोटि का विद्वान माना गया है। उनकी वाणी में भी अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उनका इस्लामी और सूफ़ी धर्म-ग्रन्थों का बड़ा गहन और विशाल अध्ययन था। जब बाद में उनकी परमात्मा से अन्तर में लिव लग गई तब बाहरी ज्ञान एक नये रूप में चमकने लगा। परन्तु इस सहज ज्ञान की प्राप्ति के लिये बुल्लेशाह को एक लम्बे संघर्ष में से गुज़रना पड़ा। यह प्राप्ति कामिल मुर्शिद (पूर्ण सतगुरु) की संगति में पहुँच कर ही हुई। परन्तु धर्म-ग्रन्थों के पाठ ने बुल्लेशाह के मन में एक चिनगारी पैदा कर दी और जिस सत्य की बड़ाई के आश्चर्यजनक वर्णन बुल्लेशाह ने धर्म-ग्रन्थों में पढ़े, उसके दर्शन की तड़प उसके हृदय में भड़क उठी। यह तड़प और खोज ही बुल्लेशाह को कामिल मुर्शिद हज़रत शाह अनायत क़ादरी के द्वार पर खींच कर ले आई।

हज़रत अनायत शाह अपने समय के कमाई वाले कादरी सूफ़ी फ़कीर थे। ऐतिहासिक दृष्टि से कादरी सूफ़ियों का सम्बन्ध इससे पूर्व बगदाद में हुए सूफ़ी सन्त अब्दुल कादिर जीलानी (1077-78 से 1166 ई.) के साथ है। हज़रत जीलानी को 'पीर दस्तगीर' या 'पीरान पीर' कह कर भी सम्मानित किया जाता है। बुल्लेशाह ने स्वयं संकेत दिया है कि हमारा 'पीरों का पीर' बगदाद में हुआ है परन्तु मेरा सतगुरु लाहौर शहर का है :

पीरां पीर बगदाद असाडा, मुरशद तखत लाहौर।
ओह असीं सभ इक्को कोई, आप गुड्डी आपे डोर।

हज़रत जीलानी के कथनों पर आधारित दो पुस्तकें— 'अल फतह-अल-रब्बानी' और 'फतूह-अल-गैब' बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें आपने बाहरमुखी कर्मकाण्ड के स्थान पर हृदय की सफ़ाई और ख़ुदा की बन्दगी पर ज़ोर दिया है।[1] आप कहते हैं कि नेकी और बदी एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। एक शाखा में कड़वा फल लगता है और दूसरी में मीठा।

1. **History of Sufism in India**, Vol. I, p. 84-85.

'बुद्धिमत्ता कड़वा फल त्याग कर मीठा खाने में है।' आपने यह भी कहा है कि नफ़स (मन) या ख़ुदी (अहं) के विरुद्ध लड़ा गया जेहाद (धार्मिक युद्ध) तलवार से लड़े गए जेहाद से बहुत ऊँचा स्थान रखता है। इससे ख़ुद-परस्ती (अहं) और शिरक (रचयिता के स्थान पर रचना की पूजा) जैसी अप्रत्यक्ष बुत-परस्ती (मूर्ति-पूजा) पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।[1] शेख जीलानी सच्चा सूफ़ी उसे मानते हैं जो संसार का त्याग करने की अपेक्षा स्वयं गृहस्थ जीवन व्यतीत करता हुआ माया से निर्लिप्त रहे ताकि दूसरे लोग भी उसके आदर्श से लाभ उठा सकें।[2]

भारत में कादरी सूफ़ी सम्प्रदाय का प्रभाव तीन शताब्दियों बाद 1432 ई. में मुहम्मद ग़ौस नामक सूफ़ी दरवेश द्वारा पहुँचा। हज़रत मुहम्मद ग़ौस पहले बहावलपुर में आकर ठहरे और बाद में उनका उपदेश दूर-दूर तक फैल गया।

पंजाब के सूफ़ी दरवेश हज़रत मियां मीर (1550-1635) कादरी सम्प्रदाय के थे। प्रसिद्ध है कि गुरु रामदास जी ने अमृतसर में हरि-मन्दिर साहिब की नींव साईं मियां मीर जी से ही रखवाई थी। यह भी कहा जाता है कि जब मुगल बादशाह जहांगीर ने पाँचवीं पातशाही श्री गुरु अर्जुनदेव जी को कई प्रकार के कष्ट पहुँचाये तो हज़रत मियां मीर ने गुरु साहिब से कहा कि यदि आपका हुक्म हो तो मैं लाहौर से दिल्ली तक की ईंट से ईंट बजा दूँ। गुरु साहिब ने कहा कि यह काम तो हम भी कर सकते हैं परन्तु हर हालत में मालिक के भाणे में रहना चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि मियां मीर का गुरु-घर से बहुत प्यार था और गुरु-घर में भी उनका बहुत सम्मान था।

हज़रत मियां मीर का प्रभाव तत्कालीन मुगल सम्राटों पर भी था तथा औरंगज़ेब के अजातशत्रु भाई दारा शिकोह को भी कादरी सम्प्रदाय का अनुयायी माना जाता है।[3] दारा शिकोह ने मियां मीर और कादरी सम्प्रदाय की बड़ी प्रशंसा की है। वह कहता है कि हज़रत मियां मीर बाल-ब्रह्मचारी

1-2. **History of Sufism in India**, Vol. I. p. 84-85.

3. डॉ. जीतसिंह शीतल, **बुल्लेशाह**, पृ. 16.

थे और सुमिरन, विशेष कर अजपा-जाप के प्रेमी थे। कादरी सम्प्रदाय के विषय में दारा शिकोह[1] लिखता है :

> कादरी सन्त त्याग द्वारा आन्तरिक सोई हुई आत्मिक शक्तियों को जगाने में विश्वास रखते थे।
>
> कादरी सम्प्रदाय किसी भी प्रकार के रीति-रिवाजों में उतना विश्वास भी नहीं रखता था जितना अन्य सूफ़ी सम्प्रदाय—चिश्ती, सुहरावर्दी आदि रखते थे।
>
> कादरी सम्प्रदाय बाहरमुखी मुसलमानी भेख और शरीयत आदि में विश्वास नहीं रखता।
>
> इस मत के अनुसार मनुष्य सन्त, पीर या गुरु द्वारा ही परमात्मा को मिल सकता है और परमात्मा सतगुरु के रूप में संसार में प्रकट होता है।

इससे कादरी सूफ़ियों के हृदय की विशालता और विद्वान व्यक्तियों पर उनके गहरे प्रभाव का पता लगता है। इस मत के संस्थापक पीर जीलानी ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'फतूह-अल-ग़ैब' में सूफ़ी सिद्धान्त के जिन अंगों की गिनती की है, उनमें मुनाजात (प्रभु की स्तुति), रज़ा, सबर, एकान्त और फ़क्र के साथ हृदय की उदारता को भी विशेष स्थान दिया गया है। वास्तव में आरम्भ से ही कादरी सूफ़ी सम्प्रदाय के दरवेश अपने उदार-हृदय, सहनशीलता और नम्रता के साथ-साथ विद्वत्ता, आचरण की पवित्रता और रूहानी पहुँच के लिये विशेष तौर से सम्मानित किये जाते थे। अपने समय में हज़रत मियां मीर और साईं अनायत शाह की महिमा और प्रसिद्धि का सिक्का भी सब ओर चलता था।

हज़रत अनायत शाह कादरी (मृत्यु 1728 ई.) के जन्म की तिथि के विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं, परन्तु आपकी एक पाण्डुलिपि से पता लगता है कि सन् 1699 ई. में आपका स्वास्थ्य अच्छा था। आप कादरी सम्प्रदाय के आदरणीय और कमाई वाले फ़कीर तथा उच्चकोटि के विद्वान लेखक थे। आपने फ़ारसी में मार्फ़त की कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें से

---

1. कृपालसिंह, पंजाबी दुनिया : बुल्लेशाह अंक, पृ. 176.

'दस्तूर-उल-अमल', 'इस्लाह-उल-अमल', 'लताइफ-ए-ग़ैविया' और 'इशारतुल-तालबीन' विशेष तौर से प्रसिद्ध हैं। आपने 'दस्तूर-उल-अमल' में सात रूहानी पड़ावों का वर्णन किया है। प्राचीन हिन्दू ऋषि-मुनि भी हंस (गुरुमुख) बनने के लिये इन पड़ावों में से गुजरना आवश्यक समझते थे।[1]

हज़रत अनायत शाह का डेरा लाहौर में था। इसलिये आप अनायत लाहौरी के नाम से भी प्रसिद्ध थे। आप जाति के अराईं थे और खेतीबाड़ी तथा बागवानी के व्यवसाय से जीविकोपार्जन करते थे। आप कुछ देर कसूर में भी रहे परन्तु वहाँ के शासक के विरोध के कारण आप लाहौर आ गये और जीवन के अन्तिम दिनों तक वहीं रहे। आपका मकबरा (समाधि) भी लाहौर में ही है। 'बागे-ओलिया-ए-हिंद'[2] में आपके विषय में यह उद्धरण मिलता है :

बागबानां दी कौम विच्चों है, शाह अनायत भाई।
शाह रज़ा वली अल्ला तों, अज़मत उसने पाई।
कसबा इक कसूर पठानां, उसदा करन गुजारा।
हुसैन खां हाक्मि ओन्हां नूं, दुशमन जानी भारा।
ओथों हज़रत पकड़ किनारा, शहर लाहौर विच आए।
दख्खण पासे दो कोह पैंडा, झंडे जिस थां लाए।
ओसे जगा ते इस मरद दा, रोज़ा वेखो आया।
यारां सौ इकताली[3] विच, दुनिया छोड़ सिधाया।

कहा जाता है कि हज़रत अनायत शाह के पास पहुँचने से पहले भी बुल्लेशाह[4] कोई न कोई रूहानी अभ्यास किया करता था और उसे कुछ सिद्धि व शक्ति भी प्राप्त थी। जब जिज्ञासु बुल्ला, साईं अनायत की बगीची

---

1. पंजाब, भाषा विभाग पंजाव, पटियाला, पृ. 424.

2. मौलवी मुहम्मद्दीन शाहपुरी, पृ. 38-39; उद्धरण डॉ. जीतसिंह शीतल, बुल्लेशाह, पृ. 15.

3. यह हिजरी सन् है जिसका ईस्वी सन् 1728 है।

4. बुल्लेशाह के मुर्शिद, अनायत शाह से मिलाप की घटना कई ढंग से वर्णन की गई है। यहाँ अधिक प्रामाणिक वर्णन दिया गया है।

के निकट पहुँचा तो देखा कि सड़क के किनारे लगे वृक्ष आमों से लदे हुए थे और निकट ही साईं जी प्याज की पनीरी लगा रहे थे। बुल्लेशाह के मन में आया कि साईं जी को किसी तरह सूचना मिल जाये कि कोई आया है। बुल्ले ने बिस्मिल्ला (परमात्मा का नाम) कह कर आमों की ओर दृष्टि डाल दी तो आम अपने आप धड़ाधड़ नीचे गिरने शुरू हो गये। साईं जी ने पीछे मुड़ कर देखा कि बिना कारण आम गिर रहे हैं। आप शीघ्र समझ गये कि यह सामने खड़े नवयुवक की शरारत है। आपने उसकी ओर देख कर कहा, "क्यों जवान, ये आम क्यों तोड़े हैं?" बुल्लेशाह यही चाहता था कि साईं जी से बातचीत का अवसर प्राप्त हो। आपके समीप जाकर कहने लगा, "साईं, न तुम्हारे पेड़ों पर चढ़े, न कोई कंकर-पत्थर फेंका, मैंने तुम्हारे फल कैसे तोड़े।" साईं जी ने एक दृष्टि बुल्ले पर डाली और बोले, "अरे, चोर भी और चतुर भी। तूने फल नहीं तोड़े तो और किसने तोड़े हैं?" दृष्टि पड़ते ही बुल्ला साईं जी के चरणों पर गिर पड़ा। साईं जी ने पूछा, "अरे, तेरा क्या नाम है और तू क्या चाहता है?" बुल्ले ने कहा, "जी, मेरा नाम बुल्ला है और मैं रब को पाना चाहता हूँ।" साईं जी ने कहा, "अरे, तू नीचे क्यों गिरता है। ऊपर उठ और मेरी ओर देख।" ज्यों ही बुल्ले ने सिर उठा कर हज़रत अनायत शाह की ओर देखा, उन्होंने उसी तरह प्यार भरी दृष्टि डाली और कहा, "बुल्लया! 'रब दा की पाना, ऐधरों पुटना ते ओधर लाना'।" बुल्लेशाह के लिये इतना ही काफ़ी था। उसका काम हो गया।

साईं जी ने कुछ छोटे और सादा शब्दो—'इधर से उखाड़ना और उधर लगाना'—में रूहानियत का सार समझा दिया। आपने बता दिया कि रूहानी उन्नति का राज़ मन को बाहर और संसार की ओर से मोड़ कर अन्तर में परमात्मा की ओर जोड़ने में है और व्यावहारिक रूप से यह भी दिखा दिया कि यह कार्य पूर्ण सतगुरु की कृपा-दृष्टि से सम्पन्न होता है।

इस छोटी-सी परन्तु महान घटना ने इतने सरल परन्तु सारगर्भित वचनों तथा एक तीखी दयामय दृष्टि ने बुल्ले के मन पर सतगुरु की महानता की अमिट छाप लगा दी। 'बागे-औलिया-ए-हिन्द' में इस घटना को थोड़े अन्तर के साथ इस प्रकार वर्णन किया गया है :

विच कसूर पठानां दे इह, होया मरद हक्कानी[1]।
खवास[2] अल रसूल अल्लाह दिओं[3], पोता पीर जीलानी।
हज़रत शाह अनायत पासों, अज़मत[4] उस ने पाई।
विच लाहौर जिन्हां दा रोज़ा, दखखण पासे साईं[5]।
बुल्ले शाह दिल विच आखे, मुरशद फड़ीए चुन के।
दिल विच क्योंकर होग तसल्ली, पानी पीए पुन के।
कर के शौक जद ओह हज़रत, मुरशद ढूँडन भाई।
लाहौर शहर वल अव्वल हज़रत, टुर के नज़र टिकाई।
आ के विच लाहौर शहर दे, अन्दर करन गुज़ारा।
बाग़ जिहड़े विच शाह अनायत, ओथे करन उतारा।
सी अंब पक्का उस वेले, नज़र वली नूं आया।
कर बिसमिल्ला डिट्ठा अव्वल, अंब हेठां ओह धाया।
शाह अनायत करे आवाज़ां, 'सुन तूं मरदा राहिया।
अंब चुराया तुध्ध असाडा, दे दे सानूं भाइया'।
बुल्ले शाह कहे, 'न चड़िआ, ऊपर अंब तुमारे।
नाल हवा दे अंब टुट के, झोली पिआ हमारे'।
बिसमिल्ला पढ़ अंब उतारिआ, कीती है तूं चोरी।
बुल्ले शाह वी जान लिआ, है बरकत इस विच पूरी।
शाह अनायत दे कदमीं डिग्गा, उस दम मरद रूहानी।
राज़ी हो के बैत[6] कबूली, पाया राज़ निहानी[7]।

सतगुरु से मिलाप और उनसे नामदान पाने की घटना तथा बुल्लेशाह पर हुए इसके गहरे प्रभाव का एक विद्वान ने इस प्रकार वर्णन किया है, "बुल्लेशाह में वे सभी गुण मौजूद थे, जो शाह साहिब अपने किसी योग्य शिष्य में ढूँढना चाहते थे। आपने अपना अन्तर खोल कर बुल्ले के सामने रख दिया। ....दर्शन हुए बुल्ला बेख़ुद हो गया और उस बेख़ुदी में मंसूर की भाँति बहने लगा।"[8]

---

1. हक़ अर्थात् सच या रब का बन्दा 2. हज़रत मुहम्मद के वंश में से 3. हज़रत जीलानी के शिष्य का शिष्य 4. बड़ाई, बड़प्पन 5. था 6. नामदान लिया 7. गुप्त भेद प्राप्त किया 8. सुन्दरसिंह नरूला, सम्पादक : साईं बुल्लेशाह, 1931, पृ. 9.

बुल्लेशाह का समय अद्भुत मस्ती में गुज़रने लगा। सतगुरु की संगति और उसके बताये हुए मार्ग की अमली साधना से बुल्लेशाह की रूहानी अवस्था दिन-प्रतिदिन बदलने लगी। अपनी काफ़ी 'जो रंग रंगिया गूड़ा रंगिया मुरशद वाली लाली ओ यार' में बुल्लेशाह संकेत करता है कि सतगुरु ने मुझे लाल रूहानी रंग में रंग दिया है। मेरी आन्तरिक आँख खुल गई है, मेरे सब भ्रम दूर हो गये हैं और मुझ पर हक़ीक़त का नूर बरसने लगा है। मुर्शिद की दया से मुझे अन्तर में प्यारे प्रियतम का दीदार हो गया है और मेरे लिये रब और मुर्शिद का भेद समाप्त हो गया है।

बुल्लेशाह के मन पर गुरु के प्यार का इतना गाढ़ा रंग चढ़ गया कि उसको गुरु के अतिरिक्त किसी चीज़ की सुध-बुध ही नहीं रही। उसमें एक अनोखी प्रकार की बेपरवाही पैदा हो गई। उसके हर कार्य में से रहस्यमय संकेत फूटने लगे। प्रो. पूर्णसिंह ने अपनी पुस्तक 'स्पिरिट आफ़ ओरीएंटल पोयट्री' में बुल्लेशाह के जीवन के इस दौर की एक दिलचस्प घटना का वर्णन किया है। एक दिन एक नवयुवती को—जिसके दूल्हे ने घर आना था—सिर गूँथवाते देख कर बुल्लेशाह के मन में अजीब हलचल पैदा हो गई। वह भी उस नवयुवती के समान सिर गुँथवा कर अपने गुरु के डेरे की ओर चल दिया कि मैं भी अपने पति को मिल लूँ। सांसारिक वृत्ति वाले व्यक्ति को इस प्रकार का काम हँसी वाला लगेगा, परन्तु इससे न केवल बुल्ले के प्रेम की तीव्रता और उसके मन की निश्छलता का पता लगता है, बल्कि उसकी फ़कीराना बेपरवाही और सतगुरु पर स्वयं को न्योछावर कर देने की स्वाभाविक इच्छा का भी अनुमान होता है। सच्चे प्रेमियों की तरह बुल्लेशाह ने अपनी पुरुषों वाली अकड़ त्याग कर अपने आपको ऐसी निर्बल, अबला स्त्री के रूप में ढाल लिया जो अहम् को त्याग कर अपने आपको पूरी तरह प्रियतम के सम्मुख समर्पित कर देती है।

गुरु की शरण लेने से पहले बुल्लेशाह के मन में जो शंका, प्रश्न या भ्रम थे, वे सब आन्तरिक प्रकाश में डूब गये। जब बुल्ले ने साईं अनायत शाह के पास आने का निश्चय किया था तो लोगों ने समझाया था कि तू इतना विद्वान, गुणवान, ज्ञानवान, सिद्धियों-शक्तियों का मालिक और हज़रत मुहम्मद के वंश का सैयद होकर एक साधारण माली और नीच जाति के

अराईं का शिष्य बनने जाये, क्या लज्जा की बात नहीं ? परन्तु मुर्शिद अपने नाम का पूरा निकला।[1] उसने बुल्लेशाह पर वह अनायत (दया) की कि एक ही दृष्टि से उसको रूहानी प्रकाश से भरपूर कर दिया। कहा जाता है कि बुल्ला ख़ुशी और कृतज्ञता के मिले-जुले रंग में पुकार उठा :

बुल्लिआ जे तूं बाग़ बहारां लोड़ें, चाकर हो जा अराईं दा।

बुल्लेशाह ने शाह अनायत का ऐसा पल्ला पकड़ा कि फिर कभी नहीं छोड़ा। बुल्लेशाह की वाणी में मुर्शिद के प्रेम और महिमा के जो भाव-पूर्ण वर्णन मिलते हैं, उनमें मस्ती भी है और रंगीनी भी, ख़ुमारी भी है और कृतज्ञता भी। इस उपमा में उसने सतगुरु और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं किया। उसने अनायत शाह को हिदायत करने वाला हादी[2], और परमात्मा को मिलाने वाला कामिल मुर्शिद कहा है[3] तथा उसको पति, शौह, साईं, सज्जन, यार[4] आदि कह कर उसके प्रति अपनी सच्ची प्रीति प्रकट की है।

---

1. अनायत का शाब्दिक अर्थ 'दया-मेहर' है।
2. मेरे दुख दी सुने हकायत,
   आ अनायत करे हिदायत, तां मैं तारी आं। (अठवारा)
3. (क) शाह अनायत मुरशद मेरा, जिसने कीता मैं वल फेरा।
   चुक गया सब झगड़ा झेड़ा, हुन मैंनूं भरमावे कौन। (सीहरफ़ी)
   (ख) बुल्ला शौह संग प्रीत लगाई, जीअ जामे दी दित्ती साई।
   मुरशद शाह अनायत साईं, जिस दिल मेरा भरमाइओ।
   (ग) हर हर दे विच आप समाया।
   शाह अनायत आप लखाया तां मैं लखिया। (बारहमाह)
4. (क) अनायत सेज ते आवसी, हुन मैं वल फुल्ल के। (गंढाँ)
   (ख) सईंआं देन मुबारक आइयां।
   शाह अनायत आखां साईंआं, आसां पुनीआं। (बारहमाह)
   (ग) मापे छोड़ लगी लड़ तेरे, शाह अनायत साईं मेरे।
   लाईआं दी लज्ज पाल वे, विहड़े आ वड़ मेरे।
   (घ) आ सज्जन गल लग असाडे, केहा झेड़ा लाइओ ई।
   बुल्ला शौह घर वसिया आके, शाह अनायत पाइओ ई।
   (ङ) बुल्ला शौह दी ज़ात न काई,
   शाह अनायत पाया ए।

वह अपने सतगुरु को सच्चा आरिफ़ (ब्रह्मज्ञानी), रूह का मालिक और लोहे को सोना बनाने वाला पारस कहता है :

बुल्ला शौह अनायत आरफ़ है।
ओह दिल मेरे दा वारस है।
मैं लोहा ते ओह पारस है।

गुरु एक निर्बल बेसहारा और फूहड़ को पार उतारने वाला होशियार तैराक[1] है। वह रूह को रूहानियत के रंग-बिरंगे आँचल पहना कर दुहागिन से सुहागिन बनाने वाला और ऊँची उड़ान की विधि सिखा कर परमात्मा से मिलाने वाला मध्यस्थ है :

बुल्ला शौह ने आंदा मैनूं, अनायत दे बूहे।
जिसने मैनूं पवाए चोले सावे ते सूहे।
जा मैं मारी है अड्डी, मिल पिआ है वहीआ।
तेरे इश्क नचाया कर थईआ थईआ।

बुल्ला गुरु को ही दीन-ईमान और दुनिया कहता है :

शाह अनायत दीन असाडा।
दीन दुनी मकबूल असाडा।

यही नहीं, उसको सतगुरु, परमात्मा से अभेद दिखाई देने लगा और उसको परमात्मा की भाँति सतगुरु भी सर्व-व्यापक दिखाई देने लगा :

सावन सोहे मेघला, घट सोहे करतार।
ठौर ठौर अनायत बस्से, पपीहा करे पुकार।

हज़रत मुहम्मद के वंश के एक विद्वान सैयद द्वारा एक साधारण अराईं को अपना गुरु मान लेना, उस समय के समाज के लिये कोई मामूली घटना न थी। यह ऐसा ज़बरदस्त धमाका था जिसने चारों ओर हलचल मचा दी। बुल्ले को अपने धर्म, जाति और परिवार के लोगों का विरोध तथा अनेक प्रकार के ताने व व्यंग सहन करने पड़े। वह कहता है :

1. इश्क असां नाल केही कीती, लोक मरेंदे तान्हें।
2. मित्र प्यारे दे कारन नी मैं लोक उल्हामें सहिनी हां।

1. बुल्ला शौह दे लायक नाहीं, शाह अनायत तारी।

3. बुल्ले नूं समझावन आईआं भैनां ते भरजाइयाँ।
आल नबी औलाद अली दी बुल्लिआ तू क्यों लीका लाइयाँ।
मन लै बुल्लिआ साडा कहिना, छड दे पल्ला राइयाँ।

बुल्लेशाह ने बड़ी निडरता से इस बात का प्रचार किया कि पूर्ण सतगुरु चाहे कितनी छोटी से छोटी जाति में क्यों न आये हों, उनका पल्ला पकड़ने से ही जीव का पार उतरना सम्भव है। वे बेधड़क होकर कहते हैं कि सैयदपन का मान और गर्व करने वाले नरकों की अग्नि में जलेंगे परन्तु साईं अनायत शाह जैसे अराईं का पल्ला पकड़ने वाले रूहानी दौलत से मालामाल हो जायेंगे :

जिहड़ा सानूं सैयद आखे[1], दोजख[2] मिलण सज़ाईआँ।
जिहड़ा सानूं राईं आखे, भिषती[3] पींघाँ पाईआँ।
जे तूं लोड़ें बाग बहारां बुल्लिआ तालब[4] हो जा राईआँ।

बुल्लेशाह के जीवन के इन्हीं दिनों की एक घटना उसकी मस्ती, बेपरवाही और उदारता का सुन्दर चित्र खींचती है। कहा जाता है कि संसार के तंग करने पर बुल्लेशाह ने गधियाँ ले लीं ताकि संसार उससे घृणा करने लगे। बुल्लेशाह को लोग 'गधियाँ वाला' कहने लगे। कहते हैं[5] कि किसी गरीब की पत्नी को एक मुसलमान हाकिम ज़बरदस्ती अपने घर ले गया। जब उसकी पुकार किसी ने नहीं सुनी तो किसी ने कहा कि बुल्लेशाह कामिल फ़कीर है। तू जाकर उसकी ख़ुशामद कर। जब उसके पास गया, उसने कहा, "जा, शहर में जाकर देख कहीं तबला और सारंगी बजते

---

1. तुलसी साहिब कहते हैं :
नीच नीच सब तर गए, संत चरन लवलीन।
जाति के अभिमान में, डूबे बहुत कुलीन॥
कबीर साहिब कहते हैं :
जात न पूछो साध की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥
2. नरक 3. स्वर्ग में 4. शिष्य
5. **परमार्थी साखियाँ** : राधास्वामी सत्संग ब्यास, संस्करण 1993, पृ. 45.

हैं?" एक जगह हिजड़े गा रहे थे। उसने देखा और आकर बुल्लेशाह को उसकी सूचना दी। बुल्लेशाह उनमें जा मिले और नाचने लगे। जब वजद (मस्ती) में आये तो उससे पूछा कि वह हाकिम कहाँ रहता है ? वह कहने लगा कि शहर के अमुक ओर खजूर वाले बाग़ और आमों वाली बगीची में रहता है। तब बुल्लेशाह ने ध्यान देते हुए कहा :

अंबावाली बगीची सुनींदी, खज्जियाँ वाला बाग।
खोतियाँ वाले सद्द बुलाई, सुत्ती ऐं ते जाग।
चीना इयूं छड़ींदा यार, चीना इयूं छड़ींदा।

बुल्लेशाह के कहने की देर थी कि वह स्त्री बरबस खिंची चली आई। बुल्लेशाह ने कहा, "हे मनुष्य! जा ले जा।" उधर बुल्लेशाह के पिता को लोगों ने बता दिया कि पहले तो तुम्हारे पुत्र ने गधियाँ रखी थीं, अब हिजड़ों के साथ नाचने लगा है, सैयदों की इज़्ज़त मिट्टी में मिला रहा है। बुल्लेशाह का पिता एक हाथ में लाठी पकड़े और दूसरे में माला लिये, वहाँ जा पहुँचा। बुल्लेशाह ने जब अपने पिता को आते देखा तो दिल में आया कि आज यह भी ख़ाली न जाये। ध्यान देकर लगा गाने :

लोकां दे हथ मालीयां ते बाबे दे हथ माल।
सारी उमर पिट पिट मर गया खुस न सकया वाल।
चीना इयूं छड़ींदा यार! चीना इयूं छड़ींदा।

पिता भी साथ में नाचने लगा और अन्दर परदा खुल गया। हाथ से माला फेंक कर कह उठा :

पुत्र जिन्हां दे रंग रंगीले मापे वी लैंदे तार।
चीना इयूं छड़ींदा यार! चीना इयूं छड़ींदा।

प्रेम का आरम्भ बहुत चित्ताकर्षक होता है, परन्तु इसका मार्ग विषम और मंज़िल दूर है। प्रेमी की छोटी-सी बेसमझी या भूल प्रेमिका की नाराज़ी का कारण बन जाती है और प्रेमी के लिये मुसीबतों के पहाड़ खड़े कर देती है। यही दशा बुल्लेशाह की हुई, जब उसकी भूल के कारण मुर्शिद उससे नाराज़ हो गये।

कुछ लेखकों ने मुर्शिद की नाराज़गी का यह कारण बताया है कि बुल्लेशाह ने खुलेआम शरीयत की आलोचना करनी शुरू कर दी और यह

बात गुरु को पसन्द न आई। परन्तु यह बात जँचती नहीं क्योंकि शरीयत की आलोचना सब सूफ़ी अपने-अपने ढंग से सदा करते आये हैं और क़ादरी सम्प्रदाय के सूफ़ी भी शरीयत के पुजारी नहीं थे।

नाराज़गी का कारण बताने वाला दूसरा वर्णन बिलकुल भिन्न है। कहा जाता है[1] कि एक बार बुल्लेशाह ने अपने मुर्शिद साईं अनायत शाह को अपने किसी रिश्तेदार की शादी में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण दिया। साईं जी ने अपने स्थान पर अपना एक शिष्य भेज दिया। वह शिष्य अराईं जाति का था और फ़क़ीरों के वेश में था। एक ओर बुल्लेशाह के कबीले को सैयद होने का गर्व था और दूसरी ओर उसके साधारण पहरावे के कारण उन्होंने उसका कोई मान-सम्मान नहीं किया। बुल्ला भी चूक गया। उसे चाहिये था कि गुरु के प्रतिनिधि का पूरा मान व सम्मान करता परन्तु उसने भी लोक-लाज में आकर उसकी ओर ध्यान न दिया। जब शिष्य विवाह से लौटा तो साईं जी ने पूछा कि किस तरह रहे। उसने सारी बात सुना दी और नाराज़गी प्रकट की कि मेरी नीची जाति के कारण बुल्लेशाह और उसके घर वालों ने मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। साईं जी कहने लगे, ''बुल्ले की यह मजाल!'' फिर बोले, ''हमें उस निकम्मे से क्या लेना है, चलो हम उसकी क्यारियों से पानी मोड़ कर तुम्हारी ओर कर देते हैं।'' बस इतना कहना था कि बुल्लेशाह के लिये प्रलय आ गई। जैसे ही मुर्शिद ने दया का पानी मोड़ लिया उसकी बहार पतझड़ में बदल गई। अन्दर का परदा बन्द हो गया। आन्तरिक दृश्य अलोप हो गये। प्रकाश अँधकार में और आनन्द शोक में बदल गया। बुल्ला शून्य के सामान हो गया।

जिसको आरम्भ से ही आन्तरिक दैवी आनन्द की झलक न मिली हो और जिसने अन्तर में सतगुरु के व्यक्तित्व का दिव्य प्रकाश न देखा हो, उसकी बात अलग है परन्तु जो साधक एक बार आन्तरिक अमूल्य धन से मालामाल हो चुका हो, उसके पास से अचानक यह दौलत छीन ली जाये तो उस पर क्या बीतती है, यह वही जानता है। वास्तव में रूहानी दौलत का मालिक पूर्ण सतगुरु होता है और शिष्य के वश में कुछ नहीं होता। देखने

1. परमार्थी साखियाँ : राधास्वामी सत्संग ब्यास, संस्करण 1993, पृ. 56.

में लगता है कि शिष्य स्वयं गुरु को ढूँढता है और अपनी हिम्मत से उसके बताये हुए मार्ग पर चल कर उन्नति करता है। परन्तु वास्तव में न वह मन-बुद्धि की सहायता से पूरे गुरु की खोज या पहचान कर सकता है, न अपने बल या चतुराई से उससे सच्चा मार्ग प्राप्त कर सकता है और न ही अपने प्रयत्न से आन्तरिक मंज़िलों में पहुँचने के योग्य बन सकता है। सच्चे मार्ग का मिलना, रूहानी उन्नति का होना और कायम रहना, सबकुछ सतगुरु की दया व मेहर पर निर्भर करता है। बुल्लेशाह ने स्वयं लिखा है, 'गुरु जो चाहे सो करदा है।' परन्तु इस सत्य तक पहुँचने के लिये उसको गुरु की नाराज़गी और विरह की आग के भयानक समुद्र को तैरना पड़ा।

परदा बन्द होते ही बुल्लेशाह गुरु के पास दौड़ा आया परन्तु उन्होंने मुख मोड़ लिया और अपना डेरा छोड़ कर चले जाने का हुक्म दिया। एक गुरु की नाराज़गी और दूसरे मुँह न देखने की आज्ञा। किसी शिष्य के लिये इससे बड़ा सन्ताप क्या हो सकता है? बुल्लेशाह की जान पर बन गई। वह पश्चात्ताप और विरह की आग में मछली की भाँति तड़पने लगा।

बुल्लेशाह की वाणी में इस दुःख भरी अवस्था के बड़े हृदय-स्पर्श वर्णन मिलते हैं। उसकी कई काफ़ियों में आत्म-कथा जैसा पुट मिलता है। इन काफ़ियों के रचना-काल के विषय में कोई पक्का दावा कर पाना कठिन है। परन्तु यह अभिव्यक्ति बुल्लेशाह की इस समय की मानसिक अवस्था की ही करती हुई प्रतीत होती है। इनमें विरह की नदी उछलती दिखाई देती है। भाव की "तीव्रता, वास्तविकता, सोज़ और तड़प में ये काफ़ियाँ बेजोड़ हैं।"[1]

नीचे लिखी काफ़ी से पता लगता है कि प्रियतम के मिलाप से मिले आनन्द की याद और प्रियतम के वियोग की तड़प एक गुप्त आग की तरह बुल्ले को जला कर राख करती चली जा रही थी। वह प्रीति को त्याग नहीं सकता, परन्तु प्रियतम के वियोग के कारण उसे न दिन में आराम है, न रात को चैन है। प्रियतम का दर्शन नसीब नहीं होता, परन्तु उसके बिना छाती

---

1. **पंजाबी साहित्य का इतिहास**, भाषा विभाग, पटियाला, सूफ़ी कविता (मध्यकाल), पृ. 60.

फटती है और कलेजा जलता है। इस वेदना को सहन करना कठिन है परन्तु प्रीति का त्याग कर सकना भी असम्भव है। इसलिये वह जीवन और मौत के बीच लटक रहा है :

अब लगन लग्गी किह करीए ? न जी सकीए ते न मरीए।
तुम सुनो हमारे बैना[1], मोहे रात दिने नहीं चैना।
हुन पी बिन पलक न सरीए[2]। अब लगन.........
इह अगन बिरहों दी जारी, कोई हमारी प्रीत निवारी।
बिन दर्शन कैसे तरीए। अब लगन ....
बुल्ले पई मुसीबत भारी, कोई करो हमारी कारी[3]।
इह अजेहे दुख कैसे जरीए[4]। अब लगन ....

एक अन्य काफ़ी में इस तड़प को इस प्रकार व्यक्त किया गया है :

मैनूं छड गए आप लद गए[5], मैं विच की तकसीर[6]।
रातीं नींद न दिने भुख्ख, अख्खीं पलटिआ नीर।
छवीआं ते तलवारां कोलों, इश्क दे तिख्खे तीर।
इश्क जेड न ज़ालम कोई, इह ज़हिमत बेपीर[8]।
इक पल साइत[9] आराम न आवे, बुरी बिरहों दी पीर।
बुल्ला शहु जे करे अनायत, दुख होवन तग़ईर[10]।
मैनूं छड गए आप लद गए, मैं विच की तकसीर।

ज्यों-ज्यों वियोग का समय लम्बा होता है त्यों-त्यों बुल्लेशाह का कलेजा मुँह को आता है। एक ओर वियोग का दुःख और दूसरी ओर जगत हँसाई, बुल्लेशाह को हर पल घायल करते हैं। वह मुर्शिद की याद के सजदे करता है और उसके आगे बार-बार विनती और प्रार्थना करता है कि मेरे साईं अनायत शाह, मुझे शीघ्र से शीघ्र दर्शन दो :

---

1. बातें 2. अब प्रियतम के बिना पल भर भी चैन नहीं पड़ता 3. इलाज, चारा 4. इस प्रकार ये दुःख कैसे सहन करें 5. चल दिये 6. गलती 7. मुसीबत 8. निगुरा, बे-असूला अर्थात् इस दुःख का कोई नियम नहीं 9. घड़ी 10. यदि प्रियतम दया करे तो दुःख दूर हो जायें।

मेरे माही क्यों चिर लाया ए।
कहि बुल्ला हुन प्रेम कहानी, जिस तन लग्गे सो तन जाने।
अंदर झिड़कां बाहर ताहने, नेहुं ला इह सुख पाया ए।
नैनां कार[1] रोवन'दी पकड़ी, इक मरना दूजे जग दी फकड़ी[2]।
बिरहों जिंद अवल्ली जकड़ी, नी मैं रो रो हाल वंजाया ए।
बुल्ले शहु घर लपट लगाई, रसते में सभ बन तन जाई।
मैं वेखां अनायत साईं, जिस मैनूं शहु मिलाया ए।

बुल्लेशाह अपनी गलती और नादानी पर परेशान है, जो उसकी जान-लेवा बन गई है। वह अपनी भूल बख़्शाना चाहता है। वह मन ही मन गुरु के आगे ख़ुशामदें करता है कि अब वियोग का घाव भर दो और दर्शन देकर तपते हुए हृदय को शीतल कर दो :

मैनूं दरद अवलड़े दी पीड़।
आ मियां रांझा दे दे नज़ारा, मुआफ करीं तकसीर।
तखत हज़ारियों रांझा तुरिआ, हीर निमाणी दा पीर।
होरनां दे नौशहु[3] आवे जावे, की बुल्ले विच तकसीर।

बुल्लेशाह केवल अपने दुःख का ही वर्णन नहीं करता, अपने गुरु से गिले-शिकवे भी करता है। एक ओर वह अपनी अपरिपक्व बुद्धि से परेशान है और दूसरी ओर गुरु को उलाहने देता है जिसने प्रेम का तीर कलेजे में मार कर फ़िर मुँह छिपा लिया है और कभी बात भी नहीं पूछता :

घायल कर के मुख छुपाया, इह चोरियां किन दस्सियां।
नेहुं लगा के मन हर लीता, फेर न अपना दर्शन दीता।
ज़हिर प्याला मैं आपे पीता, सी अकलों मैं कच्चियां।

वह अनायत शाह को 'लाहौर का ठग' कह कर ताने देता है, जिसने प्यार की ऐसी मीठी मार मारी है कि उसको कहीं का नहीं छोड़ा :

इस दा मूल न खाना धोखा, जंगल बसती मिले न ठौर।
दे दीदार होया जद राही, अचनचेत पई गल फाही।
डाढी कीती बेपरवाही, मैनूं मिलिया ठग्ग लाहौर।

---

1. काम, आदत 2. हँसी 3. पति, स्वामी।

"मुर्शिद के वियोग में रात भर ज़ार-ज़ार रोना, बुल्ले का नित्य का व्यवहार हो चुका था। बुल्ले का यह वियोग पागलपन की सीमा तक पहुँच चुका था और वह दीवानों की भाँति गली-गली भटकने लगा। उसे मुर्शिद के मिलाप की तड़प ने बेहाल और बेसुध कर दिया तो वह इस आग को शान्त करने की युक्ति सोचने लगा।"[1] उसे पता था कि उसका गुरु (मुर्शिद) संगीत का प्रेमी है। कहते हैं[2] कि बुल्लेशाह ने स्त्री का वेश धारण किया, सारंगी पकड़ ली और किसी गाने वाली के पास जाकर रहने लगा। उससे नाचना सीखा और गाने में दक्षता प्राप्त की। जब बुल्लेशाह इस काम में निपुण हो गया तो पखावज और अन्य वाद्य बजाने वालों को साथ लेकर उस मज़ार पर मुजरा करने के लिये पहुँच गया जहाँ वार्षिक उर्स पर हज़रत अनायत शाह भी आये हुए थे। सब नाचने और गाने वाले तो थक कर बैठ गये परन्तु बुल्लेशाह भक्ति व प्रेम में लगातार नाचता रहा। उसकी आवाज़ में असीम पीड़ा थी और वह हृदय को छेद देने वाले स्वर में पुकार रहा था। कहते हैं कि बुल्लेशाह ने उस समय विरह की कई काफ़ियाँ गाईं। अन्त में उसकी पीड़ा को देख कर गुरु का दिल पसीज गया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, "अरे, तू बुल्ला है ?" बुल्ला दौड़ कर गुरु के चरणों में गिर पड़ा और अश्रुओं से छलकती आँखों से कहने लगा, "हुज़ूर, बुल्ला नहीं! भुल्ला हूँ।"

गुरु कभी भी शिष्य के विषय में अनजान नहीं होता। जब देखा कि पश्चात्ताप और वियोग की आग ने बुल्ले को तपा कर शुद्ध कुन्दन बना दिया है तो उसकी गलती क्षमा कर दी और उसे छाती से लगा लिया[3]। हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी फ़रमाया करते थे कि कामिल मुर्शिद ने बुल्लेशाह के विरह की अग्नि-परीक्षा इसलिये ली कि वे चाहते थे कि जिस हृदय में कुल मालिक के सच्चे प्रेम और उसके कलमे अर्थात शब्द की अमूल्य देन को स्थिर करना है, वह हृदय भी पक कर उस दौलत को सँभालने के योग्य बन जाये।

---

1. डॉ. जीतसिंह शीतल : **बुल्लेशाह**, पृ. 26.
2. मौला बख़्श कुश्ता : **पंजाबी शायरां दा तज़करा**, पृ. 104.
3. अनवर अली रोहतकी : **कानूने-इश्क़**, लाहौर, काफियाँ, पृ. 54-55.

फिर क्या था, दया और प्रेम के बन्द झरने दोबारा फूटने लगे। बुल्लेशाह की सूखी क्यारी को पानी मिल गया। उसकी बगीची फिर महक उठी। उसमें रस और आनन्द की सुगन्ध के फव्वारे फूट पड़े। 'कानूने इश्क' का लेखक लिखता है कि मुर्शिद बुल्लेशाह को छाती से लगा कर अपने साथ ले गये और उसे दिन-रात मिलाप के प्याले पिलाने लगे। बुल्लेशाह की आत्मा सतगुरु की आत्मा के रंग में रंग गई और दोनों में कोई भेद न रहा। बुल्लेशाह की एक काफ़ी में उसके प्रियतम से अभेद की अवस्था का सुन्दर वर्णन है :

रांझा रांझा करदी नी मैं आपे रांझा होई।
सद्दो नी मैनूं धीदो रांझा हीर न आखे कोई।
रांझा मैं विच मैं रांझे विच होर खयाल न कोई।
मैं नहीं ओह आप है अपनी आप करे दिलजोई।
हथ्थ खूंडी मेरे अग्गे मंगू मोढे भूरा लोई।
बुल्ला हीर सलेटी वेखो किथे जा खलोई।

मुर्शिद परमात्मा से अभेद होता है। इसलिये मुर्शिद के साथ की अभेदता ही परमात्मा से अभेदता में बदल जाती है। इस अवस्था को बुल्लेशाह ने 'तूंहीउं हैं मैं नाही वे सजना, तूंहीउं हैं मैं नाही' और 'पिया पिया करते हमीं पिया होए अब पिया किसनूं कहीए' कह कर वर्णन किया है। इस अवस्था में पहुँच कर द्वैत का भ्रम दूर हो जाता है और हर ओर एक ही कादिर का जलवा और नूर दिखाई देता है। बुल्लेशाह कहता है कि मैं कुल मालिक के प्रेम के रंग में इस प्रकार रंग गया हूँ कि आपाभाव या अहम् बिलकुल समाप्त हो गया है। मुझे शरीर के परदे के पीछे छिपे अपने वास्तविक अपनत्व का ज्ञान हो गया है। मुझे सारे संसार में अब एक ही प्रियतम का प्रकाश दिखाई देता है। मेरे लिये सारे अपने हो गये हैं, कोई भी पराया नहीं रहा :

अब हम गुम हुए, प्रेम नगर के शहर।
अपने आप को सोध रहा हूँ, न सिर हाथ न पैर।
खुदी खोई अपना पद चीता, तब होई गल ख़ैर।

लथ्थे धगड़े पहिले घर थीं, कौन करे निरवैर।
बुल्ला शहु है दोहीं जहानीं, कोई न दिसदा ग़ैर[1]।

इस अद्वैत में हिन्दू-मुसलमान और भले-बुरे के सब झगड़े समाप्त हो गये और बुल्लेशाह को सब साधु ही साधु दिखाई देने लगे; उसके लिये कोई भी चोर या पराया न रहा :

सब साध कहो कोई चोर नहीं,
हर घट विच आप समाया है।
टुक बूझ कौन छुप आया है।

इस अवस्था को पाकर बुल्लेशाह प्रेम, क्षमा और दया की मूर्ति बन गया। वह समदर्शी बन गया और मित्र-शत्रु, भले-बुरे और हिन्दू-मुसलमान सबसे एक जैसा प्रेम करने लगा। उसके जीवन की एक घटना इस अवस्था को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती है।

कहते हैं[2], "एक बार बुल्लेशाह अपने हुजरे (कोठड़ी) में बैठे बन्दगी कर रहे थे। रमज़ान[3] का महीना था। उनके कुछ शिष्य बाहर बैठे गाजरें खा रहे थे। पास से कुछ रोज़ादार[4] मुसलमान गुजरे। एक फ़कीर के डेरे पर मोमिनों[5] को रोज़ा भंग करते देख कर गुस्से से बोले, "तुम्हें शर्म नहीं आती, रमज़ान के महीने में चर रहे हो और वह भी एक फ़कीर के डेरे पर।" शिष्यों ने कहा, "भाई मोमिनो, अपनी राह पकड़ो, हमें भूख लगी है, तभी तो खा रहे हैं।"

मोमिनों को शंका हुई कि शायद ये मुसलमान नहीं हैं। उन्होंने पूछा, "अरे तुम कौन हो?" उन्होंने कहा, "मुसलमान हैं! क्या मुसलमान को भूख नहीं लगती?" मोमिनों ने फिर मना किया। शिष्य फिर भी न माने।

---

1. कोई पराया दिखाई नहीं देता।

2. **पंजाबी साहित्य का इतिहास**, मध्यकाल, भाषा विभाग, पटियाला, 1963, सूफ़ी मत, पृ. 64.

3. मुसलमान वर्ष में एक महीना व्रत रखते हैं। उस महीने को रमज़ान का महीना कहते हैं।

4. जिन्होंने रोज़ा (व्रत) रखा हो 5. मुसलमान, गुरुमुख।

मोमिन, जो घोड़ों पर सवार थे, नीचे उतरे। उन्होंने शिष्यों के हाथ से गाजरें छीन कर दूर फेंकीं तथा एक-दो थप्पड़ भी जड़ दिये। वापस जाते समय उन्हें ख़याल आया कि इनका पीर (गुरु) भी ऐसा ही होगा, 'जिहो जिहे कुज्जे, ओहो जिहे आले।' पर चलो, उसे तो पूछ आयें कि शिष्यों को कैसी शिक्षा दी है? हुजरे में जाकर बोले, "अरे, तू कौन है?" बुल्लेशाह जो आँखें बन्द किये बैठा था, उसने बाजू ऊँचे करके हाथ हिला दिये। उन्होंने फिर पूछा, "अरे, बोलता नहीं, कौन होता है ?" बुल्लेशाह ने फिर बाजू ऊँचे करके हिला दिये। मोमिन उसको पागल समझ कर चले गये। उनके जाने की देर थी कि शिष्य दुहाई देते हुए हुजरे में आ गये और पुकार करने लगे कि उन्होंने हमें मारा है।

बुल्लेशाह : तुमने ज़रूर कुछ किया होगा ?

शिष्य : नहीं हुज़ूर। हमने कुछ नहीं किया।

बुल्लेशाह : उन्होंने तुमसे क्या पूछा था ?

शिष्य : तुम कौन हो ? हमने कहा कि हम मुसलमान हैं।

बुल्लेशाह : बस बेटा! कुछ बने हो तभी तो मार खाई है। हम कुछ भी नहीं बने, इसलिये हमें किसी ने कुछ नहीं कहा।

अपने आपको कुछ वही समझता है, जो मन-माया के दायरे में है और जिसको हक़ (सत्य) का दीदार नहीं हुआ। जिसको सत्य के दर्शन हो जाते हैं, वह आत्म-दर्शी हो जाता है और धर्मों, देशों व जातियों की कैद से मुक्त हो जाता है। बुल्लेशाह की वाणी में अनेक स्थानों पर इस बात की ओर संकेत किया गया है कि परमात्मा की तरह आत्मा का न कोई धर्म है, न देश और न जात-पाँत। सब धर्म समय व स्थान के कैदी हैं, परन्तु आत्मा अजन्मा और अनादि है। इसका न कोई आदि या अन्त है, न धर्म या जाति। बुल्लेशाह कहते हैं कि मैं केवल आत्मा का परमात्मा से आदि का रिश्ता पहचानता हूँ, संसार में प्रचलित कोई दूसरा बँटवारा स्वीकार नहीं करता :

अव्वल आखर आप नूं जाना, न कोई दूजा होर पछाना।
मैथों होर न कोई सिआना, बुल्ला शौह खड़ा है कौन।
बुल्ला की जाना मैं कौन ?

अन्तर में सत्य को प्राप्त करके बुल्लेशाह न केवल स्वयं सत्य का रूप हो गये, बल्कि उन्होंने अपना शेष जीवन इस सत्य के प्रचार में ही लगा दिया। इस नाशवान संसार से प्रस्थान करने तक वे स्वयं परमात्मा की भक्ति में लीन रहे और अपनी संगति में आने वाले जीवों को भी परमात्मा के प्रेम का पाठ पढ़ाते रहे। उनके पुरनूर व्यक्तित्व, निर्मल रहनी और दैवी वाणी ने हर ओर उनकी प्रसिद्धि फैला दी। सत्य के अनेक जिज्ञासु उनके व्यक्तित्व से लाभान्वित हुए। जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने अपना डेरा क़सूर में लगा लिया और वहाँ ही सन् 1758-59 ई. में उन्होंने नश्वर शरीर का त्याग किया। कसूर में उनका मज़ार आज भी मौजूद है। 'बागे-औलिआ-ए-हिंद' में आता है :

यारां सौ इकत्तर हिजरी जिस दम सी आया।
विच कसूर मज़ार उन्हां दा वेखो खूब बनाया।

साईं बुल्लेशाह ऐसा पहुँचा हुआ दरवेश, कामिल फ़क़ीर और सच्चा आशिक था, जिसने मुर्शिद के इश्क द्वारा अल्लाह के इश्क की मंज़िल तय की। उसके इश्क में तीव्रता, सोज़ और तड़प के साथ सिदक, कुर्बानी और त्याग था। उसने इश्क की वेदी पर जाति और विद्वत्ता का चढ़ावा चढ़ाया और विरह की आग में जलते हुए भी गुरु में अपनी निष्ठा और विश्वास को पल भर के लिये भी डोलने नहीं दिया। उसके जीवन की तरह उसकी वाणी इश्के-मिजाज़ी (सतगुरु रूपी साकार प्रभु के प्रेम) की अंगुली पकड़ कर इश्के-हक़ीक़ी (निराकार प्रभु के प्रेम) तक पहुँचने का मार्ग दिखाती है जो संसार के सब सच्चे प्रभु-भक्तों का साँझा मार्ग है। इसमें धर्म, देश, रंग, रूप या नस्ल का कोई भिन्न-भेद नहीं। यह मार्ग समय और स्थान की सीमा से आज़ाद है। जिस किसी ने, जब कभी सत्य या परमात्मा से साक्षात् किया है, इस मार्ग पर चल कर ही किया है और जो कोई उससे साक्षात् करेगा, इस प्रेम-मार्ग का पथिक बन कर ही करेगा। साईं बुल्लेशाह की जीवनी और वाणी इस मार्ग के अनेक सूक्ष्म रहस्यों से भरी पड़ी है। यह सच्चे प्रेम के प्रेमी को बल देती है और उसको इस मार्ग पर चलने के लिये बड़े से बड़े बलिदान देने के लिये

उत्साहित भी करती है। साईं बुल्लेशाह का व्यक्तित्व और वाणी दोनों कई शताब्दियों तक सच्चे प्रेमियों के लिये ज्ञान और प्रेम का प्रकाश फैलाने वाले ज्योति-स्तम्भ का काम करते रहेंगे।

रूहानी उपदेश

मनुष्य-जीवन का उद्देश्य

तसव्वुफ़ अर्थात् सूफ़ीमत उस अमली रूहानी साधना का नाम है जिसके द्वारा परमात्मा के प्रेमी और भक्त अपने मन, ख़ुदी या नफ़स (अहं) का नाश करके परमात्मा से मिलाप की बका (अमर) अवस्था में पहुँच जाते हैं। सूफ़ी[1], वली-अल्ला, दरवेश और फ़कीर उन मुसलमान भक्तों को कहा जाता है जिन्होंने अहं के त्याग और रूहानी अभ्यास द्वारा अपने अन्दर सहज ज्ञान प्राप्त कर लिया हो।

इन भक्तों का मनुष्य जीवन और इसकी समस्याओं के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है। वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि मनुष्य मन, इन्द्रियों और बुद्धि के परे ऐसी निर्मल रूहानी अवस्था प्राप्त कर सकता है, जिसमें उसको संसार में दिखाई दे रही क्षणभंगुर अनेकता के पीछे छिपी एक अमर सर्वव्यापक एकता का ज्ञान हो जाता है। इस अद्भुत अनुभव द्वारा जीवात्मा समय और स्थान के बन्धनों और इनके कारण पैदा हुए अनेक प्रकार के दु:खों से मुक्त हो सकती है। जीव को स्थूलता से ऊपर उठ कर सूक्ष्मता में दाखिल होने में सहायता देना, अनेकता से एकता, परिवर्तन से अडोलता, अपूर्णता से पूर्णता और स्थायी दुखों से अमर आनन्द की निश्चल अवस्था में पहुँचाना, सच्ची रूहानियत, तसव्वुफ़ या सूफ़ी विचार-धारा का मूल उद्देश्य है। साईं बुल्लेशाह की वाणी मनुष्य के इसी निरन्तर प्रयत्न की एक शक्तिशाली कड़ी है।

सच्ची रूहानियत की दूसरी आवश्यक मान्यता यह है कि मन और इन्द्रियाँ आत्मा के कार्यशील होने के यन्त्र हैं। इनके द्वारा कार्यशील होने

---

1. **History of Sufism in India**, vol. 1, p. 1.

वाली आत्मा स्वयं इनसे भिन्न और स्वतन्त्र है। आत्मा का अस्तित्व न तो शरीर और मन-इन्द्रियों पर आधारित है, न ही ये आत्मा की मूल प्रकृति को बदल सकते हैं। कुरान मज़ीद (17 : 85) में आता है, 'अलरुह अमरे रब्बी' अर्थात् आत्मा परमात्मा का अंश है। इसमें परमात्मा वाली सभी विशेषताएँ मौजूद हैं। मन-माया का साथ लेने के कारण आत्मा के ये गुण दब चुके हैं। मन-माया के परदे दूर करके आत्मा अपने दिव्य गुण दोबारा प्रकट कर सकती है। साईं बुल्लेशाह मात-लोक में उतर कर अपने आपको मादा समझने वाली और शरीर तथा इन्द्रियों का साथ लेने के कारण अपने आपको शरीर तथा इन्द्रियाँ समझने वाली आत्मा को उसके निर्मल दैवी स्रोत की याद कराते हैं। आप समझाते हैं कि हे आत्मा, तू परमात्मा की भाँति अनन्त, प्रकाशमय, अखण्ड, चेतन और आनन्द-स्वरूप है। तू मन, इन्द्रियों का साथ छोड़ कर अपने मूल को पहचान :

1. बुल्ला शाह संभाल तूं आप ताईं,
   तूं तां अनंत लग देह में कहां सोवें।
2. बुल्ला शाह संभाल जब आप देखा,
   सदा सोहंग[1] प्रकाश होए झुलदा ए।
3. सुख रूप अखंड चेतन हैं तूं,
   बुल्ला शाह पुकारदे वेद चारे।
4. बुल्ला शाह संभाल तूं आप ताईं,
   तूं तां सदा अनंद हैं चानना एं।

साईं बुल्लेशाह ने मनुष्य के सामने अपने आपे अर्थात् अपने मूल की पहचान का प्रश्न खड़ा किया है। वे कहते हैं कि हे प्राणी, तू ध्यानपूर्वक सोच कि तू कहाँ से आया है और तुझे कहाँ जाना है ?

तू किधरों आया ? किधर जाना ?
अपना दस ठिकाना।

---

1. सोहंग=मैं वही हूँ, अर्थात् आत्मा और परमात्मा का मूल एक है। मंसूर द्वारा प्रयोग किये गए पद 'अनल हक' (मैं ख़ुदा हूँ, मैं सत्य हूँ) और सोहं का एक ही अर्थ है। शरीर और मन-माया से मुक्त हो चुकी निर्मल आत्मा की ओर ये संकेत करते हैं, शरीर में कैद जीवात्मा की ओर नहीं।

शरीर आत्मा के सहारे खड़ा है और आत्मा अमर, अनादि और अजन्मा है। यह मज़हबों, मुल्कों और कौमों के बन्धनों से मुक्त है। यह भले-बुरे, सुख-दुःख और मित्र-शत्रु की हर प्रकार की द्वैत से ऊपर है। यह पाँच तत्वों की उपज नहीं, सूक्ष्म, चेतन और प्रकाश रूप है। आत्मा संसार की रचना से पहले भी विद्यमान थी और संसार की समाप्ति पर भी इसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता :

बुल्ला की जाना मैं कौन॥
न मैं मोमन विच मसीतां, न मैं विच कुफ़र दीआं रीतां।
न मैं पाकां विच पलीतां, न मैं मूसा न फ़रऔन[1]॥
न मैं अंदर बेद किताबां, न विच भंगां न शराबां।
न विच रिंदां[2] मस्त खराबां, न विच जागन न विच सौन॥
न विच शादी[3] न ग़मनाकी[4], न मैं विच पलीती[5] पाकी[6]।
न मैं आबी न मैं खाकी, न मैं आतिश न मैं पौन[7]॥
न मैं अरबी न लाहौरी, न मैं हिंदी शहर नगौरी।
न हिंदू न तुरक पशौरी, न मैं रहिंदा विच नदौन॥
न मैं भेद मज़हब दा पाया, न मैं आदम हव्व दा जाया।
न मैं अपना नाम धराया, न विच बैठन न विच भौन[8]॥
अव्वल आखर आप नूं जाना, न कोई दूजा होर पछाना।
मैथों होर न कोई सिआना, बुल्ला शौह खड़ा है कौन॥

मन और इन्द्रियों से बँधा जीव अनेक प्रकार के बन्धनों में जकड़ा हुआ है परन्तु इसमें इन बन्धनों को तोड़ कर पुनः स्वतन्त्र होने की शक्ति विद्यमान है :

हम बे कैद, मन बे कैद, न रोगी न वैद।
न मैं मोमन, न मैं काफ़र, न मुल्ला न सैद।
चौदीं तबकीं[9] सैर असाडा, किते न हुंदा कैद।

---

1. फ़रऔन=एक अहंकारी बादशाह 2. शराबी 3. ख़ुशी 4. ग़मी 5. गन्दगी 6. पवित्रता 7. मैं पानी, मिट्टी, आग, हवा और आकाश अर्थात् पाँच तत्वों की उपज नहीं हूँ 8. आत्मा जड़ नहीं है कि हिलजुल न सके और न ही आत्मा की मूल प्रकृति पर आवागमन का प्रभाव होता है 9. चौदह लोक।

यह सही है कि संसार में आत्मा मनुष्य बन कर आई है पर यह बहुत ऊँचे स्थान और ऊँची हकीकत में से आई है। इसमें उस स्थान पर वापस पहुँचने और उस सत्य में समा कर उसका रूप हो जाने की सामर्थ्य सदा बनी रहती है :

1. तूं उस मुकामों आया हैं,
   ऐथे आदम बन के आया हैं।
2. बुल्ला शाह बबेक[1] बिचार कीती,
   ख़ुदी छोड़ खुद होए खसम साईं।
3. ख़ुदी खोई अपना पद लीता[2],
   तब होई गल ख़ैर।

बाइबिल में आता है कि परमात्मा ने मनुष्य को अपने जैसा बनाया है।[3] निस्सन्देह पाँच तत्वों के शरीर के कारण नहीं बल्कि उसमें रखी आत्मा की ज्योति के कारण ही प्रभु-रूप है और अपने अन्दर उस सत्य को दोबारा जाग्रत करना ही जीव का वास्तविक उद्देश्य है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि इस मन-माया के देश में आकर जीव अपने असली स्वरूप और असली घर को भुला चुका है। उसको यह ज्ञान नहीं कि उसके अस्तित्व का वास्तविक आधार वह सर्वशक्तिमान, सर्व-ज्ञाता और आनन्द-स्वरूप परमात्मा है। जिस जीव को न तो अपनी वास्तविक सामर्थ्य का ज्ञान हो, न अपने शक्तिशाली आधार का पता हो और जो अपने असली घर को भूल कर पराये देश में ठोकरें खा रहा हो, वह सुख और शान्ति की आशा कैसे कर सकता है ?

साईं जी ने अपनी काफ़ी 'उठ जाग घुराड़े मार नहीं' में आत्मा को 'गाफिल', 'अचेत', 'सोई हुई', 'नींद में खोई हुई' और 'खर्राटे मार रही' कहा है। आप उसको 'अहंकारी हुई', 'यौवनमती', 'रूपमती', 'सैय्या से रत्ती', 'बातों में मस्त', 'कुचज्जी' और 'निर्लज्ज' कहते हैं। आप आत्मा

---

1. बबेक=निर्मल बुद्धि जो मन व इन्द्रियों के प्रभाव से मुक्त हो।
2. अहं को दूर करके अपने आपे (मूल) की पहचान की।
3. God created man in His own image. (Genesis 1 : 26-27)

को सावधान करते हैं कि यह देश तेरा देश नहीं। तेरा देश बहुत दूर है। रास्ते में घने जंगल हैं, सुनसान श्मशान हैं। जब तुझ अकेली को यहाँ से चलना पड़ेगा और कोई संगी, साथी या मित्र तेरे साथ नहीं होगा तो तेरी सहायता कौन करेगा ? यहाँ सिकन्दर जैसे सम्राट, सुलेमान जैसे बुद्धिमान, बड़े-बड़े पीर और पैगम्बर स्थायी तौर पर न रह सके, तो तू यहाँ कैसे सदा रह सकती है ? यहाँ यूसुफ़, ज़ुलैख़ा नहीं रहे, चंबेली लाला, सोसन और सिंबल नहीं रहे, 'ऐथे कोई पाइदार नहीं।' यहाँ एकत्रित करने वाली केवल एक ही वस्तु है उस साईं, परमात्मा का प्यार और उसका कलमा या शब्द जो दोबारा उससे मिलाप करा सकता है।

बुल्लेशाह अपनी काफ़ी 'कर कत्तन वल ध्यान कुड़े' में सांसारिक वृत्ति वाली आत्मा को 'अहंकारी', 'गंवार', 'गुमानी', 'ग़ाफिल', 'भोली', 'कमली', 'झल्ली' आदि कहते हैं। आप कहते हैं कि यदि तू संसार में वह काम नहीं क़रेगी जिसके द्वारा प्रियतम से मिलने के योग्य बन सके तो तू यहाँ से 'रिज़क विहूणी', अर्थात् ख़ाली हाथ जायेगी। इसके विपरीत 'कत्त कुड़े न वत्त कुड़े' काफ़ी में समझाते हैं कि यदि तू पूनी-पूनी भी कातेगी तो तुझे यहाँ से नंगा नहीं जाना पड़ेगा। यदि दहेज के बिना जायेगी तो पति को कैसे रिझायेगी ? तो फिर क्या किया जाये ? आप कहते हैं :

जे दाज विहूणी जावेंगी, तां किसे मूल न भावेंगी।
ओथे शहु नूं किवें रिझावेंगी, कुझ लै फ़कीरां दी मत्त कुड़े।
बुल्ला शहु घर अपने आवे, चूड़ा बीड़ा सभ सुहावे।
गुण होसी तां गल लावै, नहीं रोसें नैनी रत्त कुड़े।

बाबा फ़रीद ने अज्ञानी जीव की तुलना नदी के किनारे खेलों में व्यस्त बगुले से की है, जिसको संसार की वास्तविकता और अपनी मौत का कोई ज्ञान नहीं :

फरीदा दरिआवै कन्है बगुला बैठा केल करे।
केल करेंदे हंझनो अचिंते बाज पए।
बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं।
जो मन चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं।

(फ़रीद—आदि ग्रन्थ, पृ. 1383)

आप कहते हैं कि संसार में दो प्रकार के जीव हैं : एक सुचेत और दूसरा अचेत। समझदार जीव संसार की वास्तविकता को समझते हुए ऐसा मार्ग अपनाते हैं कि दीन और दुनिया अर्थात् परमार्थ और स्वार्थ दोनों संवर जाते हैं, परन्तु बेपरवाह मनमुख ऐसे अज्ञानमय कर्म कर बैठते हैं कि लोक-परलोक दोनों बरबाद कर लेते हैं :

फरीदा मउतै दा बंना ऐवै दिसै जिउ दरिआवै ढाहा॥
अगै दोजक तपिआ सुणीऐ हूल पवै काहाहा॥
इकना नो सभ सोझी आई इकि फिरदे वेपरवाहा॥
अमल जि कीतिआ दुनी विचि से दरगह ओगाहा॥

(फ़रीद—आदि ग्रन्थ, पृ. 1383)

प्रसिद्ध सूफ़ी ख़लीफा अब्दुल मलक जीव को सावधान करते हैं कि यह संसार एक पुल है जिसको दूसरी ओर जाने के लिये प्रयोग करना चाहिये, घर बनाने के लिये नहीं।[1] आदि ग्रन्थ की सारी वाणी मनुष्य के इस संकट को चित्रित करती है कि वह अज्ञानतावश झूठ को सच और सच को झूठ समझ रहा है। गुरु तेग बहादुर साहिब ने अज्ञानी जीव को 'बउरा', 'अचेत', 'अधम', 'मूर्ख', 'गंवार', 'भूला हुआ', 'कुमत्ती', 'लाजहीन', 'अंध' और 'अजान' कहा है और उसको 'चतुर सुजान' बनने की प्रेरणा दी है। उसके सब दुःख इस कारण हैं कि वह सँभालने योग्य वस्तु से बेख़बर है और त्यागने योग्य वस्तु के पीछे लगातार दौड़ रहा है :

1. माइआ कारनि धावही मूरख लोग अजान।
   कहु नानक बिनु हरि भजन बिरथा जनमु सिरान।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1427)

2. मन माइआ मै फधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नाम।
   कहु नानक बिनु हरि भजन जीवन कउने काम।

(वही)

साईं बुल्लेशाह मायावी संसार को कसुंभड़े का बाग कहते हैं। कसुंभड़े के फूल जितने चमकीले, भड़कीले और आकर्षक होते हैं उतने

1. **Encyclopaedia of Islam.** (New Edition) Vol. III, p. 374. **History of Sufism in India,** Vol. I, p. 27.

ही अस्थायी और दुःखदायी हैं। कसुंभड़े के सुन्दर रंग के कारण इसके बारीक काँटे भी भले लगते हैं, परन्तु इनका डंक बहुत विनाशकारी होता है, 'इस कसुंभड़े दे कंडे भलेरे अड़ अड़ चुनरी पाड़ी।' अज्ञानी जीव कसुंभड़े के ढेर जमा करता रहता है, जबकि एक फूही (छोटा-सा टुकड़ा) भी साथ नहीं जा सकता। 'नी मैं कसुंभड़ा चुन चुन हारी' अर्थात् जीव अनन्त काल से माया को जीतने के असफल प्रयत्न में परेशान हो रहा है। अज्ञानी आत्मा के पार उतारे का एकमात्र साधन यह है कि वह किसी ब्रह्मज्ञानी की संगत करे जो इसकी अंगुली पकड़ कर इसको संसार रूपी काँटों से भरे बाग से बाहर ले जाये :

मैं कमीनी कुचज्जी कोहजी बेगुण कौन विचारी।
बुल्ला शहु दे लाइक नाही शाह अनायत तारी।
मैं कसुंभड़ा चुन चुन हारी।

शेख बाबा फ़रीद ने भी संसार को 'कसुंभड़ा', 'कल्लर केरी छपड़ी', 'कोधरे का खेत', 'गुझ्झी आग', 'खंड विच गलेफीआं ज़हर दीआं गंदलां', 'दुख्खां दी अग दा घर' आदि कह कर जीव को सावधान किया है कि इसमें स्थायी सुख व शान्ति की आशा रखना भारी मूर्खता है। नाशवान पदार्थों के मोह में फँस कर कभी भी जीवन के मूल मनोरथ को आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहिये। आप कहते हैं कि संसार के भोग बाहर से शक्कर जैसे मीठे हैं पर इनका प्रभाव ज़हरीला है। जीव को इनसे पैदा होने वाले संकट का अन्त समय पता लगता है, जब कोई उपाय नहीं हो सकता, कोई पेश नहीं चल सकती :

देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु!
सांई बाझहु आपणे वेदण कहिऐ किसु।

(फ़रीद-आदि ग्रन्थ, पृ. 1378)

साईं बुल्लेशाह मनुष्य को संसार और शरीर दोनों की असलियत के विषय में सावधान करते हैं कि जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह चार दिनों की मिट्टी की गुलज़ार है। संसार स्थिर नहीं है। शरीर मिट्टी की ढेरी है, जिसे एक न एक दिन गिर जाना है। शरीर और संसार की पहेली बूझने से ही जीव दोनों के बन्धन तोड़ कर निज घर वापस जा सकता है :

वाह वाह माटी दी गुलज़ार।
माटी घोड़ा, माटी जोड़ा, माटी दा असवार।
माटी माटी नूं दौड़ावै, माटी दी खड़कार।
माटी माटी नूं मारन लग्गी, माटी दे हथिआर।
जिस माटी पर बहुती माटी, सो माटी हंकार।
माटी माटी नूं देखन आई, माटी दी ए बहार।
हस्स खेड फिर माटी होवे, पैंदी पाउं पसार।
बुल्ला इह बुझारत बुज्झे, तां लाहि सिरों भुइं मार।

'खाकी खाक सिओं रल जाना, तूं कदे तां हो सिआना' और 'रैन गई लटके सभ तारे' आदि बहुत-सी काफ़ियों में आपने संसार और उसके सम्बन्धों व पदार्थों की असलियत खोल कर समझाई है। आप बार-बार इस बात पर ज़ोर देते हैं कि ये वस्तुएँ अस्थायी व नाशवान हैं। इनमें से कोई वस्तु अन्त समय साथ नहीं जाती। सार वस्तु परमात्मा का प्रेम और सतगुरु की आज्ञा मानना है क्योंकि इनकी सहायता से हम अपने बन्धन तोड़ कर वापस अपने मूल में समा सकते हैं। आप कुरान शरीफ़ की आयतों से उद्धरण देकर समझाते हैं कि मनुष्य को अशरफ-उल-मख़लूकात बनाया गया है। इसमें परमात्मा ने अपना नूर रखा है। इसको संसार में सीपियाँ और घोंगे इकट्ठे करने के लिये नहीं बल्कि अपने आपकी पहचान करने के लिये भेजा गया है :

1. लैसाफ़ीजंनती हाल बनाया, अशरफ़ इंसान बनाया।

अर्थात् : तुझे जन्नत (धुर दरगाह) में वापस पहुँचने के योग्य बनाया है और सबसे उत्तम स्थान दिया है।

2. वलकदकरमना याद कराइयो, लाइलाह दा परदा लाहिओ।

अर्थात् : हे मनुष्य ! देख, मैंने तेरा दर्जा कितना ऊँचा बनाया है, मेरे अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं, भाव तू केवल मुझे ही अपने प्यार और अपनी भक्ति के योग्य समझ।

साईं जी मनुष्य-शरीर की उस अमूल्य चर्खे से तुलना करते हैं जिस पर कुल मालिक के प्रेम या भक्ति का सूत काता जा सकता है। आप कहते

हैं कि अज्ञानी जीव इस चर्खे को मुफ़्त का माल समझ कर इसके उपयुक्त प्रयोग की ओर ध्यान नहीं देता। उसको यह ज्ञान नहीं कि यह चर्खा पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों की कड़ी मेहनत के बाद मिला है। जीव अज्ञानवश नाम या प्रभु-भक्ति की अपेक्षा इस पर अहं का सूत कातता है और मनुष्य-जन्म का अमूल्य अवसर व्यर्थ बरबाद कर लेता है :

कर कत्तन वल्ल ध्यान कुड़े।
चरखा मुफ़त तेरे हथ आया, पलिओं नहीं कुझ खोल गवाया।
नहीओं कदर मिहनत दा पाया, जद होया कम आसान कुड़े।
इस चरखे दी कीमत भारी, तूं की जाने कदर गंवारी।
उच्ची नज़र फिरें हंकारी, विच अपनी शान गुमान कुड़े।
कर कत्तन वल्ल ध्यान कुड़े।
इह चरखा तूं क्यों गँवाया, क्यों तूं खेह दे विच रलाया।
जद दा हथ तेरे इह आया, तूं कदे ना डाहिआ आन कुड़े।
कर कत्तन वल्ल ध्यान कुड़े।

आप कहते हैं कि यह संसार आवागमन की सराय है। पहले आये लोग यहाँ नहीं रहे और न ही अब आने वाले रहेंगे :

1. आवागौण सराईं डेरे साथ तिआर मुसाफिर तेरे।
   तैं ना सुनिया कूच नगारे अब तो जाग मुसाफिर प्यारे।
2. इक जंमदे इक मर मर जांदे एहो आवागौन।
3. पानी भर भर गईआं सभो आपो अपनी वारी।
   इक भर आईआं, इक भर चल्लीआं,
   इक खलिआं बांह पसारी।

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि यह संसार एक सराय की तरह है जहाँ एक रात का निवास है। यह पाँव पसार कर सोने का स्थान नहीं :

इक रात सरां दा रहिना ए, एथे आ कर भुल्ल ना बहिना ए।
कल्ल सभ दा कूच नकारा ए, तैं कित वल पाउं पसारा ए।

ज्ञानी पुरुष जीवन और संसार की असलियत को समझता हुआ अपनी दृष्टि सदा अपने अन्त पर रखता है। वह यहाँ से शुभ कर्मों और परमात्मा

की भक्ति का तोशा तैयार करके साथ ले जाता है क्योंकि आगे काम आने वाली यही एकमात्र वस्तु है :

पल दा वासा वस्सन एथे रहिन नूं अग्गे डेरा ए।
लै लै तुहफ़े घर नूं घल्लीं इहो वेला तेरा ए।
ओथे हत्थ ना लगदा कुझ वी एथों ही लै जावेंगा।
हजाब करें दरवेशी कोलों कब लग हुक्म चलावेंगा।

महाभारत में आता है कि यक्ष ने युधिष्ठर से पूछा कि दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक कौन-सी चीज़ है ? युधिष्ठर ने उत्तर दिया कि संसार की सबसे विचित्र बात यह है कि लोग प्रतिदिन दूसरों को मरते हुए देखते हैं, परन्तु हरएक के मन में यह भ्रम बना रहता है कि शायद वह कभी नहीं मरेगा। शेख फ़रीद जी कहते हैं कि यदि कोई संसार में रह सकता तो हमसे पहले आये लोग कभी संसार को छोड़ कर न जाते :

फरीदा किथे तैडे मापिआ जिन्ही तू जणिओहि।
तै पासहु ओइ लदि गए तूं अजै न पतीणोहि।

(फ़रीद–आदि ग्रन्थ, पृ. 1381)

आप फ़रमाते हैं कि संसार रूपी सरोवर भी नाशवान है और इसमें उतरे जीव रूपी पक्षी भी नाशवान हैं। संसार रूपी वन में दृष्टि डाल कर देख लें कि मृत्यु-ऋतु हर कोने में पहुँचती है :

चलि चलि गईआं पंखीआ जिनी वसाए तल।
फरीदा सरु भरिआ भी चलसी थके कवल इकल।

(फ़रीद–आदि ग्रन्थ, पृ. 1381)

फरीदा रुति फिरा वणु कंबिआ पत झड़े झड़ि पाहि।
चारे कुंडा ढूंढीआं रहणु किथाऊ नाहि।

(वही, पृ. 1383)

मनुष्य का जीवन नदी के किनारे खड़े वृक्ष की भाँति है जिसका कोई भरोसा नहीं। यह कच्चे बर्तन के समान है जिसमें साँसों का पानी बहुत देर नहीं रह सकता। मनुष्य-जीवन ऐसी गुदड़ी है जो एक बार फट जाये तो दुबारा सिल नहीं सकती :

कंधी उतै रुखड़ा किचरकु बंनै धीरु।
फरीदा कचै भांडे रखीऐ किचरु ताई नीरु।

(फ़रीद–आदि ग्रन्थ, पृ. 1382)

फरीदा खिंथड़ि मेखां अगलीआ जिंदु न काई मेख।
वारी आपो आपणी चले मसाइक सेख॥

(वही, पृ. 1380)

अज्ञानी जीव संसार में काम कर रहे कर्म और फल के नियम को नहीं समझता। वह चाहता है कि कर्म भी अपनी इच्छा से करे और फल भी अपनी मर्जी का ले।[1] यह असम्भव है क्योकि कर्म करने की स्वतन्त्रता फल भोगने के बन्धन को जन्म देती है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं, संसार रूपी नगर में 'जैसी करनी वैसी भरनी' का व्यवहार है। जब किये हुए कर्मों का फल स्वयं भोगना पड़ता है तो बुरे कर्म करना मूर्खता नहीं तो और क्या है ?

1. जैसी करनी वैसी भरनी पिरम नगर वरतारा ए।
2. रंग बरंगे सूल अपुठे चंबड़ जावन मैनूं।
एथों दे दुख्ख नाल लै जावां, अगले सौंपां कैनूं।

अत्याचार, ज़बरदस्ती और अहंकार वही कर सकता है जिसको किये हुए कर्मों का फल मिलने की चिन्ता न हो :

1. कर लै चावड़ चार दिहाड़े थीसें अंत निमाना।
जुलम करें की लोक सतावें किउं लिया उलट कहाना।
जिस दिन दा वी मान करें तूं सोई संग ना जाना।
शहिर खामोशा नूं वेख हमेशा, सारा जग जिस माहिं समाना[2]।
2. खावें मास चबावें बीड़े अंग पुशाक लगाईआ ई।
टेडी पगड़ी आकड़ चल्लें जुत्ती पब्ब अड़ाईआ ई।
इक दिन अज़ल[3] दा बकरा बनके आपना आप कुहावेगा।

जीव पराया हक मार कर खुश होता है। वह यह समझने का प्रयत्न नहीं करता कि यह ऋण उतारने के लिये उसे फिर संसार में आना पड़ता

---

1. फरीदा लोड़ै दाखि बिजउरीआं किकरि बीजै जटु।
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु। (फ़रीद–आदि ग्रन्थ, पृ. 1379)

2. चुप का शहर अर्थात् कब्रिस्तान 3. मृत्यु।

है। ज़बरदस्ती सांसारिक विजय प्राप्त करने वाला प्राणी जीवन की बाजी हार जाता है :

हक पराया जातो नाही खा कर भार उठावेंगा।
फेर ना आ के बदला देसें लाखी खेत लुटावेंगा[1]।
दा ला के विच जग दे जूए जित्ते दंम हरावेंगा।

बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो अपने अन्दर झाँकता है और बुरे कर्मों से बचता है। उसको विदित है कि बुरे कर्मों का सदा बुरा फल मिलता है :

फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेखु।
आपनड़े गिरीवानि महि सिरु नींवां करि देखु।

(फ़रीद–आदि ग्रन्थ, पृ. 1378)

साईं जी अपनी काफ़ी 'नित पढ़ना सें इसतग़फ़ार कैसी तोबा है एह यार' में बताते हैं कि जीव बगुले भगत की भाँति अपनी ओर से बहुत होशियारी करता है। वह धर्मी बन कर दिखावे के लिये मन्दिरों, मसजिदों और गिरजा घरों में तोबा या प्रायश्चित्त करता है। वह बात-बात पर धर्म-ग्रन्थों की शपथ लेता है, पर इसके बावजूद अत्याचार, ज़बरदस्ती, बेईमानी, लालच और धोखेबाज़ी से बाज़ नहीं आता। मुँह से प्रायश्चित्त करने वाले पर दिल से लोभ, लालच और अनेक प्रकार के विकारों और कुकर्मों में फँसे हुए लोग, 'यहाँ' और 'वहाँ' दोनों जहानों में खराब होते हैं। उनके किये हुए कर्म ही उनके विनाश का कारण बन जाते हैं। जब अन्त समय उनसे कर्मों का लेखा माँगा जाता है तो वे बहुत पछताते हैं, परन्तु उस समय क्या हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य मनमत छोड़ कर किसी कामिल मुर्शिद अर्थात पूर्ण सतगुरु की हिदायतो पर अमल करे, जिससे वह बुरे कर्मों से बच कर भवसागर से पार हो सके :

नित्त पढ़ना एं इसतग़फ़ार कैसी तोबा है इह यार।
सावें दे के लवें सवाई, वाधेआं दी तूं बाज़ी लाई।
मुसलमानी इह किथों आई,
नित्त पढ़ना एं इसतग़फ़ार कैसी तोबा है इह यार।

---

1. मनुष्य-जन्म का लाखों रुपये के मूल्य का खेत व्यर्थ बरबाद कर लेगा।

जित्थे ना जाना ओथे जाएं, माल पराया मुँह धर खाएं।
कूड़ किताबां सिर ते चाएं, इह तेरा इतबार।
नित्त पढ़ना एं इसतग़फ़ार कैसी तोबा है इह यार।
ज़ालम जुलमों नाहीं डरदे, आपनी अमलीं आपे मरदे।
मुंहों तौबा दिलों न करदे, एथे ओथे होन खुआर।
नित्त पढ़ना एं इसतग़फ़ार कैसी तौबा है यह यार।

बाबा फ़रीद ने अज्ञानी और ग़ाफिल जीव को ऐसे कर्म त्यागने की प्रेरणा दी है, जिनके कारण उसे साहिब के दरबार में पछताना पड़ेगा और ऐसी रहनी धारण करने की ताकीद की है, जिससे वह सदा के लिये सुख प्राप्त कर सकता है :

1. फरीदा जिनी कंमी नाहि गुण ते कंमड़े विसारि।
मतु सरमिंदा थीवही सांईं दै दरबारि।

(फ़रीद-आदि ग्रन्थ, पृ. 1381)

2. (क) आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ।
फरीदा जे तूं मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ।

(वही, पृ. 1382)

(ख) बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे।
इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे।

(वही, पृ. 488)

इसलिये साईं बुल्लेशाह जीव को राय देते हैं, 'केसर बीज जो केसर होवे, लसण बीज ठगावेंगा।' केसर बोना उस खुदावंद करीम (दयालु प्रभु) की भक्ति करना है[1] जो जीव को सांसारिक बन्धनों से आज़ाद करके प्रभु से मिला सकती है। 'से वणजारे आए नी माए' में आप निर्बल जीव की दुबिधा का वर्णन करते हैं जो कामिल फ़कीरों से प्रभु के नाम के लाल

---

1. बाबा फ़रीद ने परमात्मा की भक्ति की कस्तूरी से तुलना की है। जो लोग रात को जाग कर मेहनत करते हैं, उनको ही यह अमूल्य वस्तु मिलती है :

फरीदा राति कथूरी वंडीऐ सुतिआ मिलै न भाउ।
जिन्हां नैण नींद्रावले तिन्हां मिलणु कुआउ।

(फ़रीद-आदि ग्रन्थ, पृ. 1382)

खरीदना चाहता है, परन्तु उन अमूल्य लालों की कीमत देने को तैयार नहीं होता। उन लालों का मूल्य 'सिर' अर्थात अहं का त्याग है पर जिसने कभी सुई की चुभन सहन न की हो, वह सिर कैसे काट सकता है ?

आप 'हजाब करें दरवेशी कोलों कब लग ख़ैर मनावेंगा' में जीव को सावधान करते हैं कि तेरा वास्तविक भला संसार में अपना हुक्म चलाने में नहीं बल्कि अहं का त्याग करके दरवेशों, फ़कीरों और मालिक के सच्चे प्रेमियों वाली रहनी धारण करने में है। आप समझाते हैं कि सच्चे सुख और शान्ति का मार्ग परमात्मा का प्रेम है, नश्वर संसार और इसके नश्वर रिश्तों, पदार्थों और भोगों का मोह नहीं।

साईं बुल्लेशाह 'कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े' काफ़ी में उपदेश करते हैं कि जब तक साँसों का भण्डार जारी है तब तक सतगुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार जीवन रूपी रात में, ज्ञान का दीपक जला कर परमात्मा की भक्ति का सूत कात लेना चाहिये क्योंकि जब अन्त समय मौत के फ़रिश्ते सिर के पास आकर खड़े होते हैं, तब कुछ नहीं हो सकता :

दीवा अपने पास जगावीं, कत्त कत्त सूत भड़ोली पावीं।
अखीं विच्चों रात लंघावीं, औखी करके जान कुड़े।
अजे ऐडा तेरा कंम कुड़े, क्यों होई एं बेगम कुड़े।
की कर लेना उस दम कुड़े, जद घर आए महिमान कुड़े।
कर कत्तन वल्ल ध्यान कुड़े।

बन्धन मुक्ति का साधन

परमात्मा का प्रेम

पत्तियां लिखां मैं शाम नूं, पिया मैनूं नज़र ना आवे।
आंगन बना डराउना, कित बिधि रैन विहावे।
काग़ज करूँ लिख दामने, नैन आंसू लाऊँ।
बिरहों जारी हउं जरी, दिल फूक जलाऊँ।

मन-माया के बन्धनों में कैद जीव इनसे मुक्त कैसे हो ? मौलाना आज़ाद 'रुबाईयात-ए-सरमद' की भूमिका में लिखते हैं कि मादी बन्धनों में जकड़ा हुआ मनुष्य इनसे छूट नहीं सकता, जब तक इसके दिल पर कोई सख़्त प्रहार न हो। शहद पर बैठी मक्खी बिना उड़ाये नहीं उड़ती। जब तक मनुष्य का दिल चोट न खाये, यह संसार की लज़्ज़तों को नहीं छोड़ता। यह चोट केवल प्रेम के हाथों से ही लग सकती है। प्रेम के फ़रिश्ते की प्रबल भुजाओं में वह शक्ति है कि उसकी तलवार का पहला वार ही खून के सम्बन्ध और सांसारिक आकर्षण की जंज़ीरों को टुकड़े-टुकड़े कर देता है।[1] आप प्रसिद्ध सूफ़ी अत्तार के उद्धरण से कहते हैं कि काफ़िर (ग़ैर मुस्लिम) को कुफ्र और मोमिन (मुसलमान) को दीन मुबारिक हो, आशिक (प्रेमी) को केवल प्रेम के दर्द की एक रत्ती ही काफी है :

कुफ़र काफ़र रा व दीन दीदार रा,
ज़र्रा-ए दरदे दिल अत्तार रा।

कामिल पीरों, फ़कीरों, सन्तों-महात्माओं ने मनुष्य-जीवन का यह मौलिक भेद खोला है कि संसार और इसकी वस्तुओं व पदार्थों का प्यार मनुष्य को संसार और आवागमन के चक्कर से बाँधता है पर परमात्मा

1. 'रुबाईयात-ए-सरमद', जहाँगीर बुक डिपो, खारी बावली, दिल्ली।

और उसके नाम का प्यार उसको इन बन्धनों से छुड़ा कर परमात्मा से मिलाता है।[1]

मनुष्य सांसारिक वस्तुओं व पदार्थों का शिकार है। सन्तान, धन, पद, सत्ता आदि हर प्रकार की सांसारिक तृष्णा का छोटा-सा बीज एक बड़े वृक्ष को जन्म देता है। हर तृष्णा को पूरा होने के लिये दुखों और मुसीबतों के लम्बे संघर्ष में से होकर गुजरना पड़ता है। अधूरी रह गई इच्छा अनेक क्लेशों और चिन्ताओं के कुएँ में धक्का देती है और पूरी हुई इच्छा अनेक प्रकार के बन्धनों और ज़िम्मेदारियों को जन्म देती है। हर तृष्णा में से अन्य अनेक तृष्णाएँ अंकुरित होती हैं जो मनुष्य को बुरी तरह संसार से बाँध देती हैं। परिणाम यह होता है कि मनुष्य के मन में सदा ऐसे विकराल ज्वार-भाटे उठते रहते हैं कि उसको पल भर के लिये भी सच्ची शान्ति नहीं मिलती। परन्तु जब अनायत शाह जैसे किसी कामिल मुर्शिद की संगति द्वारा मनुष्य को जगत की असलियत का ज्ञान हो जाता है और उसके अन्दर निज घर वापस पहुँचने की तड़प पैदा हो जाती है तो उसके प्रेम और यत्न की दिशा बदल जाती है।

साईं बुल्लेशाह की वाणी उस प्रेमी हृदय की वेदना प्रकट करती है जिसके अन्दर प्रियतम के मिलाप की तड़प की चिनगारी सुलग चुकी है। आप संकेत करते हैं कि आत्मा की परमात्मा से प्रीति आजकल की बात नहीं है। यह आदि काल की खुली प्रेम-कथा है जिसे हरएक जानता है। जैसे ही जीव के अन्दर परमात्मा के मिलाप की सोई हुई प्रीति जाग उठती है, उसके लिये वियोग की अग्नि का सहन कर पाना कठिन हो जाता है।[2] वियोग की आग तन को तपाती है, जिगर को बेंधती है और तपते कड़ाहे में

---

1. गुरु नानकदेव ने फ़रमाया है कि परमात्मा के प्रेम के बिना सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पा सकना असम्भव है :

मन रे किउ छुटहि बिनु पिआर। (आदि ग्रन्थ, पृ. 60)

सन्त नामदेव जी कहते हैं :

नामे प्रीति नाराइण लागी। सहज सुभाइ भइओ बैरागी।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1164)

2. साईं बुल्लेशाह ने सतगुरु के वियोग को परमात्मा के वियोग वाले रंग में ही प्रकट किया है। सतगुरु के वियोग का वर्णन बुल्लेशाह के जीवन वाले भाग में देखिये।

डाल कर तलती है। एक अनोखा दर्द कलेजे में उठता है। विरह की लपटें दिन-प्रतिदिन ऊँची होती जाती हैं :

1. इक रांझा मैनूं लोड़ीदा।
   कुन फ़यीकून अग्गे दीआं लग्गीआं, निहुं न लगड़ा चोरी दा।[1]
2. नी मैनूं लगड़ा इश्क अवल्लड़ा रोज़ अज़ल दा।
   विच कढ़ाई तल तल पावे तलिआं नूं चा तलदा।
   मोइआं नूं इह वल वल मारे, वलिआं नूं चा वलदा।
   किआ जाणा कोई चिणग कखीं ए, नित्त सूल कलेजे सलदा।
   तीर जिगर विच लग्गा इश्कों, हलाइआं भी नहीं हलदा।
   बुल्ला शाह दा नेहुं अनोखा, नहीं रलाइआं रलदा।

साईं जी की काफ़ियाँ 'बहुड़ीं वे तबीबा मैंडी जिंद गईआ', 'तुसी करो असाडी कारी', 'अब लगन लग्गी क्या करीए', 'मित्तर प्यारे कारन नी', 'मैनूं छड गए आप लद गए', 'मैनूं दरद अवल्लड़े दी पीड़' आदि इस विरह की तड़प का सुन्दर वर्णन करती हैं।

कई अन्य सूफ़ी दरवेशों ने भी इस वियोग की पीड़ा के करुणामय गीत गाये हैं। मौलाना रूम अपनी मसनवी को आत्मा के वियोग के दर्द और पुकार से ही शुरू करते हैं। आत्मा रूपी बाँसुरी कहती है कि मैं अपने वियोग की शिकायत की कहानी वर्णन कर रही हूँ। जब से मैं वन (अपने मूल) से बिछुड़ी हूँ, मैं परेशान हूँ। जिस किसी को भी उसके मूल से अलग किया जाता है, उसमें अपने मूल से दुबारा मिलाप करने की तड़प पैदा हो जाती है।

बाबा फ़रीद ने विरह की तड़प को 'सुलतानी अहिसास' का दर्जा दिया है। आप कहते हैं कि विरह उत्तम और शुभ भावना है। विरह-विहीन प्राणी, जीवित शव के समान है। विरह प्रेम की निशानी है। यह प्रेम को

---

1. 'कुन फ़यीकून' कुरान शरीफ़ की आयत है, जिसमें परमात्मा द्वारा सृष्टि की रचना का हुक्म किये जाने की ओर संकेत है। कुन=हो जा; फ़यीकून=हो गया। साईं जी संकेत कर रहे हैं कि जब से आत्मा परमात्मा के हुक्म से संसार में आई है, इसके अन्दर वियोग की तड़प पैदा हो चुकी है।

प्रकट भी करती है और प्रेम को पक्का भी करती है। जिसके हृदय में वियोग का दर्द नहीं, वह मिलाप के लिये क्या यत्न करेगा :

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु।
फरीदा जितु तनि बिरहु न उपजै सो तनु जाणु मसानु।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1379)

सच्चा प्रेमी प्रियतम का पल भर का वियोग भी सहन नहीं करता। वह बार-बार उसे अपनी ओर मुख मोड़ने के लिये विनती करता है और प्रियतम को हृदय से लगाने के लिये मछली की भाँति तड़पता है :

1. दिल लोचे माही यार नूं।
2. सानूं आ मिल यार प्यारिया।
3. साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारिया, साडे वल मुखड़ा मोड़।
4. अपने संग रलाईं प्यारे अपने संग रलाईं।

साजन की ओर से की गई पल भर की देरी असह्य हो जाती है। जैसे तैसे मिलाप होना ही चाहिये, चाहे उसके लिये जान ही क्यों न कुर्बान करनी पड़े :

1. अब किउं साजन चिर लाइओ रे।
2. आ साजन गल लग असाडे किहा झेड़ा लाइओ ई।
3. तुम सुनो हमारे बैना, मोहे रात दिने नहीं चैना।
   हुन पी बिन पलक न सरिए, अब लगन लगी क्या करीए।

साईं बुल्लेशाह की वाणी में केवल विरह के दर्द भरे वर्णन ही नहीं हैं, मिलाप के सुहावने पलों का भी सुन्दर वर्णन है। इस प्रकार की सबसे सुन्दर काफ़ी 'घड़ियाली दिओ निकाल नी, हुन पी घर आया लाल' है। प्रेमिका चाहती है कि अब जबकि प्रियतम घर आ गया है, समय रुक जाये तथा वियोग की सब सम्भावनाएँ समाप्त हो जायें ताकि प्यारे के मिलाप और उससे प्राप्त हुए अलौकिक आनन्द का कभी अन्त न हो।

साईं बुल्लेशाह में परमात्मा के प्रेम का भाव इतना प्रबल है कि आपने दयालु प्रभु को सर्व-शक्तिमान, सर्व-ज्ञाता, सर्व-व्यापक, हाकिम, राज़िक, खालिक आदि दिखाने पर कम और प्यारा प्रियतम या दिलबर जानी दिखाने

पर अधिक बल दिया है। आप कहते हैं, इश्क अल्ला की ज़ात है।[1] इसलिये आपने स्वयं को प्रेमिका और परमात्मा को प्रितयम के तौर पर वर्णन किया है। साईं जी के लिये वह परमात्मा सज्जन या साजन, माही या साईं, शहु (पति) या शाह, रांझा या रांझण, होत या पुन्नू और कृष्ण या कान्ह है। साईं जी उस महबूबे हकीकी को लैला, महिवाल, ढोला, प्रीतम, जानी, दिलबर यार और सुन्दर यार आदि कह कर पुकारते हैं। आपकी महबूब से ऐसी आश्चर्यजनक निकटता है कि आप उसको 'तू-तू' कह कर पुकारते हैं और उसको छलिया, जादूगर, भेखी, चोर और ठग भी कह देते हैं। आपने अपने प्यारे के साथ कई प्रकार के कलोल किये हैं। आपके वर्णन में लाड़-प्यार है, प्रेम है, मान और गर्व है, एक यकीन और भरोसा है। आप अपनी बेपरवाही और मस्ती में प्रियतम से पूछते हैं, 'कुझ असीं वी तैनूं पिआरे हां कि महीउं घोल घुमाई हां ?'[2] इस प्रेममय अन्दाज़ में ही आप कह उठते हैं :

1. इक रांझा मैनूं लोड़ीदा।
2. सस्सी दा दिल लुट्टन कारन होत पुन्नूं बन आया।
3. टुक्क बूझ कौन छुप आया ए।
   किस भेखी भेख वटाया ए।
4. मेरी बुक्कल दे विच चोर साधो, किस नूं कूक सुनावां।
5. लुकन छपन ते छल जापन, इह तेरी वडिआई।

---

1. दादू साहिब ने भी फ़रमाया है कि परमात्मा की जाति इश्क है और उसका वजूद भी इश्क है :

इसक अलह की जात है, इसक अलह का अंग।
इसक अल्लह औजूद है, इसक अलह का रंग॥
(दादू दयाल की बानी, भाग 1, विरह 152)

2. एक सूफ़ी फ़कीर ने फ़रमाया है कि इश्क पहले माशूक (प्रेमिका) के दिल में पैदा होता है, 'इश्क अव्वलदर दिले माशूक पैदा में शवद।' हज़रत बू अली कलन्दर फ़रमाते हैं कि यदि तुझे उसके प्यार की खबर हो जाये तो तुझे पता लग जायेगा कि वह तुझे तुझसे कितना अधिक प्यार करता है :

गर तुरा अज़ इश्क ओ बाशद खबर,
अज़ तू मुश्ताक असत ओ मुश्ताकतर।

कुल मालिक माया के परदे के पीछे छिपा प्रकाश का पुंज है पर साईं बुल्लेशाह के लिये वह ऐसा महबूब है, जिसने आशिक को तड़पाने के लिये अपने प्रकाश को घूँघट के पीछे छिपा लिया है :

उस दा मुखख इक जोत है घूंघट है संसार।
घूँघट में वह छिप गया, मुख पर आँचल डाल।

साईं बुल्लेशाह के लिये आसमान में चमकते तारे प्यारे प्रियतम के जादू का कमाल है। मायावी संसार भी उस जादूगर प्रियतम के जादू का ही चमत्कार है जो रस्सी के सर्प होने का भ्रम पैदा करता है :

वे तूं कैसे चैंचर चाए, तारे खारी हेठ छुपाए।
मुंज दी रस्सी नाग बनाए, तेरे सिहरां[1] तो बलिहारी।

उस परमात्मा को रूप, रंग, वर्ण और जाति से न्यारा कहा गया है परन्तु साईं जी उस परमेश्वर की इस विशेषता को भी ऐसे प्रेममय नखरे से वर्णन करते हैं कि वह निराकार प्रभु भी निकट रहता हुआ सज्जन या प्रियतम ही प्रतीत होने लगता है :

वाह वाह रमज़ सज्जन दी होर, आशिक बिना न समझे कोर[2]।
बुल्ला शहु नूं कोई न वेखे, जो वेखे सो किसे न लेखे।
उसदा रंग न रूप न रेखे[3], ओह ई होवे हो के चोर।

वह मालिक सर्व-शक्तिमान है और उसकी रज़ा या भाणा भी सर्व-समर्थ है। परन्तु साईं जी के लिये कुल मालिक वह अलबेला महबूब है जो न किसी की पूछता है और न मानता है। वह मनमानी करने वाला सुन्दर शहु है। उसकी चतुराई यह है कि परदे के पीछे बैठ कर रमज़ें करता है और तारें हिलाता है, सामने आकर बात करना पसन्द नहीं करता :

सुलहीं ना मंनदा बात न पुछदा आख वेखां की करदा।
कल मैं कमली[4] ते ओह कमला[5] हुन किउं मैथों डरदा।
ओहले बहि के रमज़ चलाई दिल नूं चोट लगाई।
जिंद कुड़िकी दे मुंह आई।

'वत्त ना करसां माण रंझेटड़े यार दा वे अड़िआ' में साईं जी यह विचार प्रकट करते हैं कि मनमर्जी करने वाले दिलबर की रमज़ों को समझ

1. जादू 2. अँधा 3. वह निराकार है 4. प्रेमिका 5. प्रेमी।

पाना असम्भव है। वह अवगुणहारों से प्यार कर रहा है परन्तु गुणवन्तियों को तड़पा रहा है। कोई नहीं कह सकता कि ऐसा क्यों ? अपनी लीला वह स्वयं ही जानता है :

हिक करदिआं खुदी हंकार, ओहनो नूं तारनैं वे अड़िआ।
इक रहिंदीआं नित्त खुआर, सड़ीआं नूं साड़नैं वे अड़िआ।
चिक्कड़ भरीआं नाल, नित्त झुंबर घतना एं वे अड़िआ।
मैं लाया हार शिंगार, मैथों उठ नसना एं वे अड़िआ।
वत्त ना करसां माण, रंझेटे यार दा वे अड़िआ।

गुरु नानक साहिब ने भी कहा है कि वह प्रभु अपनी रज़ा का मालिक है और जो चाहे, सो करता है :

पुछि न साजे पुछि न ढाहे पुछि न देवै लेइ।
आपणी कुदरति आपे जाणै आपे करणु करेइ।
सभना वेखै नदरि करि जै भावै तै देइ।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 53)

कामिल फ़कीरों ने संकेत किया है कि जब दयालु प्रभु ने सृष्टि की रचना की तो कई आत्माएँ परमात्मा को छोड़ कर रचना में आने के लिये तैयार नहीं थीं। परन्तु परमात्मा ने उनको यह कह कर संसार में भेज दिया कि मैं तुम्हें वापस लाने के लिये स्वयं संसार में आऊँगा। साईं बुल्लेशाह यह सूक्ष्म रहस्य भी अति प्रेममय ढंग से प्रकट करते हैं। आप परमात्मा से शिकायत करते हैं—सर्व-शक्तिमान परमात्मा से नहीं अपने महबूब परमात्मा से—कि तूने हमें 'लारा लगा कर' संसार में भेज दिया, पर बाद में अपने ऊपर परदा डाल कर हमें भ्रमों में भरमा दिया और ऐसे भवसागर में धक्का दे दिया जिसमें से बाहर निकल पाना हमारे वश का रोग नहीं है :

मैं गल्ल ओथे दी करदा हां, पर गल्ल करदा वी डरदा हां।
नाल रूहां दे लारा लाया, तुसी चलो मैं नाले आया।
एथे परदा चा बनाया, मैं भरम भुलाया फिरदा हां।
बुल्ला शाह बेअंत डूंघाई, दो जग बीच न लगदी काई।
उरार पार दी खबर न काई, मैं बे सिर पैरीं तरदा हां।
मैं गल्ल ओथे दी करदा हां, पर गल्ल करदा वी डरदा हां।

पूर्ण सन्तों ने परमात्मा के निराकार से साकार रूप धारण करने और पूर्ण अद्वैत में से अनन्त अनेकता में प्रकट होने के बड़े शक्तिशाली वर्णन किये हैं। साईं जी यह सैद्धान्तिक वर्णन भी अपने मन-पसन्द प्रेममय रंग में ही करते हैं। आप दयालु प्रभु को 'सोहना यार' और उसकी सृजन की हुई रचना को 'उसके हुसन का गरम बाज़ार' कह कर सराहते हैं। आप पूर्ण अद्वैत में से अनन्त अनेकता के उत्पन्न होने की अवस्था को प्रकट करते हुए कहते हैं :

हुन मैं लखिया सोहना यार, जिसदे हुसन दा गरम बाज़ार।
जद अहिद[1] इक इकल्ला सी, न ज़ाहर कोई तजल्ला सी[2]।
न रब रसूल न अल्ला सी, न जब्बार[3] ते न कहार[4]।
हुन मैं लख़िया सोहना यार।

इस पूर्ण एकता में वह प्यारा रंग-रूप से परे था। वह अनुपम और अनोखा था, अपने जैसा आप था। कोई दूसरा नहीं था जिससे उसकी तुलना की जा सके। फिर स्वयं हज़ारों रंगों से प्रकट हो गया :

बेचून न बेचगूना सी, बेशबीआ बेनमूना सी।
न कोई रंग नमूना सी, हुन गूनांगूं हज़ार[5]।
हुन मैं लखिया सोहना यार।

अनेकता की अवस्था में वह एक सुन्दर दिलदार स्वयं ही अनेक प्रकार की पोशाकें पहन कर सामने आ गया। वह कहीं आदम बन गया, कहीं पैगम्बर और कहीं मुर्शिद। उस प्यारे ने अपने हुक्म से रचना के अनन्त विस्तार का सृजन किया :

प्यारा पहिन पोशाकां आया, आदम अपना नाम धराया।
अहिद तों बन अहिमद आया[6], नबीयां दा सरदार।
कुन किहा फ़यीकून कहाया[7], बेचूनी से चुन बनाया[8]।

1. निराकार परमेश्वर 2. तजल्ला; प्रकाश; भाव रचना करने वाली शक्ति निराकार प्रभु में ही समाई हुई थी 3. अत्याचारी 4. ज़ुल्म करने वाला 5. अनेक रंग-रूप धारण करके प्रकट हो गया 6. परमात्मा से सतगुरु बन गया 7. परमात्मा ने कहा, 'हो जा' तो हो गया। संकेत हुक्म, कलमें या शब्द द्वारा सृष्टि के सृजन की ओर है 8. माया रहित अवस्था से मायावी जगत बनाया।

अहिद दे विच मीम रलाया, तां कीता ऐड पसार[1]।
हुन मैं लखिया सोहना यार।

आपने अपनी काफ़ी 'रहु रहु वे इश्का मारिया ई' में अपने प्रियतम के विचित्र व्यवहार का बहुत रहस्यमय ढंग से वर्णन किया है। ईसा, राम, मूसा और कृष्ण में अपना प्रकाश रखने वाला भी वह प्रियतम है। ज़करीआ, सरमद, शम्स तबरेज़ और शाह शरफ़ आदि के अन्दर इश्क-ए-हकीकी के लिये कई प्रकार की यातनाएँ सहन करने की शक्ति पैदा करने वाला भी वही प्यारा है। यूसुफ़-ज़ुलेखा, लैला-मजनूं, सस्सी-पुन्नू, हीर-रांझा, मिर्ज़ा-साहिबां आदि में प्रेम की लौ जलाने वाला भी वही है। शैतान, नमरूद, फरौन, हिरण्यकशिपु, रावण और कौरवों आदि में ख़ुदी या अहंकार पैदा करके उनका नाश करने वाला भी वह प्रियतम प्यारा प्रभु ही है। संसार में जो कुछ हो रहा है, उस प्यारे प्रभु का रंग-बिरंगा नाटक है। आप 'कीहनूं लामकानी दसदे हो, तुसी हर रंग दे विच वसदे हो [2] काफ़ी में भी संसार को प्यारे प्रियतम के प्रेम का खेल कहते हैं :

कुन फ़यीकुन तैं आप कहाया, तैं बाझहों होर केहड़ा आया।
इश्कों सभ ज़हूर बनाया, आशिक हो के वसदे हो।
कीहनूं लामकानी दसदे हो।

साईं जी कहते हैं कि मेरा प्रियतम सबसे ऊँची और सबसे बड़ी सरकार है। देवी-देवता, पीर-पैग़म्बर आदि सब उस प्रियतम को दण्डवत करते हैं। परन्तु वह मेरा दिलजानी है। उसको रिझाने के लिये मुझे मसजिद, मन्दिर आदि में जाने की, व्रत या रोज़े रखने की और वुज़ू करने

---

1. पूर्ण एकता से संसार का अनेकता वाला प्रसार किया।

2. 'भरवासा की अश्नाई दा' काफ़ी में आपने यही विचार प्रकट करने का प्रयत्न किया है।

मिर्ज़ा ग़ालिब ने भी फ़रमाया है कि जिस तरह मजनू की हर अदा लैला की आँख के इशारे से जन्म लेती थी, उसी तरह सृष्टि का कण-कण उस प्यारे प्रियतम के इशारे पर नाच रहा है :

ज़र्रा ज़र्रा सागरे मैखानाए नैरंग है,
गरदशे मजनूं बचशमक हाए लैला आश्ना।

या नमाज़ पढ़ने की आवश्यकता नहीं। मेरे मुर्शिद ने मुझे यह गूढ़ भेद समझा दिया है कि वह दिलजानी प्राण न्योछावर करने पर खुश होता है, इसलिये मैं उसे रिझाने के लिये, उस पर जान न्योछावर करने के लिये तैयार हो गया हूँ :

तजूं मसीत तजूं बुतखाना, बरती रहां न रोज़ा जाना।
भुल गया वुजू नमाज दुगाना, तैं पर जान करां बलिहार।
पीर पैगंबर इस दे बरदे[1], इनस[2] मलाइक[3] सजदे करदे।
सर कदमां दे उत्ते धरदे, सब तों वड्डी ओह सरकार।
जे कोई उस नूं लखिया चाहे, बाझ वसीले लखिया न जाये।
शाह अनायत भेद बताये, तां खुल्हे सभ इसरार[4]।
हुन मैं लखिया सोहना यार, जिसदे हुसन दा गरम बाज़ार।

परमात्मा का प्रेमी भक्त स्वयं को छोटा और उस सच्चे प्रियतम को बड़े से बड़ा समझता है जिससे उसके अन्दर सच्ची नम्रता पैदा हो जाती है जो कामिल फ़कीरों का सबसे बड़ा आभूषण है। साईं जी एक सच्चे प्रेमी की भाँति अपने विषय में नम्रतापूर्वक शब्दों का प्रयोग करते हैं :

1. ऐथे जितने हैन सब तिनते, मैं गुनाहगार पुराना।
2. मैं चूहड़ेटड़ी हां सच्चे साहिब दे दरबारों।
   पैरों नंगी सिरों झंडोली सुनेहा आया पारों।

आप कहते हैं कि नेक और भजन-सुमिरन करने वाले मेरे सब साथी पार हो गये हैं परन्तु मेरे पल्ले कोई गुण या अच्छाई नहीं है। मुझे केवल अपने प्रियतम पर विश्वास है, 'अमला वालीआं लंघ लंघ गईआं, साडीआं लाजां साईं नूं।' यदि वह प्रियतम मेरे कर्मों की ओर देखे तो मेरा कोई ठिकाना नहीं, मेरा एकमात्र सहारा उसकी दया-मेहर है :

1. अदल करें तां जा नहीं काई फ़ज़लों बुखरा पावां।
2. तुध बाझों मेरा होर न कोई कै वल करूँ पुकारों।
   बुल्ला शहु अनायत करके बुखरा मिले दीदारों।

---

1. दास 2. इनस=इनसान, मनुष्य 3. मलाइक=मलक का बहुवचन है। इसका अर्थ है, फ़रिश्ते 4. भेद।

सूफ़ी मत प्रेम और भक्ति का मार्ग है, यह परमात्मा या सतगुरु के प्रेम के आधार पर खड़ा है। मंसूर कहता है कि अल्लाह की रूह इश्क है। परमात्मा ने आदम में अपने सब गुण पैदा किये ताकि वह उसके द्वारा स्वयं को प्यार कर सके।[1] परमात्मा या सतगुरु का प्रेम सूफ़ी के ख़याल को हर ओर से हटा कर अपनी ओर मोड़ लेता है। शेख अबू सैयद (जन्म 967) कहते हैं कि सूफ़ी मत एक ओर देखना और एक ही ओर जीना सिखाता है। होना तो यह चाहिये कि सूफ़ी ख़ुदा में इतना खो जाये कि उसके लिये परमात्मा के अतिरिक्त कोई दूसरा अस्तित्व ही न रहे। सच्चा सूफ़ी पूरी तरह परमात्मा की रज़ा और भाणे में आ जाता है और अपनी आत्मा को परमात्मा के अतिरिक्त हर वस्तु से बचा कर रखता है।[2]

मौलाना शिबली कहते हैं कि मैं काबा को आग लगाना चाहता हूँ ताकि लोग भविष्य में काबा के स्थान पर काबा के मालिक उस दयालु प्रभु की ओर ही ध्यान रखें। आप नरकों और स्वर्गों को जलाना चाहते थे ताकि लोगों का ध्यान इधर से हट कर केवल परमात्मा की ओर हो जाये।[3] राबया बसरी चाहती थीं कि नरक और स्वर्ग जल कर राख हो जायें ताकि लोग स्वर्गों के लालच या नरकों के डर के स्थान पर केवल परमात्मा के लिये ही परमात्मा को प्यार करें। वह कहा करती थी, 'हे ख़ुदा, यदि मैंने तुझे स्वर्गों के लालच के कारण प्यार किया है तो मुझे इनसे दूर रखना। यदि मैंने तुझे नरकों के भय के कारण चाहा है तो मुझे नरकों की आग में जलाना। परन्तु यदि मैंने तुझे तेरे लिये प्यार किया है तो मुझे अपने प्रकाश से वंचित न रखना।'

फ़कीरों को काबा या स्वर्ग-नरक क्या जलाने हैं, यह तो उनका बात समझाने का नाटकीय ढंग है। परन्तु क्या यह आश्चर्यजनक बात नहीं कि बाहरी पूजा-स्थलों की बात तो क्या करें—शरीर को सच्चा काबा मानने वाले लोग भी इस नश्वर देह के प्रेम में इस प्रकार खोये हुए हैं कि उनका इसके अन्दर बैठे दयालु प्रभु के प्रेम की ओर ध्यान ही नहीं जाता। सूफ़ी

---

1. R.A. Nicholson, **Studies in Islamic Mysticism**, Cambridge, 1976, p. 80.

2. **History of Sufism in India**, p. 49-50.

3. Ibid, Vol.I. 59-60.

दरवेश अबुल मजद मज़दूद सनाही (मृत्यु 1030-31) कहते हैं, हे ख़ुदा, मैं तेरा प्यार और केवल तेरा प्यार माँगता हूँ। यदि मेरे भाग्य में दुनिया की दौलत नहीं है तो न सही क्योंकि दुनिया और परमात्मा का प्रेम इकट्ठे नहीं चल सकते।[1]

कामिल फ़कीरों ने आत्मा और परमात्मा के प्रेम को प्रकट करने के लिये दो प्रकार के चिह्न या अलंकार चुने हैं जिनके लिये विशेष ध्यान की आवश्यकता है। पहले प्रकार के चिह्न प्रकृति में से चुने गये हैं। कमल और सूर्य, कमल और जल, चाँद और सागर, धरती और जल, चकवी और सूर्य, चाँद और चकोर, पपीहा और वर्षा, पतंगा और ज्योति, भंवरा और फूल, मछली और सागर आदि के द्वारा इस प्रीति को दिखाने की कोशिश की है। इन चिह्नों से पता चलता है कि यह प्रीति जितनी स्वाभाविक है, उतनी ही प्रबल भी है। इन सब रिश्तों में प्रीति न कर पाना प्रीति करने वाले के वश से बाहर की बात है।

दूसरे ऐसे चिह्न हैं जो मानवीय सम्बन्धों, जैसे पिता-पुत्र, मां-बेटा, सेवक-स्वामी, पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के प्यार पर आधारित हैं। इनमें सबसे अधिक प्रयोग पति-पत्नी के चिह्नों का हुआ है। इस प्रीति में यह भाव छिपा हुआ है कि मायके का व्यवहार ससुराल के आचार-व्यवहार से बिलकुल भिन्न है। ससुराल में सबको पसन्द आने के लिये मायके का मोह त्यागना पड़ता है और दूसरी हर प्रकार की प्रीति को अपने पति या कन्त की प्रीति में बदलना पड़ता है। स्त्री जितनी अधिक पति के प्रेम में लीन होती है, उतनी अधिक वह दूसरे हर प्रकार के मोह के बन्धनों से आज़ाद होती जाती है। यही काम आत्मा का परमात्मा के प्रति सच्चा प्यार करता है। सन्त नामदेव जी फ़रमाते हैं कि परमात्मा के प्यार में जीव को संसार के मोह से छुड़ाने की स्वाभाविक शक्ति है, 'नामे प्रीति नाराइण लागी। सहज सुभाइ भइओ बैरागी' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1164)। यही कारण है कि कामिल फ़कीरों ने हंठ-मार्ग, कर्म-मार्ग या ज्ञान-मार्ग के स्थान पर प्रेम-मार्ग को ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र सच्चा साधन माना है।

---

1. **History of Sufism in India,** Vol. I, p. 79.

सब गुणों और विशेषताओं की खान परमात्मा का सच्चा और निर्मल प्रेम है। प्रभु के प्रेम की जड़ के बिना नेकी और सदाचार के पेड़ में कभी भी सुन्दर, सुहावने, मीठे और प्यारे फल-फूल नहीं लग सकते। प्रेम की कमी किसी दूसरी वस्तु से पूरी नहीं हो सकती। जीवन की हर कमी की औषधि प्रेम है परन्तु प्रेम की कमी की दवाई प्रेम के बिना और कुछ नहीं।

प्रेम से उत्पन्न करनी में प्राण होते हैं, रस होता है, आनन्द और प्रसन्नता होती है। प्रेम-विहीन और बुद्धि-प्रधान कार्यों में न कोई गुण होता है और न उपकार। प्रेममय कार्य ही सही अर्थों में गुणकारी होता है।[1]

प्रो. पूर्णसिंह कहते हैं कि प्रभु-प्रेम के बिना कला और धर्म दोनों का जन्म लेना असम्भव है। जब प्रभु-प्रेम हमारा साथ छोड़ जाता है तो धर्म, सदाचार, दान-पुण्य, लोक-सेवा गिरजा-घरों, मन्दिरों, मसजिदों, अस्पतालों और अनाथालयों का रूप धारण कर लेता है। सच्चे प्रेम को इस प्रकार की बैसाखियों के सहारे चलने की आवश्यकता नहीं होती। नस्लों और कौमों के बनने के दर्शन उस समय ही होते हैं जब आन्तरिक प्रेम के स्रोत सूख जाते हैं।.......... रोगी और निर्बल आत्मा को ही जीवित होने का स्वाँग करने के लिये सिद्धान्तों और दर्शन शास्त्रों के सहारे की ज़रूरत होती है। जब अन्दर प्रेम की साँस चल रही हो तो तत्व ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं। जब तक हृदय में दैवी प्रेम की लौ नहीं जलती, सब नियम या सिद्धान्त ताप हैं, चेचक हैं, महामारी हैं।[2]

यही कारण है कि सन्तों-महात्माओं, गुरुओं-पीरों ने रूहानियत के पौधे को कर्म, हठ और ज्ञान के मरुस्थल में से निकाल कर प्रेम की सुन्दर, सुहावनी, रमणीक और रसभरी घाटी में लाकर रोपा है। इसलिये सन्त नामदेव, बाबा फ़रीद, गुरु नानकदेव आदि सन्तों, भक्तों, सूफ़ी फ़कीरों और गुरुओं ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों को पति-पत्नी, प्रियतम और प्रेयसी के सरस और सजीव सम्बन्ध से प्रस्तुत किया है। इन सब पूर्ण पुरुषों की वाणी, उपदेश और करनी का धुरा प्रेम है। इन सबकी विचार-

---

1. बधा चटी जो भरे ना गुण ना उपकारु।
   सेती खुसी सवारीऐ नानकु कारज सारु। (आदि ग्रन्थ, पृ. 787)
2. The Spirit of Oriental Poetry, pp. 264-265.

धारा का सार प्रेम है। ये महात्मा समझाते हैं कि प्रियतम के प्रेम और इस प्रेम से उत्पन्न स्वभाविक भय से सजी हुई आत्मा ही सच्ची सुहागिन है और वही प्रियतम से मिलाप कर सकती है :

भौ कीआ देहि सलाईआ नैणा भाव का कर सीगारो॥
ता सुहागिन जाणीऐ लागी जा सहु धरे पिआरो॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 722)

सच्चा प्रेम प्रेमी को पूरी तरह महबूब पर आश्रित कर देता है। ऐसा प्रेम ही उसके अन्दर धैर्य, सब्र, सन्तोष, विश्वास, निष्ठा, श्रद्धा तथा भाणे का प्यार पैदा करता है क्योंकि प्रेमी सुख-दुःख को उस प्रियतम की दात समझ कर खुशी-खुशी दिन व्यतीत करता है[1] और हर दशा में ध्यान अपने प्यारे के प्रेम में रखता है। वह इसी सीमा तक प्रेम में लीन होता है कि सांसारिक उतार-चढ़ाव उसका ध्यान नहीं खींचते। 'एस नेहुं दी उलटी चाल' काफ़ी में साईं बुल्लेशाह साबर, ज़करिया, यहिया और सुलेमान आदि के उद्धरण देकर बताते हैं कि सच्चा प्रेम प्रेमियों के हृदय में हर प्रकार के त्याग और बलिदान तथा प्रियतम के लिये हर प्रकार की यातनाएँ सहन करने की अपार शक्ति पैदा करता है। यह प्रियतम की आँख का संकेत ही था जिसने मंसूर के लिये फाँसी की कड़वाहट को भी शहद का प्याला[2] बना दिया :

आप इशारा अख्ख दा कीता, तां मधुआ[3] मनसूर ने पीता।
सूली चढ़ के दर्शन कीता, होया इश्क कमाल।
एक नेहुं दी उलटी चाल।

जो कोई प्रियतम की खोज में निकलता है, वह हँस-हँस कर सिर न्योछावर कर देता है। वह अपने दिल के रक्त की मस्ती पीता है, अपने हाथ से अपना कफ़न सीता है और प्यारे के लिये प्रसन्नतापूर्वक पैर कब्र में रख देता है :

---

1. केती दूख भूख सदमार। एह भी दात तेरी दातार।

(गुरु नानक-जपुजी)

2. 'क्यों इश्क असां ते आया ए' काफ़ी में भी आपने यही भाव प्रकट किया है।
3. मधु=शहद, मधुआ=शहद का प्याला।

1. साजन की भाल सर दीआ, लहू मध अपना पीआ।
कफ़न बाहों से सी लिया, लहद[1] में पा उतारेगा।
बुल्ला शहु इश्क है तेरा, उसी ने जी लिया मेरा।
मेरे घर बार कर फेरा, वेखां सिर कौन वारेगा।

2. जे कोई इश्क विहाझिया लोड़े,
सिर देवे पहिले साईं नूं,
कदे आ मिल बिरहों सताई नूं।

द्वैत के परदे चीर कर अद्वैत में पहुँचाने वाली शक्ति प्रेम है। प्रेमी अहं को प्रियतम के प्रेम में इस प्रकार मार डालता है कि उसके रोम-रोम से पिया-पिया की पुकार निकलती है :

इश्क की तेग़ से मूई, नहीं वो ज़ात की दूई।
और पिया पिया कर मूई, मोइआं फिर रूह चितारेगा[2]।

यह प्रेम उसके अन्दर क्षमा, नम्रता और सहनशीलता उत्पन्न करता है क्योंकि उसको प्यारे प्रियतम द्वारा सृजन की गई सृष्टि भी प्यारी लगती है। यह प्रेम ही उसको ऊबड़-खाबड़ रास्ते तय करने और तलवार की धार पर चलने की शक्ति प्रदान करता है। यह प्रेम ही उसकी खोज को निरन्तर बनाता है और मार्ग की कठिन घाटियों को पार करते हुए मंज़िल तक पहुँचने की शक्ति प्रदान करता है। सच्चा प्रेम प्रेमी को अपनी बल-बुद्धि, अकल-चतुराई का त्याग करके पूरी तरह से प्रियतम की शरण में आने का ढंग सिखाता है। इन गुणों पर प्रसन्न होकर प्रियतम स्वयं ही अपने प्यारे को अपने साथ मिला लेता है। साईं बुल्लेशाह ने इसको 'आशिक ने हरि जीता' का नाम दिया है। सच्चा प्रेमी प्रियतम के ध्यान में इस प्रकार खो जाता है और वह अपने अहं और अलग अस्तित्व को इस प्रकार प्रियतम में मिटा देता है कि वह साक्षात् प्रियतम का ही रूप हो जाता है :

हुन मैनूं मजनू आखो न, दिन दिन लैला हुंदा जां।
डेरा यार बनाए तां, इह तन बंगला बनाया ए।

---

1. कब्र 2. तारेगा।

हमाओस्त*

हिन्दू नहीं, न मुसलमान

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मेरा प्रियतम अपने सृजन किये हुए जगत का साजन है। वह इसके कण-कण में समाया हुआ है और स्वयं ही अपनी लीला देख कर प्रसन्न हो रहा है। साईं जी के लिये आदम-हव्वा, नर-नारी, माया-ब्रह्म की द्वैत और तीनों गुणों, पाँचों तत्वों, अनेक देवी-देवताओं आदि का झमेला निरर्थक है। जो कुछ है, प्यारे से है, जो कुछ है, उसमें प्यारा समाया हुआ है और जो कुछ है, उस प्रियतम प्यारे का ही रूप है। इसको सूफ़ी दरवेशों ने 'हमाओस्त', 'हमा अज़ ओस्त' या 'वहदत-उल-वजूद' का नाम दिया है। साईं बुल्लेशाह बहुत भावमय अदा में अपने प्रियतम से पूछते हैं :

परदा किसतों राखीदा, क्यों ओहले बहि बहि झाकीदा।
पहिलों आपे साजन साजे दा, हुन दसना ए सबक नमाज़े दा।
हुन आया आप नज़ारे नूं, विच लैला बन बन झाकीदा।
हुन साडे वल धाया ए, न रहिंदा छुपा छुपाया ए।
किते बुल्ला नाम धराया ए, विच ओहला रखिया ख़ाकी दा।

वह प्रियतम ऐसा 'सांगी' तथा 'चोजी' है जो अनेक पुतलियों में से होकर नाच रहा है। मनुष्य, हैवान, पशु-पक्षी सबमें उसका प्रकाश विद्यमान है। हत्यारे और हताहत होने वाले, स्वामी और सेवक, शाह और भिखारी, योगी और भोगी सबमें उसका प्रकाश उजागर है। पूर्ण सतगुरु की ही यह बड़ाई है जो अनन्त अनेकता को पूर्ण एकता के सूत्र में पिरोया हुआ देखने की युक्ति सिखाता है :

---

*सूफ़ी विचार-धारा में प्रयोग होने वाला यह एक फ़ारसी पद है जिसका अर्थ है कि जो कुछ है, वह सब ही प्रभु है।

आपे आहू आपे चीता, आपे मारन धाया[1]।
आपे साहिब आपे बरदा, आपे मुल्ल विकाया।
कदी हाथी ते असवार होया, कदी टूठा डांग भवाया।
कदी रावल जोगी भोगी हो के, सांगी सांग बनाया।
बाज़ीगर क्या बाज़ी खेली, मैनूं पुतली वांग नचाया।
मैं उस पड़ताली नचना हां, जिस गत मित यार लखाया।
ढोला आदमी बन आया।

इस विषय में आपकी काफ़ियाँ 'कीहनूं लामकानी दसदे हो', 'रहु रहु वे इश्का मारया ई' और 'की करदा बेपरवाही' एक अनोखी मस्ती में रची गई प्रतीत होती हैं। 'कीहनूं लामकानी दसदे हो' में कहते हैं :

कीहनूं लामकानी दसदे हो।
आपे सुनें ते आप सुनावें, आपे गावें आप बजावें।
हथ्थों कौल सरोद सुनावें, अनलहक[2] दी तार हिलावें।
सूली ते मनसूर चढ़ावे, ओथे कोल खलो के हसदे हो।
किते रूमी ते किते जंगी हो, किते टोपी पोश फ़रंगी हो।
किते मैखाने विच भंगी हो, किते मिहर महिरी[3] बन वसदे हो।
कीहनूं लामकानी दसदे हो।

आप ही मरने वाला हिरन और स्वयं ही मारने वाला चीता और 'सूली ते मनसूर चढ़ावे, ओथे कोल खलो के हसदे हो!' के ये वर्णन कवि के केवल भावुक विचार ही नहीं हैं, यह कामिल फ़कीरों का जीवित रूहानी अनुभव है। जब जल्लाद हाथ में तलवार लेकर सरमद की हत्या करने के लिये आया तो अद्वैत की मस्ती में डूबा हुआ सरमद जल्लाद को कह उठा, मेरे प्यारे, मैं तुझ पर बलिहार जाता हूँ। आ जा, आ जा, कि तू जिस रूप में मर्जी आये, मैं हर रूप में तुझे अच्छी तरह पहचान सकता

---

1. आप ही मरने वाला हिरन है और स्वयं ही मारने वाला चीता है।

2. मंसूर ने अनलहक का नारा लगाया था जिसका अर्थ है कि मैं ही हक अर्थात सत्य हूँ।

3. स्त्री-पुरुष।

हूँ, 'फ़िदाए तो शवम, बया बया कि तू हर सूरते कि मी आई, मने तुरा खूब मी शनासम।' रिज़वी प्रसिद्ध सूफ़ी नौशाह के उद्धरण से लिखता है कि तौहीद या वाहदतुल-वजूद के अनुयायी दरवेश, अपने विरोधियों से भी प्यार करते थे[1] क्योंकि उनको हर शरीर में एक ही प्रकाश प्रज्वलित दिखाई देता था।

इतिहास के पन्ने अनेक प्रभु-भक्त और पूर्ण दरवेशों के बलिदान से भरे पड़े हैं जिन्होंने हत्या करने वाले में अपने प्रियतम का प्रकाश देखते हुए हत्यारे को भी प्यार की आँखों से देखा। वे सच्चे प्रेमी थे जिनकी आँखों से द्वैत के कुफ्र का परदा फट चुका था और वे पूरी तरह एकता में समा चुके थे। कबीर साहिब कहते हैं कि मालिक का सच्चा भक्त या दास वही है जो अनेकता के परदे के पीछे छिपी एकता के दर्शन करता है :

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे।
लोगा भरमि न भूलहु भाई।
खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूरि रहिओ स्रब ठाई।
माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै।
ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै।
सभ महि सचा एको सोई तिसका कीआ सभु कछु होई।
हुकमु पछानै सु एको जानै बंदा कहीऐ सोई।
अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुडु दीना मीठा।
कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु डीठा।

(कबीर-आदि ग्रन्थ, पृ. 1349)

सन्त नामदेव जी ने इसको 'सभु गोबिंदु है, सभु गोबिंदु है, गोबिंदु बिनु नहीं कोई' और 'घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी' का नाम दिया है :

1. History of Sufism in India, Vol. II, P. 439.

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।
माइआ चित्र बचित्र बिमोहित[1] बिरला बूझै कोई।
सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है गोबिंदु बिनु नहीं कोई।
सूतु एकु मणि सत सहंस[2] जैसे ओतिपोति प्रभु सोई।
जल तरंग अरु फेन बुदबुदा जल ते भिन न होई[3]।
... ...
कहत नामदेउ हरि की रचना देखहु रिदै बीचारी॥
घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी॥

(नामदेव–आदि ग्रन्थ, पृ. 485)

गुरु नानक साहिब कहते हैं कि वह एक साहिब अनेक रंग धारण करके हर स्थान पर व्यापक है। वह परमात्मा स्वयं ही रसीला है, स्वयं ही रस है और स्वयं ही रस को मानने वाला है। स्त्री, शय्या और कन्त भी वही है। मछेरा, मछली, जल और जाल भी वही है। सरोवर भी वह स्वयं है और हंस भी वह स्वयं है। दिन में खिलने वाला कमल भी वही है, रात्रि में खिलने वाली कुमुदिनी भी वही है और इनको देख कर प्रसन्न होने वाला भी वह स्वयं ही है :

आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहारु।
आपे होवै चोलड़ा[4] आपे सेज भतारु।
रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि।
आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु।
आपे जाल मणकड़ा आपे अंदरि लालु[5]।
... ...
नित रवै सोहागिणी देखु हमारा हालु[6]।

---

1. माया की विभिन्न प्रकार की शक्लें बना कर दिल को मोह लेता है।

2. सात हज़ार मनके एक ही सूत (धागे) में पिरोए हुए हैं।

3. लहरें. झाग और बुलबुले सब पानी का ही रूप हैं।

4. स्त्री 5. जाल को भारी करने वाला मनका और मछली के पेट के अन्दर से निकलने वाला लाल भी वही है 6. वह सुहागिनों के सदा अंग-संग है परन्तु हम (दुहागिनें) उसके बिना विह्वल हैं।

प्रणवै नानकु बेनती तू सरवरु तू हंसु॥
कउलु तू है कवीआ तू है आपे वेखि विगसु॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 23)

पलटू साहिब ने सृष्टि की अनेकता में समाई हुई परमात्मा के प्रकाश की एकता का सुन्दर वर्णन किया है :

जगन्नाथ जगदीस, जग में व्यापि रहा॥
चारि खानि में लख चौरासी, और न कोई दूजा॥
आपुइ ठाकुर आपुइ, सेवक, करत आपनी पूजा॥
आपुइ दाता आपुइ मँगता, आपुइ जोगी भोगी॥
आपुइ बिस्वा आपुइ बिसनी[1], आपु बैद आप रोगी॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस आपुई, सुर नर मुनि होइ आया॥
आपुहि ब्रह्म निरूपम गावै, आपुहि प्रेरत माया॥
आपुइ कारन आपुइ कारज, बिस्वरूप दरसाया॥
पलटूदास दृष्टि तब आवै, संत करै जब दाया॥

(पलटू साहिब की बानी, भाग 3, शब्द 10)

साईं बुल्लेशाह 'सभ इक्को रंग कपाहीं दा' काफ़ी में बताते हैं कि जैसे एक कपास भिन्न-भिन्न प्रकार के कपड़ों को और एक चाँदी विभिन्न प्रकार के आभूषणों को जन्म देती है उसी प्रकार सृष्टि के अनेक रूपों के पीछे एक ही सच्चाई काम कर रही है। एक स्थान पर आपने 'हरि जी आपे हर जा खेले' का भाव प्रकट किया है। 'पाया है किछु पाया है' काफ़ी में बहुत ज़ोरदार ढंग से कहते हैं कि शिया और सुन्नी, जटाधारी और सिर मुंडे सबमें वह एक प्यारा समाया हुआ है :

पाया है किछु पाया है, मेरे सतिगुर अलख लखाया है[2]।
कहूं बैर बड़ा कहूं बेली है, कहूं मजनूं है कहूं लेली है।
कहूं आप गुरु कहूँ चेली है, सब अपनी राह दिखाया है।

1. वेश्या भी स्वयं है, भोगी भी स्वयं है।
2. अधिक जानकारी के लिये देखें : **कानून-ए-इश्क**, पृ. 160.

कहूं मसजिद का वरतारा है, कहूं बनया ठाकुरद्वारा है।
कहूं बैरागी जपधारा है, कहूं शेखन बन बन आया है।
कहूं तुरक किताबां पढ़ते हो, कहूं भगत हिंदू जप करते हो।
कहूं और गुफा में पड़ते हो, हर घर घर लाड लडाया है।

यह अवस्था उन सच्चे प्रेमियों की है जो अहं को नष्ट करके दयालु प्रभु से मिलाप कर लेते हैं और अमली तौर पर उसका जलवा हर स्थान पर देखने लगते हैं :

बुल्ला शहु का मैं मुहताज होआ,
महाराज मिले मेरा काज होआ।
दरशन पिया दा मेरा इलाज होआ,
आपि आप में आप समाया है।
मेरे सतिगुर अलख लखाया है।

आप 'दोहीं जहानी कोई न दिसदा ग़ैर' और 'बुल्ला साईं घट घट रविआ' के प्रबल नारे लगा कर यह विचार दृढ़ कराना चाहते हैं कि जाति, धर्म और देश की बड़ाई का अहंकार अज्ञान की उपज है। रंग, नस्ल, वर्ण, आश्रम, स्त्री, पुरुष के अन्तर वे खड़े करते हैं जो सब जीवों में व्याप्त एक ही रूहानियत से जानकार नहीं हैं। कुछ लोगों का स्वयं को परमात्मा के विशेष व्यक्ति समझना या किसी कौम, मज़हब या मुल्क का अपने आप को प्रभु की विशेष दया-मेहर का अधिकारी समझना, अज्ञान से भरा काम है। परमात्मा ने मनुष्य पैदा किया है, हमने अपने आपको कौमों, मज़हबों या मुल्कों में बाँट कर कई प्रकार के झगड़े खड़े कर लिये हैं। साईं जी यहाँ तक कहते हैं कि काफ़िर और मोमिन का अन्तर खड़ा करना ही सबसे बड़ा कुफ्र (अधर्म) है क्योंकि द्वैत से बड़ा अधर्म कौन-सा हो सकता है ? 'अलरूह अमरे रब्बी' अर्थात आत्मा परमात्मा की अंश है और परमात्मा का प्रेम ही आत्मा की सच्ची जाति या धर्म है। परमात्मा से मिलाने वाली वस्तु सच्चा प्रेम है, मज़हबों, मुल्कों, कौमों या जातियों का अहंकार नहीं :

1. ऐसा जगिआ ज्ञान पलीता।
न हम हिंदू न तुरक ज़रूरी,
नाम इश्क दी है मनजूरी।
आशिक ने हरि जीता।
2. हिंदू तुरक न हुंदे ऐसे, दो जनमे त्रै जनमे।
हराम हलाल पछाता नाहीं, असीं दोहां ते नहीं भरमें।
गुरु पीर की परख असानूं, सभनां तों सिर वारें।
3. मोमन काफ़र मैनूं दोवें न दिसदे, वरदत दे विच आ के।

सूफ़ी मत का मूल आधार ही यह है कि परमात्मा के बिना कोई दूसरा न देखो। ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि यह न कहो कि काबा बुतखाने (मन्दिर) से अच्छा है। जहाँ भी उस प्यारे का जलवा प्रकट है वही स्थान धन्य है।[1]

आप कहते हैं कि कोई तुर्की है या ताज़ी, इस बात की परवाह न कर, तू हर भाषा में उस एक प्यारे की प्रेम-कहानी सुना क्योंकि मसजिद और मन्दिर के परदे के पीछे एक ही प्यारा प्रकाशवान है। आप पूछते हैं कि यदि दो पत्थरों का रंग अलग-अलग हो तो क्या उनमें से निकलने वाली आग का रंग भी अलग होगा ? मन्दिर और मसजिद दोनों एक ही प्रकाश से प्रकाशित हैं, फिर पता नहीं कुफ्र और दीन का झगड़ा किस आधार पर किया जाता है ?[2]

आप कहते हैं कि जिस दिन से मैंने धर्मों के आपसी झगड़े देखे हैं,

---

1. हरगिज मगो कि काअबा ज़ बुतख़ानाह बिहतर असत,
हर जा कि असत जलवहए जानानह खुशतर असत।
2. यके असत तुरकी ओ ताज़ी दरीं मुआमलह हाफिज़,
हदीसे इशक बिआं कुन ब हर ज़बां कि तू दानी।
नेसत ग़ैर अज़ यक सनम दर परदा-ए दैर-ओ हरम,
कै शवद आतश दो रंग अज़ इखतलाफ़-ए संगहा।
अज़ यक चराग़ मसजिद-ओ बुतखानह रोशन अस्त,
दर हैरतम कि दुशमनीए कुफ़र-ओ दीं चरास्त।

मेरा न शेख से कोई सरोकार रहा है न ब्राह्मण से।[1]

कबीर साहिब ने भी फ़रमाया है कि परमात्मा के प्रेम और भक्ति की ही बड़ाई है, जाति-पाँति की नहीं :

जात-पांत पूछे नहिं कोय।
हरि को भजै सो हरि का होय।

पलटू साहिब ने यही उपदेश किया है :

पलटू ऊँची जात का जनि कोई करे हंकार।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति प्यार॥

मौलाना रूप ने उस गडरिये की कहानी लिखी है जिसने कहा था, हे प्रभु ! यदि तू मुझे मिल जाये तो मैं तुझे अपनी भेड़ों का दूध पिलाऊँगा और भेड़ों की ऊन का कम्बल पहनाऊँगा, आदि। मूसा ने उसे धमकाया कि परमात्मा को ऐसे नहीं कहा जाता। इससे उस बेचारे का दिल टूट गया। वह घबरा गया कि शायद उससे बहुत बड़ा पाप हो गया है। इस पर परमात्मा ने मूसा से कहा कि मैंने तुझे दिल जोड़ने के लिये भेजा था, दिल तोड़ने के लिये नहीं। मैंने हरएक प्राणी को अलग ढंग और रीति बख़्शी है जो दूसरों को चाहे पसन्द न हो, उसके लिये उचित होती है। हिन्दुओं के लिये हिन्दुस्तानी ढंग धन्य है, सिंधियों के लिये सिंधी रीति। उनकी उपमा से मैं बड़ा या पूजनीय नहीं बनता, वे मेरी उपमा से बड़े या पूजनीय बनते हैं। मैं भाषा या उच्चारण नहीं देखता, आन्तरिक भाव और मन की दशा देखता हूँ।[2]

कामिल फ़कीरों एवं सन्तों-महात्माओं ने संसार में मनुष्य मनुष्य के बीच भ्रातृ-भाव (Brotherhood of Mankind) पैदा करने के लिये परमात्मा के प्रति पितृ-भाव (Fatherhood of God) को आवश्यक बताया है। पितृ-भाव की बुनियाद के बिना भ्रातृ-भाव का महल कभी नहीं बन सकता। गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं :

---

1. अज़ आ रोज़े किह दीदम इख़तलाफ़े मज़्हबो मिल्लत,
मरा बा शेख रबते नेसत नै बा ब्राहमन हम।

2. **History of Sufism in India**, vol. I, P. 82-83.

एक पिता एकस के हम बारिक॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 611)

गुरु अमरदास जी कहते हैं कि जब सबकी रचना करने वाला एक है और सबमें उस एक कर्ता का प्रकाश समाया हुआ है तो बुरा किसको कहा जा सकता है ?

जीअ जंत सभि तिस दे सभना का सोई।
मंदा किसनो आखीए जे दूजा होई।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 425)

हज़रत ईसा ने फ़रमाया है : सबसे पहला और बड़ा हुक्म यह है कि आप अपने पूरे तन, मन और प्राण से कुल मालिक से प्रेम करो। दूसरा हुक्म जो पहले जैसा ही है, यह है कि आप अपने पड़ोसी को अपनी तरह प्यार करो। धर्म और सारे पैगम्बर इन दो नियमों के सहारे ही खड़े हैं।[1] आप अपने विषय में कहते हैं कि मनुष्य का बेटा लोगों का जीवन नष्ट करने के लिये नहीं आया, बल्कि उनको बचाने के लिये आया है।[2] फिर फ़रमाते हैं कि मुझे दया पसन्द है, बलि नहीं।[3]

हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी अपने सत्संग में प्रायः फ़रमाते थे कि जब हम सबको एक ही परमात्मा ने पैदा किया है और वह एक ही परमात्मा हम सबके अन्दर बैठा है तो यदि कोई किसी दूसरे से नफ़रत करता है तो वह उस परमात्मा से नफ़रत करता है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि धर्मों, धर्म-स्थानों और अलग-अलग प्रकार की पूजा के झगड़े सच्चाई से अनभिज्ञ और स्वार्थी लोगों के पैदा किये हुए हैं। आप कहते हैं कि परमात्मा के सच्चे प्रेमी या भक्तों या प्यारों का 'सुल्हा-कुल' अर्थात सबसे

---

1. Thou shalt love the Lord thy God with all thy heart, and with all thy Soul, and with all thy mind. This is the first and great commandment. And the second is like unto it, Thou shalt love thy neighbour as thyself. On these two commandments, hang all the law and the prophets.

(Matthew 22 : 37–40)

2. The son of man is not come to destroy men's lives, but to save them.

(Luke 9 : 56)

3. I will have mercy, and not sacrifice. (Matthew 9 : 13)

प्यार का मार्ग होता है क्योंकि उनको सब धर्मों, कौमों और जातियों के लोगों में एक ही परमात्मा का नूर नज़र आता है :

1. किते राम दास किते फ़तहि मुहम्मद इहो कदीमी शोर।
मुसलमान सिवे तों चिड़दे हिंदू चिड़दे गोर।
चूक गए सभ झगड़े झेड़े, निकल पिआ कोई होर।

2. हिंदू न नहीं मुसलमान, त्रिंझण बहीए तज अभिमान।
सुंनी न नहीं हम शईआ, सुल्हाकुल का मारग लीआ।
बुल्ला शहु जो हरि चित लागे, हिंदू तुरक दूजन तिआगे।

इबन अरबी कुरान शरीफ़ (II, 115) के उद्धरण से कहते हैं कि पूर्व और पश्चिम सब दिशाओं में एक ही परमात्मा का नूर फैला हुआ है, इसलिये मोमिन या बुत-परस्त (मूर्ति-पूजक) का भेद अज्ञान की उपज है।[1]

पलटू साहिब भी उपदेश करते हैं कि पूर्व-पश्चिम, हिन्दू-मुसलमान के झगड़े खड़े करना व्यर्थ है क्योंकि वास्तव में सबमें एक ही प्रभु समाया हुआ है :

पूरब में राम है पश्चिम खुदाय है,
उत्तर और दक्खिन कहो कौन रहता।
साहिब वह कहाँ है कहाँ फिर नहीं है,
हिन्दू और तुरुका तोफान रहता।
हिन्दू औ तुरुक मिलि परे हैं खैंचि में,
अपनी बर्ग दोउ दीन बहता।
दास पलटू कहै साहिब सब में रहै,
जुदा ना तनिक मैं साच कहता।

(पलटू साहिब की बानी, भाग 2, रेखता 10)

गुरु गोबिन्दसिंह जी कहते हैं कि जिस प्रकार सब धर्मों, जातियों व मुल्कों के मनुष्यों के शरीरों की रचना उन ही पाँच तत्वों से हुई है और सबके हाथ, पैर, नाक, मुँह, आँखें आदि समान हैं, उसी प्रकार उनके अन्दर समाया

1. **History of Sufism in India,** Vol. II, P. 50.

हुआ प्रभु भी एक है। स्वरूप अनेक हैं परन्तु ज्योति एक है :

देहरा मसीत सोई पूजा और निवाज ओई,
मानस सभ एक पै अनेक को भ्रमाउ है।
देवता अदेव जछ गंध्रब तुरक हिंदू,
निआरे निआरे देसन के भेस को प्रभाउ है।
एके नैन एके कान एके देह एके बान,
खाक बाद आतश और आब को रलाउ है[1]।
अलह अभेख स़ोई, पुरान और कुरान ओही,
एक ही सरूप सभे एक ही बनाउ है।

साईं बुल्लेशाह ने कहा है, 'बुल्ला सहु जो हरि चित लागे हिंदू तुरक दूजन तिआगे।' गुरु गोबिन्दसिंह जी कहते हैं, 'जा ते दूर हुआ भ्रम उर का। ता आगे हिंदू क्या तुरका।' गुरु नानक साहिब कहते हैं : हे परमात्मा, एक तू है, तू है, दूसरा कोई नहीं है, 'असति एक दिगर कुई। एक तुई एक तुई' (आदि ग्रन्थ, पृ. 144) मौलाना रूम ने अद्वैत का कितना सुन्दर उपदेश दिया है :

ग़ैर ऊ रा अज़ नज़र बेरूं मकुन,
चशमिदिल निह बर जमालि जू उल मनन।
चीसत दीगर दर जहां ग़ैर अज़ खुदा,
अज़ चि अहवल गशताई ऐ यायख़ाह।
खुद तुई गर ग़ैर अज़-हक खुद रा बसोज़,
चशमि दिल बर वहदाई हरदम बदोज़।

अर्थात्, तू खुदा के बिना ग़ैर या पराये को दृष्टि से परे फेंक दे। तू अपना दिल सदा दया करने वाले प्रभु की बड़ाई पर रख। दुनिया में प्रभु के बिना कौन है ? हे बकवासी, तू भैंगा[2] क्यों बन गया है ? यदि तू स्वयं को

---

1. खाक=मिट्टी; बाद=हवा; आतश=आग; आब=पानी; आपका संकेत पाँच तत्वों की ओर है जिनके मेल से मनुष्य-शरीर बनता है।

2. आप संकेत करना चाहते हैं कि जिस मनुष्य की दृष्टि खराब हो, उसको एक के दो-दो दिखाई देते हैं। उसी प्रकार अज्ञानियों को द्वैत दिखाई देती है।

प्रभु से अलग समझता है तो अपने आपको आग लगा दे। तू दिल की आँख सदा उस एक पर रख।

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि ऐसे कामिल मुर्शिद और परमात्मा के सच्चे प्रेमी की खोज करनी चाहिये जो धार्मिक पक्षपात के बिना हरएक को द्वैत के कुफ्र से छुड़ा कर एकता के रंग में रंगता हो :

चल्लो देखीए उस मसतानड़े नूं,
जिदही त्रिंझणा दे विच पई ए धुम्म।
ओह ते मै वहदत विच रंगदा ए[1],
नहीं पुच्छदा जात दे की हो तुम।

1. मैं=शराब; वह बिना किसी अन्तर के हरएक को अद्वैत के रंग में रंगता है।

प्रियतम की खोज

प्रियतम अन्दर है

साईं बुल्लेशाह भूली और भटकी हीर (आत्मा) को सावधान करते हैं कि जिस रांझा (परमात्मा) को तू बाहर खोज रही है, वह तेरे अपने अन्दर है :

भुल्ली हीर ढूंडेंदी बेले।
रांझा यार बुक्कल विच खेले।
मैनू सुध बुध रही न सार।
इश्क दी नवींओं नवीं बहार।

'मेरी बुक्कल दे विच चोर साधो किस नू कूक सुनावां' और 'मुंह आई बात न रहिंदी ए' आदि कई काफ़ियों में यह विचार बार-बार दोहराया गया हैं कि घर में खोई हुई वस्तु घर में ही ढूँढी जा सकती है, बाहर व्यर्थ समय गँवाने से कोई लाभ नहीं। परमात्मा के सच्चे प्रेमी सनकियों की भाँति भटकने के स्थान पर अपने अन्दर का मार्ग खोजते हैं :

इक लाज़म[1] बात अदब[2] दी ए, सानूं बात ममूली सब दी ए।
हर हर विच सूरत हरि दी ए, किते ज़ाहर किते छुपेंदी ए[3]।
जिस पाया भेत कलंदर दा, राह खोजिया अपने अन्दर दा।
ओह वासी है सुख मंदर दा, जिथे चढ़दी है न लहिंदी ए।
ऐथे दुनिया विच अंधेरा ए, एह तिलकन[4] बाज़ी वेहड़ा ए।
वड़ अन्दर देखो किहड़ा ए, क्यों खफतन[5] पई ढूंढेंदी ए।

---

1. आवश्यक 2. आदर 3. परमात्मा सर्व-व्यापक है परन्तु मनुष्य की वास्तविक समस्या उस गुप्त प्रभु को प्रकट करने की है :

गुपतु परगटु तूं सभनी थाई।
गुरपरसादी मिलि सोझी पाई। (आदि ग्रन्थ, पृ. 124)

4. फिसलने वाला 5. सनकी।

फिर कहते हैं :

बुल्ला शहु असां थीं वख नहीं, बिन शहु थीं दूजा कख[1] नहीं।
पर वेखन वाली[2] अख नहीं, तांही जान पई दुख सहिंदी ए।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।

वह साईं घट-घट में व्यापक है परन्तु सौभाग्यशाली वही शैया है जहाँ वह प्रकट है :

सभ घट मेरा साइआं, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट के, जा घट परगट होय॥

साईं जी ने शरीर को अधिकतर घर या आंगन कहा है। आप कहते हैं कि वह प्यारा रहता तो इस घर के अन्दर ही है परन्तु उसको पकड़ना बहुत कठिन है :

ओह घर मेरे विच आया, उस आ मैनूं भरमाया।
पुच्छो जादू है कि साया, उस तों लउ हकीकत सारी।
ओह दिल मेरे विच वसदा, बहि नाल असाडे हसदा।
पुछनीआं बातां तां उठि नसदा, लै के बाजां वांग उडारी।

शरीर ठाकुरद्वारा है

आपने मनुष्य के शरीर को ठाकुरद्वारा और हरि-मन्दिर भी कहा है। उस ठाकुर या प्रभु ने अपने रहने के लिये स्वयं इसका सृजन किया है। सच्चे प्रेमी का क, ख, ग ही यही है कि परमात्मा बाहर मन्दिरों, मसजिदों या गिरजा घरों में नहीं बल्कि शरीर रूपी ठाकुरद्वारे या हरि-मन्दिर के अन्दर रहता है। बाहर के ठाकुरद्वारों में नकली शंख और घण्टे बजाये जाते हैं परन्तु शरीर रूपी ठाकुरद्वारे में अनहद शब्द का वह अगम नाद बज रहा है, जिसका कोई आदि या अन्त नहीं है। बाहर के मन्दिर, मसजिद आदि के अन्दर तो मिट्टी के दीपकों में तेल जलाया जाता है परन्तु इस ठाकुरद्वारे के अन्दर उस कुल मालिक के नूर की अगम ज्योति जल रही है :

जां मैं सबक इश्क दा पढ़िआ, मसजिद कोलों जीऊड़ा डरिआ।
डेरे जा ठाकुर दे वड़िआ, जिथ्थे वजदे नाद हजार।
बेद कुराना पढ़ पढ़ थक्के, सजदे करदियां घस गए मत्थे।

1. तिनका, अर्थात् कुछ भी नहीं 2. देखने वाली।

न रब तीरथ न रब मक्के, जिन पाया तिस नूर अनवार।
इश्क दी नवीओं नवीं बहार।

बाइबिल में आता है, "तुम (पिछले जन्मों के कर्मों का) पश्चात्ताप करो, परमात्मा बिलकुल निकट है।"[1] परमात्मा की बादशाही तुम्हारे अन्दर है।[2] "आकाश और धरती का मालिक मनुष्य के हाथों से बनाये गए मन्दिरों में नहीं रहता, न ही मनुष्य के हाथों से उसकी पूजा की जा सकती है।"[3]

ख़्वाजा अबू इस्माइल अब्दुल्ला अनसारी (1006-1089) लिखते हैं कि बाहर का मिट्टी, पानी आदि का काबा शेख इब्राहीम ने बनाया, पर अन्दर का दिलो-जान का प्राकृतिक काबा उस दयालु प्रभु के नूर से भरपूर है। परमात्मा के मार्ग में दो पूजा-स्थल हैं—बाहरी बनावटी मन्दिर और अन्दर का कुदरती मन्दिर। तुम आन्तरिक मन्दिर में प्रभु की पूजा करने की कोशिश करो।[4]

गुरु नानक साहिब ने मनुष्य शरीर को हरि का महल, हरि का घर या हरि का मन्दिर कहा है। इसके अन्दर सदा हरि की ज्योति जल रही है। मालिक के सच्चे भक्त इसके अन्दर से ही उस हरि से मिलाप करते हैं :

काइआ महलु मंदरु घरु हरि का तिसु महि राखी जोति अपार।
नानक गुरमुखि महलि बुलाईऐ हरि मेले मेलणहार।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1256)

आप कहते हैं कि मनुष्य देही ही सच्चा हरि-मन्दिर है क्योंकि इसके अन्दर ही उस सर्व-व्यापक प्रभु से मिलाप होता है। अन्दर रहने वाले विधाता को बाहर ढूँढ़ता मूर्खता है। मालिक के सच्चे भक्त गुरु-शब्द द्वारा अन्दर से ही उस परमेश्वर से मिलाप कर लेते हैं :

हरि मंदरु सोई आखीऐ जिथहु हरि जाता।
मानस देह गुर बचनी पाइआ सभु आतम रामु पछाता।
बाहरि मूलि न खोजीऐ घर माहि बिधाता।

---

1. Repent : for the Kingdom of heaven is at hand . (Matthew 4 : 17)
2. Kingdom of God is within you. (Luke 17 : 21)
3. Lord of heaven and earth, dwelleth not in temples made with hands; Neither is worshipped with men's hands. (Acts. 17 : 24, 25)
4. **History of Sufism in India**, Vol, I, p. 78.

मनमुख हरि मंदर की सार न जाणनी तिनी जनमु गवाता।
सभ महि इकु वरतदा गुर सबदी पाइआ जाई।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 953)

पलटू साहिब कहते हैं :

साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास॥
साहिब तेरे पास याद करु होवै हाजिर।
अंदर धसि कै देखु मिलेगा साहिब नादिर॥
मान मनी हो फना नूर तब नजर में आवै।
बुरका डारै टारि खुदा बाखुद दिखरावै॥
रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलाबा[1]।
तीसौ रोज़ा रहै अंदर में सात रिकाबा[2]॥
लामकान में रब्ब को पावै पलटूदास[3]।
साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास॥

(पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुण्डली 93)

शरीर मक्का और काबा है

साईं जी ने शरीर को सच्चा मक्का और मस्तक को इसकी महराब कहा है। आप कहते हैं कि बाहरी मक्का के हज के लिये जाने वाले लोग यह नहीं जानते कि दिल ही वह सच्चा मक्का है जिसके अन्दर कुल मालिक का प्रकाश देखा जा सकता है, 'हाजी लोक मक्के नूं जांदे, मेरे घर विच नौ शहु मक्का।' इसी प्रकार आप कहते हैं, 'मत्थे महिराब टिकाइउ ई'।[4]

---

1. द्वैत, दुई या झूठ के बन्धन तोड़ कर आत्मा ऊपर को चढ़ती है 2. आत्मा प्रति दिन आन्तरिक सात मुकामों पर जाती है 3. धुर धाम; अनामी देश।

4. कई कामिल फ़क़ीरों ने मस्तक को मेहराब कहा है। मस्तक की शक्ल मेहराब जैसी है। इसके अन्दर उस मालिक का कुदरती नूर भी झर रहा है और उसमें कलमे, शब्द या नाम की मीठी ध्वनि भी दिन-रात उठ रही है। सन्त तुलसी साहिब ने फ़रमाया है कि यदि कुदरती काबा (मस्तक) की मेहराब में ध्यान इकट्ठा करके सुना जाये तो वहाँ मालिक की दरगाह से आ रही कलमे की आवाज़ सुनाई देने लगती है :

कुदरती काबे की तू महराब में सुन गौर से।
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये।

(सन्तों की बानी, पृ. 275)

आप कहते हैं : 'जित वल यार उत्ते वल काअबा भावें फोल किताबां चारे।' वह प्यारा दिल के अन्दर है और प्यार की लहर उठा कर ही हम उसको पा सकते हैं :

सत्त समुंदर दिल दे अंदर, दिल से लहिर उठावांगी।
टूने कामन करके नी मैं प्यारा यार मनावांगी।

'उलटी गंग बहाइओ' काफ़ी में आपने शरीर को वह लंका कहा है जिसके अन्दर दस इन्द्रियों को वश में करके (दहिसिर मार के) प्रियतम से मिलाप किया जा सकता है। सच्चा कुंभ या तीर्थ, जिसमें स्नान करके आत्मा निर्मल होती है, शरीर के अन्दर है।

'प्यारिया सानूं मिठड़ा ना लगदा शोर' में आप बहुत सुन्दर इशारा करते हैं कि प्रियतम की खोज में बाहरी शोर और झगड़े किसी काम के नहीं। जो लोग अन्दर प्रियतम की खोज करते हैं, उनके अन्दर सुन्दर बगिया खिल जाती है और उनकी विरह की पतझड़ मिलाप की सुन्दर और स्थायी बसन्त में बदल जाती है :

मैं घर खिला शगूफा होर।
वेखिआं बाग बहारां होर, हुन मैनूं कुछ न कहिना।
इहो कौल ते इहो करार, दिलबर दे विच रहिना।

परदा या रुकावट

साईं जी कहते हैं कि आत्मा रूपी प्रेमिका, परमात्मा रूपी प्रियतम के वियोग में परेशान है क्योंकि दोनों के बीच अज्ञान, मन और अहं का परदा ताना हुआ है :

1. नेड़े वस्स थां न दस्से, ढूंढां कित वल जाही।
   इकसे घर विच वसदिआं रसदिआं, कित वल कूक सुणाही।
2. भुल्ले रहे नाम न जपिआ, ग़फ़लत अंदर यार है छपिआ।
   ओह सिध पुरखा तेरे अंदर वस्सिआ,
   लग्गीआं नफ़स दीआं चाटां।

एक ही घर में रहने वाले आत्मा और परमात्मा को एक-दूसरे से दूर रखने वाली चीज़ अहं, ख़ुदी या मन है :

एका संगति इकतु ग्रहि बसते मिलि बात न करते भाई।
अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 205)

साईं जी समझाते हैं कि जब तक मन पर मैं-मेरी, अहं या अज्ञान का परदा कायम है, चाहे संसार के सब तीर्थ ढूँढ लें और अनेक प्रकार के कर्मकाण्ड कर लें, खोज के वृक्ष को मिलाप का फल नहीं लग सकता :

मक्के गिआं गल मुकदी नाहीं, जिचर दिलों न आप मुकाईए।
गंगा गिआं गल मुकदी नाहीं, भावें सौ सौ गोते लाईए।
गया गिआं गल मुकदी नाहीं, भावें कितने पिंड भराईए।
बुल्ला शाह गल तां ही मुकदी, जद मैं नूं खड़े लुटाईए।

जब तक इन्द्रियाँ वश में नहीं आतीं, मन रूपी झूठा पति नहीं मरता और द्वैत के कुफ्र का सिर नहीं काटा जाता, मस्तक पर प्रियतम से मिलाप का टीका नहीं लग सकता :

बुल्ला मैं जोगी नाल विआही, लोकां कमलियां खबर न कोई।
मैं जोगी दा माल, पंजे पीर[1] मना के।
वारिया कुफर वड्डा मैं दिल थीं, तली ते सीस टिका के।
मैं वडभागी मारिया खावंद, हत्थीं ज़हर पिला के।

दसवाँ द्वार

शरीर रूपी मन्दिर, ठाकुरद्वारे या काबा के अन्दर कौन-सी जगह प्रियतम की खोज करें? दूसरे सन्तों-महात्माओं की भाँति बुल्लेशाह समझाते हैं कि शरीर रूपी घर या आँगन के नौ दरवाज़े (दो आँखें, दो कान, दो नासिकाएँ, मुँह और मल-मूत्र के दो द्वार) आत्मा के शरीर और

---

1. पंज पीर : आम विश्वास के अनुसार पाँच पीर ये हैं—गाजी मियाँ (सालार मसऊद), जिंदा गाज़ी, शेख फ़रीद, ख़्वाजा खिजर और पीर बदर। वारिस शाह ने रूहानी दृष्टि से पाँच ज्ञान इन्द्रियों को पाँच पीर कहा है : 'पंज पीर ने पंज हवास तेरे।' सूफ़ी विचार-धारा में पाँच विकारों या पाँच ज्ञान इन्द्रियों को वश में करने को पाँच पीर मनाने का नाम देना अस्वाभाविक नहीं है। साईं जी ने अपनी काफ़ी 'उलटी गंग बहाइओ रे साधो' में 'दहिसर' भाव दस इन्द्रियों को मारने की बात कही है। यहाँ आपने मन रूपी पति को वश में करने की ओर इशारा किया है जो इस भाव के अधिक अनुकूल है।

संसार में कार्यशील होने के लिये हैं, परन्तु दसवाँ द्वार आन्तरिक रूहानी जगत की ओर खुलता है। वह दसवाँ द्वार ही आत्मा का वास्तविक निवास-स्थान है। आत्मा इस स्थान से नीचे उतर कर नौ द्वारों के द्वारा शरीर और संसार से बन्ध चुकी है। नौ द्वारों के द्वारा बाहर की ओर बह रही सुरत इन्द्रियों के भोगों की दास बन चुकी है। यह प्रियतम के देश और उसके मिलाप के आनन्द से अनभिज्ञ है। साईं जी फ़रमाते हैं कि जब तक आत्मा को उ़स दसवें द्वार या दसवीं गली का पता नहीं मिलता, जहाँ प्रियतम आता-जाता है, इसका कभी उस प्यारे से मिलाप नहीं हो सकता :

इस विहड़े दे नौ दरवाजे, दसवां गुप्त रखाती[1]।
ओस गली दी मैं सार न जाना, जहां आवे पिया जाती।

कबीर साहिब कहते हैं कि शरीर के नौ द्वारों में भटक रही आत्मा कभी भी दसवें दरवाज़े में पड़ी अनुपम वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकती :

नउ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई।
कहतु कबीर नवै घर मूसे दसवै ततु समाई।

(कबीर-आदि ग्रन्थ, पृ. 339)

हज़रत शम्स तबरेज़ कहते हैं, तू पशुओं की भाँति सिर नीचा करने की बजाय ऊपर की ओर देख क्योंकि तू शरीर की मस्ती से बाहर निकल कर अन्दर नई दुनिया में प्रवेश कर सकता है।[2]

---

1. (क) नउ दरवाजे नवे दर फीके रसु अमृत दसवे चुईजे।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1323)
(ख) नउ घरि थापे हुकमि रजाई दसवै पुरखु अलेखु अपारी।
(वही, पृ. 1033)
(ग) नउ घर थापे थापणहारै। दसवै वासा अलख अपारै।
(वही, पृ. 1036)
(घ) हरि जीउ गुफा अंदरि रखि कै वाजा पवणु वजाइआ।
वजाइआ वाजा पउण नउ दुआरे परगटु कीए दसवा गुपत रखाइआ।
(वही, पृ. 922)

2. अंदर हैवान बिंगर सर सूए ज़मीं दारद,
गर आदमी आखर सर जानबे बाला कुन।
अज़ मुफ़ीके जिसम चूं याबी खलास,
बतजदुद आलमे याबी ज़दीद।

ख़्वाजा हफ़िज़ कहते हैं, जब तक तू तबीयत की सरां अर्थात शरीर के आँखों के नीचे के भाग से ऊपर नहीं आता, तू हकीकत की गली में दाखिल नहीं हो सकता।[1]

मौलाना रूम फ़रमाते हैं, जब तक मनुष्य इन इन्द्रियों से ऊपर नहीं उठता, वह अन्दर ग़ैबी तस्वीर का दीदार नहीं कर सकता।[2]

आँखों के पीछे लगे दसवें दरवाज़े को घर[3] या घर-दर और मुक्ति का दरवाज़ा[4] भी कहा गया है जिसमें रूहानियत की दौलत भरी पड़ी है और जिसमें से प्रियतम के देश को मार्ग जाता है। साईं जी ने इस द्वार को अन्दर पिया के देश की ओर खुलने वाली खिड़की भी कहा है :

खेड लै विहड़े घुंमी घुँम।
इस विहड़े विच आला सोंहदा आले दे विच ताकी।
ताकी दे विच सेज विछावां नाल पिया संग राती।

---

1. तू कज़ सराए तबीयत नमे रवी बेरूं,
कुजा बकूए हकीकत गुज़र तुवानी करद।

2. चूं ज़ हिस्से बेरू निआमद आदमी,
बाशुद अज़ तसवीरे ग़ैबी आज़मी।

3. आँखों से बाहर भटक रहा मन आँखों के पीछे घर में आकर रूहानी दौलत प्राप्त कर सकता है :

घरि रतन लाल बहु माणक लादे मनु भ्रमिआ लहि न सकाईए।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1179)

4. (क) मुक्ति का द्वार बहुत बारीक है। हौंमैं के कारण फूला हुआ मन इसमें दाखिल नहीं हो सकता :

कबीर मुकति दुआरा संकुरा राई दसएं भाइ।
मनु तउ मैगलु होइ रहिओ निकसो किउ कै जाइ।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1367)

(ख) इस बारीक दरवाज़े में दाखिल होने की युक्ति पूर्ण सतगुरु से मिलती है :

नानक मुकति दुआरा अति नीका नाना होइ सु जाइ।
हउमै मनु असथूल है किउकरि विचुदे जाइ।
सतिगुर मिलिऐ हउमै गई जोति रही सभ आइ।
इहु जीउ सदा मुकतु है सहजे रहिआ समाइ।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 509)

सन्त बेणी जी ने साईं जी से कई सौ वर्ष पहले समझाया था कि जीव इस अन्दर की खिड़की को खोल कर सदा के लिये जाग उठता है और त्रिकालदर्शी हो जाता है :

ऊपरि हाटु हाट परि आला आले भीतरि थाती।
जागतु रहै सु कबहु न सोवै। तीन तिलोक समाधि पलोवै।

(बेणी जी—आदि ग्रन्थ, पृ. 974)

हज़रत सुलतान बाहू फ़रमाते हैं, 'दिल की ताकी लाह फ़कीरा पा अंदरूने झाती हू।' हुज़ूर स्वामीजी महाराज भी समझाते हैं कि नौ द्वारों में कैद आत्मा आन्तरिक दसवीं खिड़की खोल ले तो यह प्रियतम के देश पहुँच कर सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकती है :

नौ द्वारन में बँध रही। अब चैन नहीं इक स्वाँस॥
दसवीं खिड़की खोल री। कर परम बिलास॥

(सार बचन, बचन 19 : शब्द 6)

पड़े क्यों भटको नैनन वार। झांक तिल खिड़की उतरो पार॥

(वही, बचन 19 : शब्द 20)

प्रियतम को देखने वाली आँख

आँखों के पीछे लगे इस गुप्त द्वार को सन्तों-महात्माओं ने 'आँख', 'आन्तरिक आँख', 'तीसरी आँख', 'दिव्य दृष्टि' या 'शिव नेत्र', 'तिल' और 'तीसरा तिल' कहा है। मुसलमान फ़कीरों ने इसको 'ग़ैबी आँख',[1] 'नुकता सबैदा' आदि कह कर वर्णन किया है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि जब तक अन्दर देखने वाली आँख नहीं मिलती तब तक परमात्मा के अन्तर में दर्शन नहीं हो सकते :

बुल्ला शहु असां थीं वख्ख नहीं,
पर देखन वाली अख्ख नहीं,
ताहीउं जान जुदाईआं सहिंदी ए।

---

1. शम्स तबरेज़ कहते हैं कि जिनकी औलिया या मुर्शिद ग़ैब की आँख खोल देते हैं वे अपने माशूक की उपस्थिति में खुशी-खुशी और बा-खबर मरते हैं, शेष सब अँधों की तरह बेखबर जाते हैं :

आशाने कि बा खबर मीरंद, पेशे माशूक चूं शकर मीरंद।
औलीआ चशमे गैब बकुशाइंद, बाकीआ जूमला कोर-ओ कर मीरंद।

मनुष्य अन्दर की आँख खोले बिना भिखारी है, चाहे उसके घर रूहानियत की दौलत के भण्डार भरे पड़े हैं। यह आँख खोले बिना इसकी दशा समुद्र के किनारे प्यास से मर रहे यात्री जैसी है :

मोती चूनी पारस पासे, पास समुँदर मरो प्यासे।
खोल अख्खी उठ बहु भिकारे, अब तो जाग मुसाफ़िर प्यारे।

आपने इस बिन्दु को 'काले कुंडल के बीच में छिपे हुए गोल घेरे' का नाम दिया है जिसमें दैवी प्रकाश प्रज्वलित है :

जुलफ सिआह दे विच यद बैज़ा दे चमकार दिखाली ओ यार।

आपने इसको सिर के अन्दर बना वह छेद कहा है जिसमें अनहद शब्द का बाजा बजता हुआ सुनाई देता है, 'अनहद वाजा सरब मिलापी निरवैरी सिरनाजा[1] रे।'

अन्य बहुत-से सन्तों-महात्माओं ने भी इस आन्तरिक आँख की महिमा की है। बाइबिल में आता है, यदि तू एक आँख वाला बन जाये तो तेरा सारा शरीर प्रकाश से भर जायेगा।[2] यहाँ संकेत इस आन्तरिक आँख की ओर ही है।

हुज़ूर स्वामीजी महाराज फ़रमाते हैं कि आत्मा शरीर के नौ द्वार खाली करके और (दो आँखों के पीछे) तीसरी आँख या तीसरे तिल में पहुँच कर ही आन्तरिक प्रकाश देख सकती है :

1. दो तिल छूटे एक तिल दरसा।
   जोत निरंजन का पद परसा॥

(सार बचन, बचन 30 : शब्द 24)

2. रूप निहारूं जोत अब तिल में॥

(वही, बचन 30 : शब्द 17)

हुज़ूर तुलसी साहिब ने इस बिन्दु को तीसरी आँख की पुतली का तिल कहा है। आप कहते हैं कि इस काले परदे या तिल के पीछे सारी रूहानी हकीकत छिपी हुई है। इस बिन्दु से पार देखने से चौदह लोकों की

---

1. नाजा=छेद; सिरनाजा=सिर का सुराख।

2. The light of the body is the eye. If, therefore, thy eye be single, thy whole body shall be full of light. (Matthew 6 : 22)

किताब आन्तरिक आँख के सामने खुल जाती है। इस बिन्दु पर पहुँच कर अन्दर कलमे या शब्द की स्थायी आवाज़ सुनाई देने लगती है, जो आत्मा को परमात्मा की दरगाह की ओर बुला रही है। आप हिदायत करते हैं कि प्रियतम का जलवा देखने के लिये बाहर भटकने के स्थान पर, अन्दर तीसरे तिल में पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिये :

सुन ऐ तकी न जाइयो ज़िनहार देखना[1]।
अपने में आप जलवा-ए दिलदार देखना॥
पुतली में तिल है तिल में भरा राज़ कुल का कुल[2]।
इस परदा-ए सियाह के ज़रा पार देखना[3]॥
चौदह तबक का हाल अयां हो तुझे ज़रूर[4]।
गाफ़िल न हो खयाल से हुशियार देखना॥
सुन ला-मकां पे पहुँच के तेरी पुकार है[5]।
है आ रही सदा से सदाअ यार देखना॥
मिलना तो यार का नहीं मुशकिल मगर तकी[6]।
दुशवार तो यह है कि है दुशवार देखना॥
तुलसी बिना करम किसी मुर्शिद रसीदा के[7]।
राहे-निजात दूर है उस पार देखना॥

(सन्तों की बानी, पृ. 276)

---

1. यह ग़ज़ल तुलसी साहिब ने एक मुसलमान दरवेश को सम्बोधित करके लिखी है। आप समझाते हैं कि ए तकी, दिलदार का जलवा देखने के लिये कहीं बाहर न जाओ, अपने अन्दर ही उसका जलवा देखो।

2. पुतली के अन्दर तिल है और तिल के अन्दर सारा रूहानी भेद छिपा हुआ है।

3. इस काले परदे के पार देखने का प्रयत्न करो।

4. तुझे चौदह लोकों का हाल प्रकट हो जायेगा, शर्त यह है कि ध्यान को अन्दर पक्का करके रख।

5. इस नुक्ते को पार करके तू आन्तरिक रूहानी सफ़र तय करता हुआ धीरे-धीरे ला-मुकाम (सचखण्ड) पहुँच जायेगा, जहाँ तेरी प्रतीक्षा हो रही है और जहाँ से आत्मा को ऊपर ले जाने के लिये कलमे या शब्द की आवाज़ सदा से नीचे आ रही है।

6. परमात्मा का मिलना इतना कठिन नहीं, जितना अन्दर उसका दीदार करना कठिन है, अर्थात् उसके जमाल को देख पाना आसान नहीं है।

7. किसी कामिल मुर्शिद की दया के बिना इस भेद को जान पाना और मुक्ति का सफ़र तय करके पार के देश पहुँच पाना असम्भव है।

इन पंक्तियों में तुलसी साहिब ने संकेत किया है कि अन्दर जाने और तिल को पार करने का भेद किसी कामिल मुर्शिद से मिलता है। कबीर साहिब कहते हैं कि जब तक इस तिल में दाखिल होने की युक्ति सिखाने वाला सतगुरु न मिले, सारा ज्ञान-ध्यान और जप-तप व्यर्थ है :

सतिगुरु बिना जपु तपु सभ झूठा, बड़े आलम फ़ाज़ल का।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, गुरु मिले भेदी तिल का।

स्वामीजी महराज समझाते हैं कि जब तक ऐसा पूर्ण सतगुरु नहीं मिलता जो स्वयं तिल को तोड़ कर अगम देश में पहुँच चुका हो, जीव को इस तिल का ताला खोलने की युक्ति प्राप्त नहीं होती :

1. संत कोई पहुंचे अगम निहार। तोड़िया जिन जिन तिल का द्वार॥
(सार बचन, बचन 10 : शब्द 2)

2. अब सतगुरु मोहिं मिले दयाल। कुंजी दे खोला तिल ताल॥
(वही, बचन 10 : शब्द 11)

रूहानी अभ्यास

सुमिरन और ध्यान

नौ द्वारों में कैद आत्मा आँखों के पीछे आकर दसवें दरवाज़े में कैसे प्रवेश करे और आन्तरिक आँख कैसे खोले ? सन्त-महात्मा समझाते हैं कि हमारे मन की आदत है कि यंह सदा किसी न किसी वस्तु का चिन्तन, जाप या सुमिरन करता रहता है। जिन वस्तुओं के चिन्तन या विचार में यह लगा रहता है, यह उनकी शक्लें और तस्वीरें भी गढ़ता रहता है। सन्त-महत्मा मन की सोच-विचार करने की आदत को सुमिरन करना और वस्तुओं की तस्वीरें बनाने की आदत को ध्यान करना कहते हैं। हम अँधेरी से अँधेरी कोठरी में आँखें बन्द करके क्यों न बैठ जायें, हमारा मन फिर भी दुनिया की वस्तुओं व पदार्थों के सुमिरन और ध्यान में लगा रहता है। संसार की नाशवान वस्तुओं व पदार्थों के सुमिरन और ध्यान के कारण मन में इनका मोह पैदा हो चुका है। जब तक यह मोह नहीं छूटता, मन कभी अन्दर और ऊपर की ओर नहीं पलट सकता।

कामिल फ़कीर समझाते हैं कि प्रभु से मोह पैदा करने वाली शक्ति सुमिरन और ध्यान है। मन को संसार की नाशवान वस्तुओं के सुमिरन और ध्यान के स्थान पर अमर, अविनाशी प्रभु के नाम के सुमिरन और उससे अभेद हो चुके सतगुरु के ध्यान में लगा दें तो इसके अन्दर बस चुका संसार का मोह काटा जा सकता है और इसके अन्दर परमात्मा का प्यार पैदा हो सकता है।

वास्तव में मन सांसारिक वस्तुओं और पदार्थों के सुमिरन और ध्यान के कारण ही पहले आँखों के पीछे से नौ द्वारों में उतरता है और फिर नौ द्वारों के द्वारा सारे संसार में फैलता है। अपने ख़याल को आँखों के पीछे रख कर परमात्मा के नाम का सुमिरन और सतगुरु के स्वरूप का ध्यान

करने से, मन और आत्मा स्वाभाविक तौर से नौ द्वारों से सिमट कर ऊपर दसवें दरवाजे में इकट्ठे होने शुरू हो जाते हैं। आत्मा के आँखों के पीछे पूरी तरह एकाग्र होते ही अपने आप अन्दर दसवाँ दरवाज़ा खुल जाता है और मन और आत्मा उसके अन्दर दाखिल हो जाते हैं।

हज़रत ईसा ने फ़रमाया था, "खटखटाओ तो (द्वार) खुल जायेगा, ढूँढो तो तुम्हें मिल जायेगा।" आपका संकेत सुमिरन द्वारा मन को दसवें दरवाज़े पर एकाग्र करके इसके अन्दर दाखिल होने की ओर ही था। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि हे प्रियतम, मैंने तेरे लिये नौ द्वार पार करके दसवें दरवाज़े में आकर डेरा लगाया है, अब तो तू मेरा प्रेम स्वीकार करके मुझे अपना दर्शन दे :

तुध कारन मैं ऐसा होया, नौ दरवाजे बंद कर सोया।
दर दसवें त्ते आन खलोया, कदे मंन मेरी अशनाई।[2]

आपने यहाँ जो 'सोया' शब्द का प्रयोग किया है उसका संकेत आम नींद की ओर नहीं है। मन और आत्मा के नौ द्वारों से सिमट कर आँखों के पीछे एकाग्र होने से आँखों से नीचे का शरीर का भाग पूरी तरह सुन्न हो जाता है (सो जाता है), पर अन्दर आत्मा जाग उठती है। साईं जी कहते हैं कि संसार की ओर जाग रहे लोग वास्तव में सोये हुए हैं, परन्तु रूहानी अभ्यास द्वारा संसार की ओर से सो चुके वास्तव में जागे हुए हैं। दुनिया की ओर जाग रहे,[3] परन्तु अन्दर की ओर सोये हुए लोग जब अन्त समय

---

1. Seek and ye shall find ; Knock and it shall be opened unto you.
(Matthew 7 : 7)

2. प्रेम।

3. हज़रत ईसा ने फ़रमाया है, मैं आँखों वालों को अँधा करने आया हूँ और अँधों को आँखें देने आया हूँ (जॉन 9 : 39)। आपका इससे यह भाव था कि जो लोग केवल संसार की ओर देखते हैं वे अन्दर की ओर से अँधे हैं। मैं उनको संसार की ओर देखने वाली आँखें बन्द करके संसार की ओर से अँधा होने और आन्तरिक आँखें खोल कर अन्दर की ओर देखने वाला बनाने की विधि सिखाने के लिये आया हूँ, ताकि हम अपनी रूहानी असल को पहचान सकें, क्योंकि हमारी आत्मा और शब्द का असल एक है।

That which is born of the flesh is flesh, and that which is born of the spirit is spirit. (John 3 : 6)

अन्दर की ओर जागते हैं तो पछताते हैं कि जीवन के बहुमूल्य समय को व्यर्थ नष्ट कर लिया :

मैं जागी सभ जग सोया। खुल्ही फ्लक तां उठ के रोया।

साईं बुल्लेशाह समझाते हैं कि आत्मा और परमात्मा के मध्य एक अँधेरा परदा तना हुआ है। यह परदा संस्कारों और विकारों की मैल का है।[1] इस मलिनता को धोकर आत्मा को निर्मल बनाने का काम सुमिरन और ध्यान करता है :

मैं चूड़ेटड़ी आं सच्चे साहिब दी सरकारों।
ध्यान दी छजली ज्ञान का झाड़ू काम क्रोध नित झाड़ों।

कामिल फ़कीरों ने जीवन का पल-पल सुमिरन और ध्यान में लगाने का उपदेश दिया है। यही जीव को विकारों से बचाने वाला, इसकी जन्म-जन्मान्तर की मलिनता उतारने वाला है और इसको सृष्टि से उखाड़ कर सृष्टा की ओर जोड़ने वाला प्राकृतिक साधन है। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं, 'ऊठत बैठत सोवत जागत सासि सासि हरि जपनै' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1298) फिर फ़रमाते हैं : 'सासि सासि न घड़ी विसरै पलु मूरतु दिनु राते' (आदि ग्रन्थ, पृ. 247)। हज़रत सुलतान बाहू कहते हैं कि ज़िकर (सुमिरन) करना मुश्किल है, पर सदा ज़िकर का फ़िकर होना चाहिये। ज़िकर से ग़फ़लत में बीता साँस कुफ्र में बीता साँस है क्योंकि उस समय मन अनश्वर परमात्मा की बन्दगी के स्थान पर नश्वर संसार के ध्यान में लगा रहता है :

1. ज़िकर कंनो कर फिकर हमेशा, इह लफ़ज़ तिख्खा तलवारों हू।
ज़ाकर सोई जिहड़े ज़िकर कमावण, इक पल न फ़ारग यारों हू।
2. जो दम ग़ाफ़ल सो दम काफ़र, सानूं मुरशद इह समझाया हू।

साईं बुल्लेशाह के कामिल मुर्शिद ने बुल्ले से अपनी पहली मुलाकात के समय उसको समझाया था, 'बुल्लिआ रब दा की पाना, एधरों पुटना ते

---

1. बाबा फ़रीद ने भी कहा है कि आत्मा का परमात्मा से एकदम मिलाप हो सकता है, यदि मनोविकारों की आग जलाने वाली इन्द्रियाँ वश में आ जायें : आजु मिलावा सेख फरीद टाकिम कूंजड़ीआ मनहु मचिदड़ीआ। (आदि ग्रन्थ, पृ. 488)।

उधर लाना।' इधर से उखाड़ कर उधर लगाने का काम सुमिरन और ध्यान की सहायता से ही पूरा होता है।

साईं जी अपनी काफ़ी 'उलटी गंग बहाइओ रे साधो तब हरि दरशन पाए' में सुमिरन और ध्यान के रूहानी अमल और इससे प्राप्त होने वाले अनुभव का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। आप कहते हैं कि अन्तर में हरि के दर्शन अन्तर में करने के लिये उलटी गंगा बहानी पड़ती है अर्थात सुरत के तार को आँखों के पीछे रख कर सुमिरन और ध्यान की सहायता से ज्ञान के तकले तथा ध्यान के चर्खे द्वारा उलटा घुमाना आवश्यक है। उलटा घुमाने का भाव मन व आत्मा को बाहर से अन्दर और नीचे से ऊपर लाना है। इस प्रकार दहिसर (रावण) लूटा जाता है अर्थात दस इन्द्रियाँ वश में आ जाती हैं। शरीर रूपी लंका के सब भेद प्रकट हो जाते हैं और अन्दर अनहद नाद सुनाई देने लगता है। हृदय में सतगुरु से मिलाप करके साधक सच्चा गुरु-भक्त बन जाता है। आत्मा आन्तरिक मण्डलों में चढ़ती हुई ऐसे स्थान पर पहुँच जाती है जिसको साईं जी ने 'अमृत मण्डल' कहा है।[1] शब्द या अमृत के अमृत कुण्ड में स्नान करने से आत्मा की सब मलिनताएँ उतर जाती हैं और यह पूरी तरह निर्मल होकर हरि में समाने के योग्य बन जाती है :

उलटी गंग बहाइओ रे साधो, तब हरि दर्शन पाए।
प्रेम की पूनी हाथ में लीजे, गुझ मरोड़ी पड़ने न दीजै[2]।

---

1. मुसलमान फ़क़ीरों ने इसको 'हौज़े कौसर' या 'आबे-हयात का चश्मा' कहा है :

लख आबे-हयात मुनव्वर चशमा, ओथे साए ने जुलफ़ अंबर दे हू।
(सुलतान बाहू)

दूसरे सन्तों-महात्माओं ने इसको अमृतसर, मानसरोवर आदि कई नामों से पुकारा है :

काइआ अंदरि अंमृतसरु साचा मनु पीवै भाइ सुभाइ हे।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1046)

2. सुरत की तार में बल न आने दो अर्थात सुरत को सावधानीपूर्वक सुमिरन और ध्यान के रूहानी अभ्यास में लगाओ।

ज्ञान का तकला ध्यान का चरखा, उलटे फेर भुआए।
उलटे पाउं पर कुंभ करन जाए, तब लंका का भेद उपाए।
दैहसर लुटिया हुन लछमण बाकी, तब अनहद नाद बजाए।
इह रात गुरू की पैरीं पावे, गुर सेवक तभी सदाए[1]।
अंम्रित मंडल मूं तब ऐसी दे, कि हरी हरि हो जाए।
उलटी गंग बहाइओ रे साधो, तब हरि दर्शन पाए।

ध्यान देने की आवश्यकता है कि इस काफ़ी में साईं जी ने आत्मा को अन्दर ले जाने के सभी रूहानी अमल को 'उलटी गंग बहाना', 'उलटे फेर भुआउना' और 'उलटे पैरीं कुंभ करना' कहा है। कामिल मुर्शिद फ़रमाते हैं कि सृष्टि की रचना के समय आत्मा मुकामे-हक (सचखण्ड) से नीचे उतरी। यह रास्ते के रूहानी मण्डल पार करती हुई अन्दर दसवें दरवाज़े में आ गई जो इसका वास्तविक निवास-स्थान बन गया। परन्तु यह यहाँ भी न टिकी और नौ द्वारों द्वारा शरीर और संसार में फैल गई। महात्मा समझाते हैं कि संसार के सुमिरन और ध्यान के कारण संसार और शरीर के नौ द्वारों में बँध चुकी आत्मा परमात्मा के नाम के सुमिरन और मुर्शिद के स्वरूप के ध्यान द्वारा अपना रुख मोड़ सकती है और आँखों के पीछे वापस जाकर परमात्मा की दरगाह से आ रहे कलमे या शब्द के सहारे दोबारा निज-घर वापस पहुँच सकती है। सन्त बेणी जी ने समझाया है कि मन और आत्मा की संसार और शरीर में फैली धाराओं को इधर से पलट कर अन्दर इड़ा, पिंगला और सुखमना के संगम पर ले आओ। यहाँ शब्द के सरोवर में स्नान करके आत्मा निर्मल हो जाती है। इस प्रकार आत्मा परमात्मा से मिलाप करने के योग्य बन जाती है :

इड़ा पिंगुला अउर सुखमना तीनि बसहि इक ठाई।
बेणी संगमु तह पिरागु मनु मजनु करे तिथाई।

(बेणी जी–आदि ग्रन्थ, पृ. 974)

---

1. सतगुरु के नूरी स्वरूप से मिलाप की ओर संकेत है। सतगुरु का अन्दर नूरी स्वरूप प्रकट होने से ही साधक सच्चा गुरु-सेवक बनता है। उसकी गुरु-भक्ति पूरी हो जाती है और उसकी आत्मा शेष रूहानी सफ़र सतगुरु के नेतृत्व में अन्दर तय करती है।

शाह रग में प्रवेश

तीसरे तिल को पार करके आत्मा अन्दर जिस सूक्ष्म नाड़ी में प्रवेश करती है उसे सन्तों-महात्माओं ने 'सुखमना' या 'सुषम्ना' नाड़ी कहा है। साईं बुल्लेशाह और कई सूफ़ी फ़कीरों ने इसको 'शाह रग' कहा है। शाह रग घंडी (गले की नस) नहीं, रूहानी यात्रा के लिये आँखों के पीछे बनी सूक्ष्म सड़क है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि जो लोग बाहरी दौड़-धूप त्याग कर शाह रग में पहुँच जाते हैं, उनके लिये परमात्मा की दरगाह दूर नहीं रह जाती :

शह रग थीं रब दिसदा नेड़े, लोकां पाए लंमे झेड़े।
वां के झगड़े कौन नबेड़े, भज्ज भज्ज उमर गवाई ए।
गल रौले लोकां पाई ए।

साईं बुल्लेशाह ने अपने इस उपदेश की पुष्टि के लिये अपने वचनों में कई स्थानों पर कुरान शरीफ़ की आयतों के उद्धरण दिये हैं जिनमें ख़ुदा बंदे को कहता है, मैं शाह रग से तेरे निकट हूँ और तू मुझे अपने आपमें पहचान :

1. नाहुन अकरब[1] लिख दितोई, हुवामाकुम[2] सबक दितोई।
   वफ़ी अनफोसेकुम[3] हुकम कीतोई, फिर केहा घूंघट पाइओ ई।
2. नाहुन अकरब दी बंसी बजाई[4]।
   मन अरफ़ूतनफ़सा दी कूक सुनाई।

आपने 'होरी खेलूंगी कहि बिसमिल्ला,' 'चल्लो देखिए उस मसतानड़े नूं' और 'फसुमा वजउल-अल्ला दसना ऐं अज ओ यार' नामक काफ़ियों में भी कुरान मजीद के इसी भाव की आयतों के उद्धरण दिये हैं जिनसे पता लगता है कि अहिले इस्लाम में भी प्रारम्भ से रूहानी उन्नति के लिये यह अभ्यास मान्य था। हज़रत सुलतान बाहू भी ऐसी आयतों के उद्धरण देकर फ़रमाते हैं कि परमात्मा के सच्चे प्रेमी बाहर के हर प्रकार के

---

1. मैं शाह रग से तेरे निकट हूँ 2. मैं तेरे साथ हूँ 3. तू मुझे अपने आपमें पहचान 4. यहाँ आप शाह रग के पास की बाँसुरी की ओर संकेत करते हैं जिसका भाव है कि शाह रग में पहुँच कर परमात्मा के कलमे या शब्द की बाँसुरी सुनाई देती है।

झगड़े दूर करके परमात्मा को शाह रग में से ढूँढ लेते हैं और सदा के लिये अद्वैत में प्रवेश करते हैं :

जिन्हा अलफ़ दी ज़ात सही चा कीती, ओह रखदे कदम अगेरे हू।
बाहू नाहुन-अकरब लभ लिओ ने, झगड़े कुल नबेड़े हू।

आप संकेत करते हैं कि ज़ाती इस्म अर्थात सुलतानल-अज़कार या सुरत-शब्द का अभ्यास करने वाले साधक शाह रग में पहुँच कर अपने अन्दर झाँक लेते हैं जिससे वह कुफ़्र और इस्लाम, जीवन और मौत की द्वैत से ऊपर उठ जाते हैं। उनका अहंभाव समाप्त हो जाता है अर्थात् वे परमात्मा में समा जाते हैं और परमात्मा उनमें समा जाता है :

हे-हू दा जामा पहिन करारां, इसम कमावां ज़ाती हू।
कुफ़र इसलाम मुकाम ना मंज़ल, न ओथे मौत हयाती हू।
शाह रग थीं नजदीक लधोसू, पा अंदरूने झाती हू।
असी ओन्हां विच ओह असां विच, दूर करीए कुरबाती हू।

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि इस रूहानी अभ्यास द्वारा आत्मा बिना किसी रुकावट के चौदह लोकों की सैर कर सक़ती है जिससे इसकी काग वृत्ति (मनमुखों वाली वृत्ति) समाप्त हो जाती है और इसको हंसों (गुरुमुखों) वाली गति प्राप्त हो जाती है :

1. चौधीं तबकीं सैर असाडा, किते न हुंदे कैद।
2. प्यारा आप जमाल विखाले, होइ कलंदर मसत मतवाले।
   हंसा दे हुन वेख के चाले, भुल्ल गई कागां दी टोर नी।
   नैन लगा मत गई गवाती, नाहुन अकरब ज़ात पछाती।
   साईं शाह रग तों वी नेड़े, पड़तालिओ हुन आशिक किहड़े।

हाथरस के परम सन्त हुज़ूर तुलसी साहिब फ़रमाते हैं कि अज्ञानी लोग शरीर रूपी कुदरती मसजिद या कुदरती काबा के स्थान पर बाहरी मन्दिरों और मसजिदों में परमात्मा की खोज में भटक रहे हैं। उस प्रियतम तक पहुँचने का असल मार्ग अन्दर शाह रग में है, इसलिये कामिल मुर्शिद की सहायता से शाह रग तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिये :

नकली मन्दिर मसजिदों में जाय सद[1] अफसोस है।
कुदरती मसजिद का साकिन[2] दुख उठाने के लिये॥
कुदरती काबे की तू महराब में सुन ग़ौर से।
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥
क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रासता शाहरग में है दिलबर पै जाने के लिये॥
मुरशिदे कामिल से मिल सिदक़ और सबूरी से तकी।
जो तुझे देगा फ़हम[3] शाहरग के पाने के लिये॥
गोशे बातन हो कुशादा जो करे कुछ दिन अमल[4]।
ला इलाह अल्लाहू अकबर पै जाने के लिये[5]॥
यह सदा तुलसी की है आमिल अमल कर ध्यान दे।
कुन कुरां में है लिखा अल्लाहू अकबर के लिये[6]॥

(सन्तों की बानी, पृ. 275)

समाधि की अवस्था

सुरत के अन्दर की ओर जागने या पूरी तरह अन्दर एकाग्र हो जाने को ही महात्मा ने समाधि की अवस्था कहा है। इसी को जड़ और चेतन की गाँठ खोलने का कार्य कहा है क्योंकि सुरत आँखों के पीछे आकर पहले शरीर से और फिर ऊपर जाकर मन से अलग हो जाती है। सुरत का शरीर और मन से अलग होना ही आपे की पहचान या आत्मा की पहचान है और यही परमात्मा की पहचान का साधन है। सुकरात ने कहा था कि सबसे पहले अपने आपकी पहचान करो (know thy self)। गुरु अमरदास जी ने फ़रमाया है, 'सो जनु निरमलु जिनि आपु पछाता। आपे आइ मिलिआ सुखदाता' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1046)। इसका परमार्थी अर्थ रूहानी अभ्यास द्वारा आत्मा को मन और इन्द्रियों से अलग करना है क्योंकि जब तक

---

1. सद अर्थात् बहुत दुःख हैं 2. रहने वाला 3. युक्ति, तरीका या समझ 4. पूर्ण सतगुरु की बताई युक्ति के अनुसार अभ्यास करने से अन्दर शाह रग में पहुँच जाओगे। वहाँ पहुँच कर आन्तरिक कान खुल जायेंगे 5. आन्तरिक कान खुलने से अन्दर खुदा के कलमे, शब्द या नाम की आवाज़ सुनाई देने लगती है 6. कुरान शरीफ़ में खुदा और कुन्न अर्थात परमात्मा और उसके हुक्म के एक ही अर्थ हैं।

आत्मा मन और इन्द्रियों से अलग नहीं होती, यह परमात्मा रूपी सूक्ष्म तत्व में नहीं समा सकती। हज़रत ईसा ने संकेत किया था कि मादा से बना मादा है परन्तु आत्मा (शब्द या परमात्मा) से बना आत्मा है।[1] आपका यही भाव है कि मनुष्य के अन्दर मादी और रूहानी तत्व मिले हुए हैं। रूहानी तत्व को मादी तत्व से अलग करके ही रूहानी तत्व (आत्मा), परमात्मा से मिल सकता है। साईं बुल्लेशाह ने अपनी वाणी में कुरान शरीफ़ की उन आयतों के उद्धरण दिये हैं जिनमें परमात्मा इनसान को कहता है, तुम मुझे अपने आपमें पहचानो।[2] इस फ़रमान का रूहानी अर्थ आत्मा को मन और इन्द्रियों से अलग करना है। आप कहते हैं कि रूहानी अभ्यास में शरीर सुन्न हो जाता है और आत्मा शरीर या मन-इन्द्रियों से अलग होकर अपने आपकी पहचान कर लेती है :

बुल्ला शाह जद आप नूं सही कीता,
तां मैं सुतड़े, अंग ना मोड़दी हां।

साईं जी इसको सुमन, बुकमन, उमीयन अर्थात आँखों, मुँह और कान बन्द कर लेने का अमल कहते हैं। आप कहते हैं कि दृश्यमान संसार और आँखों से नीचे का भाग झूठ की बस्ती है। ख़याल को इस झूठ और भ्रम की बस्ती से समेट कर ही अन्दर प्रियतम के अनश्वर अस्तित्व के दर्शन कर सकते हैं :

छड झूठ भरम दी बसती नूं।
कर इश्क दी क़ायम मसती नूं।
गए पहुंच सज्जन दी हसती नूं।
जिहड़े हो गए सुम बुकम उम।

ऐसे प्रेमी बाहर से देखने से पागल और कमले प्रतीत होते हैं परन्तु अन्दर प्रियतम के प्रति चतुर और सयाने होते हैं। उनकी दृष्टि सदा संसार और देह से ऊपर प्रियतम के पवित्र प्रकाश पर रहती है :

---

1. देखिये : पुस्तक का पृ. 93. 2. देखिये : पुस्तक के पृ. 96 पर आपके कलाम से दिये गए कुरान शरीफ़ की आयतों के उद्धरण।

हिजर तेरे ने झल्ली करके कमली नाम धराया।
सुमन बुकमन उमीयन हो के आपना वकत लंघाया।
कर हुन नज़र करम दी साईआं न कर ज़ोर धिगाने[1]।

जीवित मरना

पूर्ण यकसूई, पूर्ण एकाग्रता या समाधि की इस अवस्था को ही कामिल फ़कीरों ने जीते-जी मरने की अवस्था कहा है क्योंकि इसमें जीव बाहरी संसार से मुर्दा होकर आन्तरिक रूहानी जगत की ओर से जीवित हो जाता है। मौत के समय जैसे-जैसे आत्मा शरीर के नीचे के भाग से ऊपर की ओर सिमटती है, नीचे का भाग सुन्न या मुर्दा होता जाता है। अन्त में आत्मा आँखों से ऊपर पहुँच कर और शरीर को छोड़ कर एक ओर हो जाती है जिससे प्राणी की मौत हो जाती है। इसके विपरीत साधक रूहानी अभ्यास में जब चाहे आत्मा को शरीर से समेट कर संसार की ओर से मुर्दा और अन्दर जीवित हो सकता है और जब चाहे आत्मा को नौ द्वारों में उतार कर संसार की ओर दोबारा जीवित हो सकता है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मालिक के सच्चे प्रेमी जीते-जी मरने का अभ्यास करते हैं जिससे जब उनकी अपने अन्दर दृष्टि जाती है, रोम-रोम अकह रूहानी आनन्द से भर जाता है और उनकी प्रियतम के देश की ओर यात्रा शुरू हो जाती है :

इश्क जिन्हां दी हड्डी पैंदा, सोई नर जीवत मर जांदा।
जिस ते इश्क इह आया है, ओह बेबस कर दिखलाया है।
नशा रोम रोम में आया है, इस विच न रत्ती ओहला है।
हर तरफ़ दिसेंदा मौला है, बुल्ला आशिक वी हुन तरदा है।
जिस फ़िकर पिया दे घर दा है, रब मिलदा वेख उधरदा है।
मन अंदर होया झाता है, जिस पिछ्छे मसत हो जाता है।

साईं जी कहते हैं कि जीते-जी मरने का अभ्यास पक कर मेरे जीवन का स्वाभाविक भाग बन गया है। मैं प्रतिदिन मरता हूँ और प्रतिदिन जीवित

1. ज़बरदस्ती, ज़्यादती।

होता हूँ। इस अमल द्वारा ही मैं प्रतिदिन द्वैत से हिजरत[1] करके इस्लाम में दाखिल होता हूँ :

बुल्लिआ हिजरत विच इसलाम दे, मेरा नित्त है ख़ास मुकाम।
नित्त नित्त मरां ते नित्त नित्त जीवां, मेरा नित्त नित्त कूच मुकाम।

इस प्रकार के वर्णन अनेक सन्तों-महात्माओं की वाणी में मिलते हैं। बाइबिल में आता है, मैं रोज़ मरता हूँ।[2] जब तक कोई मनुष्य दोबारा जीवित नहीं होता, वह परमात्मा की दरगाह में प्रवेश नहीं कर सकता।[3] रूहानी अभ्यास द्वारा जीते-जी मरना ही जीव का शरीर की ओर से मृतक होकर अन्दर दोबारा जीवित होना है।

कबीर साहिब कहते हैं कि जीते-जी मरने का अभ्यास करने वाले लोग माया में रहते हुए इससे निर्लिप्त रहते हैं और वे सदा के लिये आवागमन के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं :

जीवत मरै मरै फुनि जीवै ऐसे सुंनि समाइआ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ बहुड़ि न भवजलि पाइआ।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 332)

---

1. मुसलमानों में हज़रत मुहम्मद के मक्का से मदीना चले जाने को हिजरत का नाम दिया जाता है और इस तिथि से ही मुसलमानों का हिजरी सन् शुरू होता है। साईं जी इस अमल को सूफ़ीयाना ढंग से वर्णन करते हैं कि आत्मा का नौ द्वारों के मक्का से दसवें दरवाज़े के मदीना में पहुँचना हिजरत करना है और इसका नौ द्वारों तथा दृश्यमान संसार की द्वैत (कुफ्र) से आज़ाद होकर अल्ला-ताला से मिलाप की वाहदत में पहुँच जाना इस्लाम में दाखिल हो जाना है।

हुज़ूर स्वामीजी महाराज ने भी संकेत किया है कि जब आत्मा शरीर के नौ द्वारों से सिमट कर आन्तरिक आँख खोल लेती है तो यह अनेकता से एकता में आ जाती है और इसको अन्दर इलाही नूर दिखाई देने लगता है :

बसो तुम आय नैनन में। सिमट कर एक यहँ होना॥
दुई यहँ दूर हो जावे। दृष्टि जोत में धरना॥

(सार बचन, बचन 19 : शब्द 18)

2. I die daily. (1 Corinthians 15 : 31)

3. I say unto thee except a man be born again he cannot see the kingdom of God. (John 3 : 3)

आप कहते हैं कि मौत का मारा व्यक्ति दोबारा जीवित नहीं हो — जीते जी मरने का अभ्यास करने वाला प्राणी सैकड़ों बार मर कर हर बार जीवित हो सकता है :

मरीऐ तो मर जाईऐ, फूट पड़ै संसार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार॥

सन्त-जन समझाते हैं कि जिस घर में मर कर वहाँ पहुँचना है, जीते-जी मर कर वहाँ पहुँच जाना चाहिये। इस प्रकार मौत का भय समाप्त हो जाता है और स्थायी मुक्ति या अमर जीवन की प्राप्ति हो जाती है :

1. मुइआ जितु घरि जाइऐ तितु जीवदिआ मरु मारि।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 21)

2. मरणै ते जगतु डरै जीविआ लोड़ै सभ कोइ।
गुरपरसादी जीवतु मरे हुकमै बूझै सोइ।
नानक ऐसी मरनी जो मरै ता सद जीवणु होइ।
(वही, पृ. 555)

3. जीवतु मरै मरै फुनि जीवै ता मोखंतरु पाए।
(वही, पृ. 550)

हज़रत शम्स तबरेज़ फ़रमाते हैं कि जीवित मरने का अभ्यास करने वाले प्राणी अन्त समय भी बा-खबर जान देते हैं। वे अपने माशूक (सतगुरु) के सामने मीठी और सुहानी मौत मरते हैं। मुर्शिद उनकी गैब की आँखें खोल देता है परन्तु शेष लोग अँधों की तरह मरते हैं। ज्ञानी लोग मर कर अपने प्यारे की ओर जाते हैं, पर अज्ञानियों की जान बेखबरी और दुःख में निकलती है। जो लोग मालिक के भय से जाग कर रात को रूहानी अभ्यास में लगे रहते हैं वे निडर होकर और हँसते हुए सतगुरु के सामने शरीर का त्याग कर देते हैं।[1]

---

1. आशकाने कि बाख़बर मीरंद, पेशे माशूक चूं शकर मीरंद।
औलीआ चशमे ग़ैब बकुशाइंद, बाकीआ जुलमा कोर-ओ कर मीरंद।
आरफ़ां जानबे नअईम खंद, ग़ाफ़लां ख़्वार ओ बेख़बर मीरंद।
व आंकि शबहा न खुफ़ता अंदर बीं, जुमला बे खौफ़ ओ बे हजर मीरंद।
व आं कि ईं जा कि आं नजर जुसतंद, शादो ओ खंदां दर नज़र मीरंद।

मौलाना रूम कहते हैं कि अमर जीवन प्राप्त करने के लिये मरने से पहले मरना आवश्यक है। मरने से पहले हम अपनी जान अपने प्यारे के सुपुर्द करके अपनी मर्ज़ी से जीवन से परे जा सकते हैं।[1]

आप कहते हैं कि यह ऐसी मौत नहीं है जिससे कब्र में जाना पड़े। इससे तो अँधेरे से नूर और दुःख से सुख की ओर जाते हैं। जीवित मरने से मत डरो क्योंकि इस शरीर के अतिरिक्त हमारा एक अन्य शरीर भी है।[2]

पलटू साहिब कहते हैं कि मौत तो सबकी होती है परन्तु जीवित मरने वाला जीव परमात्मा का सच्चा भक्त है जो सदा के लिये जन्म-मरण के बन्धनों से आज़ाद हो जाता है :

1. मरते मरते सब मरे, मरै न जाना कोय।
   पलटू जो जियतै मरै, सहज परायन होय॥

(पलटू साहिब की बानी, भाग 3, साखी 99)

2. जीते जी मरि जाय, मुए पर फिर उठि जागै।
   ऐसा जो कोइ होइ, सोई इन बातन लागै॥

(वही, भाग 1, कुण्डली 72)

दादू साहिब कहते हैं कि सच्चे प्रेमी तन और मन की सुध खोकर जीवत-मृतक हो जाते हैं जिससे उनको अन्दर शब्द का महारस मिल जाता है। उनको आत्मा की पहचान हो जाती है और सच्चे साहिब के दर्शन हो जाते हैं :

ऐसी लागी परम की, तन मन सब भूला।
जीवत मृतक ह्वै रहे, गहि आतम मूला।

---

1. बमीर ऐ दोसत पेश अज़ मरग, अगर मे ज़िंदगी ख़्वाही।
   पेशे मुरदन ब मीर ऐ नेको सर, जां बजानां बदेह ज़ जाने ख़ुद गुजार।

2. नै चुनां मरगे कि दर गोरे रवी,
   बलकि अज़ जुलमत सूए नूरे रवी।
   नै चुनां मरगे कि दर गोरे रवी,
   मरगे तबदीलीए कि दर सूरे रवी।
   आं तूई कि बे बदन दारी बदन,
   पस मत्तरस अज़ जिसम ओ जां बेरूं शुदन।

चेतनि चितहिं न बीसरै, महारस मीठा।
शब्द निरंजन गहि रहिया, उन साहिब दीठा।

(दादू दयाल की बानी, भाग 1, परचा 318)

हज़रत सुलतान बाहू समझाते हैं कि सच्ची फ़कीरी जीवित मरने में है और परमात्मा को मिलने का अर्थ भी जीवित मरने से ही प्राप्त होता है :

1. तदों नाम फ़कीर है सोहंदा बाहू, जे जीवंदियां मर जावे हू।
2. बाहू मर गए जो मरने थीं पहिले, तिनां ही रब पाया हू।
3. मरन थीं मर रहै अग्गे बाहू, जिन्हां हक दी रमज़ पछाती हू।

साईं बुल्लेशाह हदीस में से 'मूतू कबलंता मूतू' के उदाहरण से उपदेश करते हैं कि मरने से पहले मरने का ज्ञान सीखो क्योंकि इस अभ्यास का साधक मरणोपरान्त दोबारा जीवित हो जाता है। उसको न दरगाह में लेखा देना पड़ता है और न ही नरकों के दुःख सहने पड़ते हैं। मनुष्य-जन्म का वास्तविक ध्येय परमात्मा से मिलाप करना है जो जीवित मरने के अभ्यास से ही पूरा होता है :

1. मूतू कबलंता मूतू होया, मोइआं नूं मार जवाली ओ यार।
   बुल्ला शहु मेरे घर आया, कर कर नाच वखाली ओ यार।
2. करां नसीहत वड्डी जे कोई, सुन कर दिल ते लावेंगा।
   मोए तां रोज़े हशर नूँ उट्ठन, आशिक न मर जावेंगा।
   जे तूं मरें मरन तों पहिलों, मरने दा मुल्ल पावेंगा।

ध्वनि एवं प्रकाश

जीवित मरने, पूर्ण एकाग्रता या समाधि की अवस्था प्राप्त होने, आन्तरिक आँख खोलने और दसवें दरवाज़े में दाखिल होने पर जीव को अन्दर क्या अनुभव होता है ? इस प्रकार हम मुर्दा लोगों की बस्ती से गुज़र कर अमर जीवन वाले लोगों के देश में पहुँच जाते हैं, 'असीं मोइआं दे परले पार जीवंदिआं विच बहिंदे हां।' आप बताते हैं कि काले कुण्डल के अन्दर छिपे घेरे (शिव-नेत्र या नुकता-ए-सवैदा) में दाखिल होने वाले साधक को तीन प्रकार के अनुभव होते हैं : उसको अन्दर कलमे या शब्द की आवाज़ सुनाई देती है, शब्द या कलमे का नूर दिखाई देता है और

सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन होते हैं :

सूरत यूसफ़ मुजमल वाली, बदलां ग़रज संभाली ओ यार।
जुलफ़ सिआह दे विच यद बैज़ा, दे चमकार विखाली ओ यार।
जो रंग रंगिया गूढ़ा रंगिया, मुरशद वाली लाली ओ यार।

आपने अन्दर पहुँचने पर होने वाले इन तीन अनुभवों का दूसरी तरह भी वर्णन किया है :

अरश मुनव्वर बांगां मिलिआं, सुनिआं तखत लाहौर।
शाह अनायत कुंडीआं लाईआं, आपे खिचदा डोर।

इस बिन्दु में दाखिल होने को साईं जी ने ऐसे ठाकुरद्वारे में पहुँचने का नाम दिया है जहाँ अनहद के अनेक नाद गूँजते हैं और परमात्मा का प्रकाश बरसता दिखाई देता है।[1]

कई सन्तों-महात्माओं ने अपनी वाणी में संकेत किया है कि अन्दर दसवें दरवाज़े में प्रवेश करने से आत्मा को शब्द या कलमे की आवाज़ सुनाई देती है और शब्द या कलमे का प्रकाश दिखाई देता है। ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि ध्यान को छः चक्रों और सातवें आसमान से परे ले जाये तो अन्दर शब्द की पाँच नौबतें सुनाई देने लगती हैं।[2]

हज़रत शम्स तबरेज़ कहते हैं कि ख़याल का तम्बू शरीर के छः चक्रों से उखाड़ कर अन्दर सातवें आसमान में गाड़ दें तो अन्दर (खुदा के कलमे की) पाँच धुनें सुनाई देने लगती हैं।[3]

कबीर साहिब कहते हैं कि जब नौ दरवाज़े बन्द कर लें तो अन्दर अनहद के बाजे बजने सुनाई देने लगते हैं, 'मूंदि लए दरवाजे। बाजीअले

---

1. (क) देखिये काफ़ी : 'इश्क दी नवीउं नवीं बहार।'
(ख) देखिये इसी पुस्तक के पृष्ठ 80 पर दी गई 'जां मैं सबक इश्क दा पढ़िआ।'

2. खामोश पंज नौबत बिशनौज़ आसमाने,
कां आसमान बेरू ज़ आं हफ़तो ई शश आमद।

3. वहफ़तम चरख नौबत पंज याबी,
चू खैमां ज़ शश जहत बरकंदह बाशी।

अनहद बाजे' (आदि ग्रन्थ, पृ. 656)। गुरु अमरदास जी कहते हैं कि शरीर के नौ द्वारों से ऊपर मुक्ति का दरवाज़ा लगा हुआ है जिसकी यह निशानी है कि उसमें दिन-रात अनहद शब्द बज रहा है :

नउ दरवाजे दसवै मुकता अनहद सबदु वजावणिआ॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 110)

आप संकेत करते हैं कि हमारे अन्दर (आँखों के पीछे) एक ज्योति जल रही है जिसमें से शब्द की आवाज़ निकल रही है। इस आवाज़ को सुनने से दुनिया का मोह टूट जाता है और परमात्मा से सच्चा प्यार पैदा हो जाता है :

अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 634)

पलटू साहिब फ़रमाते हैं कि जब हम समाधि की अवस्था में ध्यान को उलटे कुएँ (आँखों से ऊपर के भाग) में ले आते हैं तो अन्दर एक चिराग जलता दिखाई देता है जिसकी ज्योति से एक आवाज़ निकल रही है :

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग।
तिस में जरै चिराग बिन रोगन बिना बाती।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती।
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वा को दरसावै।
निकसै एक अवाज चिराग की जोतहिं माहीं।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं।
पलटू जो कोई सुनै ता के पूरे भाग।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग।

(पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुण्डली 169)

फ़ना और बका

इस चर्चा की पृष्ठभूमि में ही यह बात सोच लेनी चाहिये कि सूफ़ी फ़कीरों के 'फ़नाह-फ़ि-शैख' (गुरु में समा जाना) और 'फ़नाह-फ़ि-अल्ला' (परमात्मा में समा जाना) आदर्श केवल मानसिक कल्पना न हो कर निश्चित रूहानी आध्यात्मिक अवस्था के सूचक पद हैं। साईं जी की

सारी वाणी इस भाव को प्रकट करती है कि 'रांझा-रांझा' करती हुई हीर स्वयं रांझा हो जाती है। सुमिरन और ध्यान के अभ्यास द्वारा आत्मा शरीर और मन-इन्द्रियों से अलग होकर पहले सतगुरु की और फिर परमात्मा की ज़ात में लीन हो जाती है। साधक को अमली तौर से रूहानी साधना द्वारा यह अवस्था प्राप्त करनी पड़ती है। इस अवस्था की प्राप्ति ही हर सच्चे सूफ़ी साधक की और हर प्रकार की सच्ची रूहानी साधना की वास्तविक मंज़िल है।

साईं जी अपनी काफ़ी 'नी मैं हुण सुनिया इश्क शरा की नाता' में कहते हैं, 'अंदर साडे मुरशद वसदा नेहुं लग्गा तां जाता।' इसी प्रकार अपनी काफ़ी 'कदी अपनी आख बुलाओगे' के अन्तिम पद में कहते हैं कि जब तक शिष्य गुरु में समा कर गुरु का रूप नहीं हो जाता, वह अन्दर परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकता :

बुल्ला शहु नूं वेखन जाउगे, इन्हां अखियां नूं समझाउगे।
दीदार तदांही पाउगे, बन शाह अनायत घर आउगे।

आप संकेत करते हैं कि मेरा तन, मन, जान और आत्मा जो कुछ है, प्रियतम का रूप हो चुका है। इसलिये मुझे प्रियतम में ही समा जाना है:

मैं बेगुन क्या गुन कीआ है,
तन पिया है, मन पिया है।
ओह पिया सु मेरा जीआ है,
पिया पिया से रल मिल जाउंगे।

आप कहते हैं कि जब आपने फ़ना आपे या अहं को दूर कर लिया तो खुदा ही खुदा बाकी रह गया और मैं खुदा का रूप हो गया, चाहे इस भेद को प्रकट करने के लिये मुझे भी मंसूर की तरह सूली पर चढ़ाया जा सकता है :

मैं फानी आप को दूर करां, तैं बाकी आप हजूर करां।
जे अजहर वांग मनसूर करां, खड़ सूली पकड़ चड़ाउगे।
कदी अपनी आख बुलाउगे।

'नी सईओ मै गई गवाती' काफ़ी में भी संकेत करते हैं कि जब

खुदी, नफ़स या अहं को फ़ना कर दिया तो आत्मा सर्वव्यापक हकीकत में समा कर उसी का रूप हो गई :

 नी सईओ मैं गई गवाती, खोल घूंघट मुख नाची।
जित वल वेखां दिसदा ओही, कसम उसे दी होर न कोई।
ओहो मुहकम फिर गई धरोई, जब गुर पत्तरी वाची।
नाम निशान न मेरा सईओ, जां आखां तां चुप्प कर रईयो।
इह गल मूल किसे न कहीओ, बुल्ला खूब हकीकत जाची।

कलमा या शब्द

साईं बुल्लेशाह ने पीछे समझाया था कि जब आत्मा शरीर के नौ द्वार पार करके दसवें दरवाज़े में पहुँच जाती है—'दर दसवें आण खलोए हां' तो वहाँ जाकर अनहद शब्द या अनहद नाद से जुड़ जाती है, जो पल-पल, क्षण-क्षण अन्दर धुनकारें दे रहा है। यह शब्द सचखण्ड से आ रहा है और यही जीवात्मा को अपने में लपेट कर, इसको सब रूहानी मण्डल पार कराता हुआ वापस धुर-धाम ले जाने का काम करता है।

इस अनहद शब्द या अनहद नाद को ही सूफ़ी दरवेशों ने कुन, खुदा का कलमा, खुदा का कलाम, बांगे आसमानी, नदाए-सुलतानी, बांग, सौत, इस्मे-आज़म, सुलतानल-अज़कार आदि कई नामों से पुकारा है। मुर्शिद की सहायता से अन्दर इस कलमे से जुड़ने को ही मुर्शिद से बैत होना (नामदान पाना) या मुर्शिद के कलमे में आना कहा जाता है। साईं जी कहते हैं कि मैं नीच तो इल्म के अन्दर बन्द था, मुर्शिद ही बख़्शिश करके मुझे कलमे में ले आया। फिर पता चला कि कलमे से मिलाप के बिना जीव किसी काम का नहीं और कलमे के बिना संसार से छुटकारा पाने का कोई साधन नहीं है :

अर्सी आजज़ विच कोट इलम दे, ओसे आंदे विच कलम दे।
बिन कलमे दे नाहीं कम दे, बाझों कलमे पार नहीं।

कलमे या शब्द के दो भेद

कलमा, शब्द या नाम दो प्रकार का है—सिफ़ाती और ज़ाती अर्थात वर्णात्मक और धुनात्मक। परमात्मा के अनेक गुणों के आधार पर रखे गये उसके नाम जो लिखने, पढ़ने और बोलने में आ सकते हैं, सिफ़ाती या वर्णात्मक नाम हैं। परमात्मा, हरि, ओम, राम, रहीम, अल्लाह, खुदा, जेहोवा, वाहिगुरु, राधास्वामी आदि सब सिफ़ाती या वर्णात्मक नाम

कहलाते हैं। दूसरा सच्चा कलमा, सच्चा शब्द या सच्चा नाम है। यह ईश्वर की सृष्टि की रचना करने वाली शक्ति है जो ध्वनि और प्रकाश की तरंगों के रूप में संसार के कण-कण में और प्रत्येक मनुष्य के अन्दर समाई हुई है। यह कुन, कलमा, शब्द या नाम ही सृष्टि का कर्ता है, यही सृष्टि का आधार है और यही जीव को संसार से मुक्त करने वाली असली शक्ति है। सब कामिल फ़क़ीर आदिकाल से इस सच्चे कलमे, शब्द या नाम की महिमा करते चले आ रहे हैं क्योंकि यह परमात्मा द्वारा परमात्मा को मिलने के लिये प्रत्येक मनुष्य के अन्दर रखा गया स्वाभाविक साधन है। यह कलमा, शब्द या नाम अनादि, सर्व-व्यापक, सर्व-शक्तिमान और सर्व-ज्ञाता है। यह शब्द या कलमा परमात्मा का ही क्रियात्मक रूप है।

हुज़ूर स्वामीजी महाराज फ़रमाते हैं कि लिखने, पढ़ने और बोलने में आने वाले नाम बाहरमुखी हैं। धुन रूप में प्रकट परमात्मा की शक्ति प्रत्येक जीव के अन्दर है। वर्णात्मक नाम अनेक हैं, परन्तु धुनात्मक नाम एक है। वर्णात्मक नाम साधन या माध्यम है, धुनात्मक नाम परमेश्वर का निज रूप है, इसलिये यही असल मंज़िल या ध्येय है।[1] सब धर्मों के कर्मकाण्ड अलग-अलग हैं परन्तु इनको एक ही रूहानी आधार पर खड़ा करने वाली वस्तु कलमा, शब्द या नाम ही है।

अनहद शब्द या सच्चा कलमा

इस सम्बन्ध में साईं जी की काफ़ी 'बंसी अचरज कान्ह बजाई' विचार करने के लिये नीचे दी जा रही है :

बंसी अचरज कान्ह बजाई।
बंसी वालिया चाका रांझा, तेरा सुर सभ नाल है सांझा।
तेरियां मौजां साडा मांझा, साडी सुरती आप मिलाईं।
बंसी वालिया कान्ह कहावें, शबद अनेक अनूप सुनावें।
अखियां दे विच नज़र न आवें, कैसी बिखड़ी खेड रचाई।
बंसी सभ कोई सुने सुनाव, अरथ इहदा कोई बिरला पावे।
जो कोई अनहद दी सुर पावे, सो इस बंसी दा शैदाई।

---

1. सार बचन, बचन 10 : शब्द 1.

सुनियां बंसी दीआं घनघोरां, कूका तन मन वांगूं मोरां।
डिट्ठियां उस दीआं तोड़ां जोड़ां, इक सुर दी सभ कला उठाई।
इस बंसी दे पंज सत्त तारे, आपो अपनी सुर भरदे सारे।
इक्को सुर सभ विच दम मारे, साडी उस ने होश भुलाई।
इस बंसी दा लंमा लेखा, जिसने ढूंडा तिस ने देखा।
सादी इस बंसी दी रेखा, एस वजूदों सिफ़त उठाई।
बुल्ला पुज पए तकरार, बूहे आन खलोते यार।
रख्खीं कलमे नाल बिउपार, तेरी हज़रत भरे गवाही।

आपने सारी काफ़ी में अनहद शब्द की बाँसुरी की महिमा का वर्णन किया है परन्तु अन्तिम तुक में इसको कलमा कहा है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि आप 'शब्द' या 'अनहद शब्द' और 'कलमे' को एक ही अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं। आप परमात्मा और सतगुरु दोनों को 'बंसी वाला रांझा' या 'बंसी वाला कान्ह' कहते हैं अर्थात् सतगुरु और परमेश्वर दोनों के अस्तित्व का सार शब्द या कलमा है। इस बाँसुरी का स्वर सार्वजनिक है अर्थात सब जीवों के अन्दर और सारी सृष्टि में इसकी ध्वनि गूँज रही है। 'साडी सुरती आप मिलाईं' अर्थात् सुरत, शब्द, सतगुरु, परमात्मा सबके अस्तित्व का सार एक होने के कारण ही ये आपस में अभेद हो सकते हैं क्योंकि केवल हम-जिन्स (एक प्रकार की) वस्तुएँ ही आपस में लीन हो सकती हैं।

बहुत कम जीवों को अनहद की बांसुरी का ज्ञान होता है परन्तु जो एक बार इसके मतवाले बन जाते हैं, उनको पता लग जाता है कि सृष्टि की रचना करने वाली शक्ति ही यह ध्वनि है, 'इक सुर दी सभ कला उठाई।'

'इस बंसी दा लंमा लेखा'—शब्द की ध्वनि अथाह है। इसकी 'सादी रेखा'—यह द्वैत से मुक्त है। 'ऐस वजूदों सिफ़त उठाई'—इसके द्वारा प्रभु के अस्तित्व से तीन गुण उत्पन्न हुए, जिससे सारी सृष्टि रची गई।

'इस बंसी दे पंज सत तारे, इक्को सुर सभ दे विच दम मारे' अर्थात् यह ध्वनि एक है, अखण्ड है और स्वयंभू अर्थात अपने आपमें आप है। यह एक ध्वनि अलग-अलग रूहानी मण्डलों में अलग-अलग रूपों में सुनाई देती है।

इस अनहद की ध्वनि में लीन होकर सुरत हर प्रकार के द्वैत से मुक्त होकर प्रियतम के द्वार पर पहुँच जाती हैं। हर प्रकार की करनी त्याग कर इस बाँसुरी, शब्द या कलमे के साथ ही सम्बन्ध रखना चाहिये क्योंकि इस की कमाई करने वाले व्यक्ति के अन्त समय उसका सतगुरु सहायक सिद्ध होता है, 'रख्खीं कलमे नाल बिउपार, तेरी मुरशद भरे गवाही।'

आपने 'आओ फ़कीरो मेले चल्लिए' कलमे या शब्द को 'अनहद का बाजा', 'आरिफ़' (ब्रह्मज्ञानी) दा वाजा' या 'अनहद शब्द' कहा है। आप कहते हैं कि फ़कीरी या योग बाहरी भेख या त्याग का नहीं, मन को अन्दर अनहद के बाजे में मारने का नाम है, 'कायम करो मन बाजा रे।' इस कलमे, शब्द या नाम से मिलाप किये बिना संसार का मेला किसी काम का नहीं। शब्द के बिना मूल और व्याज (मनुष्य-जन्म और शुभ-कर्म) व्यर्थ चले जाते हैं। परन्तु जो व्यक्ति अन्दर इससे जुड़ जाता है, शब्द उसको मनुष्य से परमात्मा बना देता है :

आओ फ़कीरो मेले चल्लिए, आरफ़ का सुन वाजा रे।
अनहद शबद सुनो बहु रंगी, तजीए भेख पियाजा रे।
अनहद वाजा सरब मिलापी[1], निरवैरी[2] सिरनाजा[3] रे।
मेले बाझों मेला औंतर, रुढ़ गया मूल विआजा रे।
कठिन फ़कीरी रस्ता आशिक, कायम करो मन बाजा रे[4]।
बंदा रब भइओ इक बुल्ला, सुख पड़ा जहान बराजा रे।

साईं जी ने कलमे या अनहद शब्द का 'कुन फ़यीकुन दा आवाजा' कह कर यह संकेत दिया है कि परमात्मा के हुक्म या शब्द की ध्वनि ही

---

1. कुछ पुस्तकों में पाठ 'सुख मिलापी' है जिसका अर्थ शीघ्र मिलाप कराने वाला है।

2. गुरु नानक साहिब ने सतनाम या परमात्मा को निर्वैर कहा है। साईं जी भी शब्द या नाम की पूर्ण एकता की ओर संकेत कर रहे हैं। वैर का आधार द्वैत है।

3. नाजा=छिद्र, सुराख; सिरनाजा=सिर का छिद्र।

4. सच्ची फ़कीरी और सच्चे इश्क का असल मार्ग मन को अन्दर शब्द में खड़ा करना है जो बहुत कठिन काम है।

संसार की कर्ता है।[1] आपने कुरान शरीफ़ की आयतों के उद्धरण से इसको 'गंज मखफी की बंसरी' अर्थात् परमात्मा रूपी गुप्त कोष की शब्द ध्वनि भी कहा है। इसको आपने 'लामकान की पटड़ी पर बैठ कर बजाने वाला नाद' भी कहा है और इसको अरशों-कुर्सी (गगन-मण्डल) की बाँग का नाम दिया हैं :

1. तूं आइओं ते मैं न आई, गंज मखफ़ी दी तैं मुरली बजाई।
   आख अलस्त गवाही चाही, ओथे कालूबला सनाइआ ई।
   सईओं हुन मैं साजन पाइओ ई।
2. बुल्ला लामकान दी पटड़ी उत्ते बहि के नाद वजावांगी।
3. अरश कुरसी ते बांगां मिलियां, मक्के पै गया शोर।

शब्द की ध्वनि की महिमा

सन्त नामदेव जी संकेत करते हैं कि हम अखण्ड मण्डल में अनहद की वीणा बजा कर सहज ही धुरधाम पहुँच सकते हैं

बेद पुरान सासत्र आनंता गीत कबित न गावउगो।
अखंड मंडल निरंकार महि अनहद बेनु बजावउगो।
बैरागी रामहि गावउगो।
सबदि[2] अतीत अनाहदि राता आकुल कै घरि जावउगो।

(नामदेव—आदि ग्रन्थ, पृ. 972)

पलटू साहिब कहते हैं कि जीव रूहानी मण्डलों में जाकर परमात्मा के शब्द की तान सुन कर उस तान में ही समा जाता है :

पुरुष अलापै तान सुना मैं एक ठो जाई।
वाहि तान के सुनत तान में गई समाई॥

(पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुण्डली 175)

---

1. गुरु नानक साहिब ने भी कहा है, 'कीता पसाउ एको कवाउ' अर्थात् सृष्टि परमात्मा के हुक्म या शब्द का खेल है। सृष्टि-रचना सम्बन्धी इस प्रकार के संकेत संसार के कई अन्य धर्म-ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

2. बिना बजाये बजने वाले निर्लेप शब्द में समा कर कुल-रहित (भाव अजन्मा, अयोनि) परमात्मा से मिलाप करूँगा।

हज़रत ईसा कहते हैं, देखो, आकाश में द्वार खोल दिया गया और जो पहली आवाज़ मुझे सुनाई दी, वह ऐसी थी जैसे बिगुल मेरे साथ बातें कर रहा हो। उसने मुझसे कहा, तू इधर आ, मैं तुझे इससे आगे की चीज़ें दिखाऊँ।[1] फिर वे कहते हैं, मैं आत्मा में था (अर्थात् शरीर को छोड़ कर शब्द में आ गया था) और मैंने बिगुल की भारी और ऊँची आवाज़ सुनी।[2]

ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं, कोई नहीं जानता कि मेरे प्यारे की मंज़िल कहाँ है, इतनी बात अवश्य है कि वहाँ से घण्टे की आवाज़ आ रही है।[3]

आपने आन्तरिक मण्डलों में शब्द की अलग-अलग रूप में सुनाई देने वाली ध्वनि का भी वर्णन किया है। आप कहते हैं, सुनो, कामिल फ़क़ीर सुर करके आहंग, चंग, बरबत, तंबूरे और बाँसुरियाँ सुना रहे हैं अर्थात अन्दर अलग-अलग रूहानी मण्डलों की ध्वनियाँ सुन रहे हैं।[4]

मौलाना रूम कहते हैं, हज़रत मुहम्मद ने फ़रमाया है कि मेरे कानों में साधारण आवाज़ की तरह परमात्मा की आवाज़ आ रही है। परमात्मा ने तुम्हारे कानों पर मोहर लगाई हुई है ताकि तुम उस आवाज़ को न सुन सको।[5]

मौलाना शेख मुहम्मद अकरम साबरी ने अपनी पुस्तक 'इक्तबास-उल-अनवार' के पृष्ठ 36 और 106 पर लिखा है कि हज़रत मुहम्मद वर्षों तक ग़ारे-हुरा (एक गुफ़ा) में 'आवाज़े-मुस्तकीम' (सीधी और पक्की आवाज़) या सुल्ताने-अलाफ़ा (सुल्मानुल-अज़कार या इस्मे आज़म) के अभ्यास में लीन रहे। इसी पुस्तक के पृष्ठ 106 पर यह भी लिखा है कि

---

1. Behold a door was opened in heaven and the first voice which I heard was as it were, of a trumpet talking with me ; which said : Come up hither and I will show thee things which must be hereafter. (Rev. 4 : 1)

2. I was in the spirit on the Lord's day, and heard behind me a great voice, as of a trumpet. (Rev. 1 : 10)

3. कस नदानसत कि मंजले गाहे माशूक कुजा असत,
ई कदर हसत कि बांगे जरस मे आयद।

4. बिशनौ कि मुतरवाने चमन रासत करदह अंद,
आहंग चंग बरबत व तंबूर व वाए नै।

5. गुफ़्त पैगंबर की आवाज़े खुदा, मे रसद दर गोशे मन हमचू सदाअ।
मुहर बर गोशे शुमा बिनहादे हक, ता सबब आवाजे खुदा नारद सबक।

कादरी सूफ़ी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हज़रत अब्दुल कादर जीलानी ने भी कई वर्ष इसी गुफ़ा में अभ्यास किया।[1]

मुहम्मद दारा शिकोह लिखता है कि सारा संसार उस परमात्मा के कलाम की आवाज़ और नूर से भरपूर है फिर भी अँधे लोग पूछते हैं कि परमात्मा कहाँ है। कानों में से चतुराई और अहं की रूई निकाल दें तो सारी सृष्टि के सच्चे विधाता की दरगाह से आ रही कलमे या शब्द की आवाज़ सुनाई देने लगेगी। मालूम नहीं कि लोग कयामत के दिन बजने वाले बिगुल की क्यों प्रतीक्षा कर रहे हैं, जबकि शब्द या कलमे के बिगुल की आवाज़ सदा खुदा की दरगाह से हरएक के अन्दर आ रही है।[2]

आप कहते हैं कि कलमे या शब्द का अभ्यास सबसे ऊँची रूहानी करनी है। आप हदीसों, हज़रत मुहम्मद साहिब की आदरणीय धर्मपत्नी बेगम खदीजा, हज़रत ग़ौस-अस-साकलैन और अपने मुर्शिद के उद्धरण से कहते हैं कि हज़रत मुहम्मद पैगम्बर बनने से पहले और बाद में शब्द या कलमे की आवाज़ का अभ्यास किया करते थे।[3]

हज़रत सुल्तान बाहू ने भी कहा है कि कलमे या शब्द का अभ्यास

---

1. गुरुमत सिद्धान्त, भाग पहला : राधास्वामी सत्संग ब्यास, चतुर्थ संस्करण, 1985, पृ. 323.

2. बर आवर पंबा पंदारत अज़ गोश, नदाइ-वाहद-उल कहार बनीओश।
नदा मी आइद अज़ हक बर दवामत, चरा गशती तू मौकूफ़ किआमत।
(रिसाला-ए-हक-नुमा, पृ. 16)

3. "This practice of hearing the voice of the silence is path of the Faqirs, the Sultan-ul-azkar or the king of all practices.

"This sound existed from before the creation of the worlds, and exists even now and will continue to exist even when the worlds enter into non-existence. This sound is called the infinite and absolute sound. There is no practice higher than that of hearing this sound ."

"From many authentic traditions, collected in the six authentic Hadis Volumes, we learn that our Prophet (may the blessing and peace of God be on him) was devoted to this practice, both before and after his attaining the rank of prophet-hood. But none of the learned men have found out the secret of this mystery, and have not consequently tried to practise it."

(शेष पृ. 114 पर)

लाखों पापियों को पार करने वाला और साधारण राहियों को वली-अल्लाह बनाने वाला है :

काफ़ कलमे लख करोड़ा तारे, वली कीते सै राही हू।
कलमे नाल बुझाए दोज़ख, जित्थे अग बले अज़गाही हू।

हज़रत जिल्ली (जन्म 1365) अपनी प्रसिद्ध रचना इनसानुल कामिल में हकीकत-उल-मुहम्मदियाँ के विषय में लिखते हैं, उसका एक नाम परमात्मा का शब्द या अमर है और वह सारी सृष्टि से सुन्दर, ऊँचा और महान है। उसकी शान सबसे ऊँची है, कोई अन्य उसके बराबर नहीं है।[1] इससे भी यही संकेत मिलता है कि न केवल शब्द या कलमे का अभ्यास ही मूल करनी है बल्कि पैगम्बर के अस्तित्व का सबसे खास पहलू उसमें कार्यशील प्रभु का शब्द या कलमा है।

निर्गुणवादी सन्त शब्द या कलमे में लीन होकर शब्द या कलमे का

(पृ. 113 का शेष)

"A story is related from our blessed lady Khadija, that she used to relate the following about the Prophet : The Prophet, before he became inspired, used to go into a cave called the cave of Hurrah, which is a famous and well-known cave in the suburbs of Mecca. He used to take with him there some bread (for he remained there for days together absorbed in this meditation). There he used to practise this hearing of sound. The result of this practice was that the form of Gabriel appeared before him, and that was the commencement of the inspiration of that leader of mankind, and all that followed after that event is well-known to every one, and needs no recounting here."

"Hazrat Mianji used to say that Ghau-us-saqlain related, "Our Prophet was in the cave of Hurrah for six years plunged in this meditation of Sultan-ul-azkar, and I myself have been in that cave for twelve years engaged in the practice of this meditation, and many wonderful and mighty things have been revealed to me."

Muhammad Dara Shikoh, Risala-i-Haq-Nama, (The Compass of Truth), English rendering by Rai Bahadur Srisa Chandra Vasu; Published by The Panini Office, Bhuvaneswari Asrama, Allahabad, 1912, pp. 16-19.

1. "One of his names is Word of God (Amru'llah) and he is the most sublime and exalted of all existence. In regard to dignity and rank he is supreme."

John A. Subhan, **Sufism–Its Saints and Shrines** : The Lucknow Publishing House, Lucknow, 1960, p. 59.

रूप हो गए पूर्ण पुरुष के अतिरिक्त किसी दूसरे को सतगुरु नहीं मानते। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि वह परमात्मा स्वयं को सतगुरु में समा कर उसके द्वारा अपने शब्द या कलमे की दौलत जीवों में बाँटता है, 'गुर महि आपु समोइ सबदु वरताइआ' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1279)। हुज़ूर स्वामीजी महाराज फ़रमाते हैं कि सच्चा गुरु वह है जो शब्द की कमाई करता हुआ शब्द रूप हो गया है। जो शब्द की कमाई नहीं करता, वह गुरु कहलाने के योग्य नहीं है :

गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा॥
(सार बचन, बचन 13 : शब्द 1)

शब्द मारगी गुरू न होवे। तो झूठी गुरुवाई लेवे॥
गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥
(वही, बचन 16 : शब्द 1)

परम सन्त तुलसी साहिब संकेत करते हैं कि भारत के अनेक पूर्ण सन्तों ने ही नहीं, अनेक मुसलमान कामिल फ़कीरों ने भी सुल्तान-उल-अज़कार या सुरत को शब्द से जोड़ने का अभ्यास किया और सुरत-शब्द योग का ही प्रचार किया :

1. सुरत मिले शबद में जाई। ये सब संतन पंथ बताई।
2. मनसूर सरमद बू अली और शमस मौलाना हुए।
पहुँचे सभी इस राह से, जिसने कि दिल पुखता किया।

कबीर साहिब फ़रमाते हैं कि संसार के सारे ग्रन्थों का सार आत्मा को शब्द से जोड़ना (सुरत को शब्द में लीन करना) है क्योंकि यही परमानन्द परमेश्वर की प्राप्ति का वास्तविक साधन है :

1. कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत सबद पहिचान॥
2. नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत सबद एकै भया, जलही ह्वगा मीन॥
(कबीर साखी-संग्रह, भाग 1, पृ. 103, 92)

गुरु नानक साहिब कहते हैं कि मन को वश में करने और परमात्मा से मिल कर परम आनन्द प्राप्त करने का एकमात्र साधन सुरत को शब्द में लीन करना है, अन्य किसी साधन के विषय में सोचने की आवश्यकता नहीं:

राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु।
सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 62)

पलटू साहिब फ़रमाते हैं :

सुरत सब्द के मिलन में मुझ को भया अनंद।
मुझ को भया अनंद मिला पानी में पानी।
दोऊ से भा सूत नहीं मिलि कै अलगानी।
पलटू सतगुरु साहिब काटौ मेरी बंद।
सुरत सब्द के मिलन में मुझ को भया अनंद।
(पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुण्डली 89)

साईं बुल्लेशाह फ़रमाते हैं कि जब मेरे अन्दर शब्द की गुप्त मुरली का राग प्रकट हो गया तो मन में संसार की नश्वरता और प्रियतम के वियोग की भावना गहरी हो गई। अनहद शब्द के बाण से मन रूपी चंचल मृग वश में आ गया और मन मस्ती में आकर भगवत् प्रेम का पाठ पढ़ने लगा :

मुरली बाज उठी अणघातां[1], सुन के भुल गईआं सब बातां।
लग गए अनहद बाण न्यारे, साईं मुख वेखन दे वणजारे।
हुन मैं चंचल मिरग फहाया, ओसे मैनू बन्ह बहाया[2]।
सिरफ़ दुगाना इश्क पढ़ाया, रहि गईआं त्रै चार रकातां।

जैसे-जैसे कलाल (साकी अर्थात मुर्शिद) अनहद शब्द के जाम भर कर पिलाता है, आत्मा इसकी मस्ती में खो जाती है। उस समय यह प्रियतम का पल भर का वियोग भी सहन नहीं कर सकती :

अनहद बाजा बजे सुहाना, मुतरब सुघड़ां तान तराना।
नमाज़ रोज़ा भुल गया दुगाना, मद प्याले देन कलाल।
घड़िआली दिउ निकाल नी, अज्ज पी घर आया लाल।

---

1. अपने आप; अचानक 2. चंचल मन वश में कर लिया।

ऐसे दरवेश के लिये हिन्दुओं के नाद और मुसलमानों की बांग के झगड़े समाप्त हो जाते हैं क्योंकि उसे पता लग जाता है कि नाद और बांग अनहद शब्द रूपी एक ही असलियत के दो नाम हैं :

जब जोगी तुम वसल करोगे, बांग कहो भावें नाद वजावे।
भक्ति भगत नतारो नाहीं, भगत सोई जिहड़ा मन भावे।

आप इस कलमे या नाद को ही 'रसूल की बांग' कहते हैं, जिसको सुन कर फूल खिल उठता है अर्थात सदियों से उलटा पड़ा हृदय-कमल सीधा हो जाता है। फिर मुर्शिद से अन्दर ही मिलाप हो जाता है जो नबी से मिलाप कराता है।[1] वहाँ पहुँच कर भक्त की आत्मा पल भर के लिये उस स्वरूप का वियोग सहन नहीं करती और सदा के लिये सतगुरु में लीन हो जाती है :

1. मिली है बांग रसूल दी फुल खिड़िया मेरा।
   सद्दा होया मैं हाज़री हां हाज़र तेरा।
   हर पल तेरी हाज़री इहो सजदा मेरा।
2. जिहड़ा तन विच लग्गा दूआ रे, इह कौन कहे मैं मूआ रे।
   तन सभ अनायत हूआ रे, फिर बुल्ला नाम धराया है।

साईं जी ने 'तन सभ अनायत हूआ रे', 'अंदर साडे मुरशद वसदा', 'रांझा रांझा करदी नी मैं आपे रांझा होई', 'मैंनूं कोई न मजनूं आखे, मैं हुन लैली हुंदा जां' आदि के जो संकेत दिये हैं, इनसे पता लगता है कि मुर्शिद के अस्तित्व का आधार कलमा, नाम या शब्द है और शिष्य के अस्तित्व का आधार सुरत या आत्मा है और दोनों का आधार परमात्मा या उसका शब्द है। सुरत अन्दर शब्द में लीन होकर पहले सतगुरु का और फिर परमात्मा का स्वरूप हो जाती है।

---

1. दारा शिकोह ने भी रिसाला-ए-हक-नुमा के पृष्ठ सात पर संकेत किया है कि जब हम ठीक ढंग से भक्ति में लगे रहते हैं तो रूहानी तरक्की करते हुए ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं जिसमें अन्दर सतगुरु का स्वरूप प्रकट हो जाता है, जो साधक की हज़रत मुहम्मद, उसके खलीफ़ों, सन्तों, फ़कीरों और प्रभु के मित्रों से मुलाकात कराता है।

रूहानी करनी का सार : कलमा या शब्द

शिष्य को जो कुछ मिलता है, इस कलमे, शब्द या नाम की कमाई से मिलता है, इसलिये साईं जी ने उसको बार-बार परलोक का धन या चलते समय काम करने वाला तोसा इकट्ठा करने की ताकीद की है :

1. इक रब दा नां खज़ाना ए, संग चोरां यारां दाना ए।
   ओह रहिमत दा खसमाना ए, संग खौफ़ रफ़ीक बनाया ए।
2. बुल्ला एथे रहिन न मिलदा, रोंदे पिटदे चल्ले।
   इक नाम ओसे दा खरची है, होर बचिया नहीं कुझ पल्ले।
   मैं सुपना सभ जग भी सुपना, होर सुपना लग्गे बिआना[1]।
   खाकी खाक सिउं रल जाना।
3. क्या सरधन[2] क्या निरधन[3] पौड़े,
   अपने अपने देस को दौड़े।
   लध्धा नाम लै लिउ सभारे, अब तो जाग मुसाफर प्यारे।
4. बुल्ला बात अनोखी एहा, नच्चण लग्गी तां घूंघट केहा।
   तुसीं परदा अख्खीं थीं चाउ[4], तुसीं रल मिल नाम धिआउ।

आप समझाते हैं कि हर प्रकार की तृष्णा को शान्त करने वाला साधन परमात्मा का नाम है। हर हालत में प्रभु का नाम जपना चाहिये क्योंकि यही मनुष्य-जन्म को सफल बनाने वाला, भवसागर से पार करने वाला और परलोक को सँवारने वाला एकमात्र साधन है :

1. भुख मरदी नाम अल्ला दे, एहो बात चंगेरी ए।
   दोवें थोक पथ्थर थीं भारी, औखी जिही इह फेरी ए।
   जे सड़सें तूं इस जग अंदर, अग्गे सरदी पावेंगा।
2. नाम साईं दे कंढे लवाए, खिड़ पई गुलज़ार।
   वाह वाह छिंज पई दरबार।

---

1. बिआना=दूसरा, नाम को छोड़ कर शेष सबकुछ स्वप्न या झूठा है। गुरु अर्जुन साहिब ने भी फ़रमाया है : 'खोजत खोजत खोजिआ नामै बिनु कूरु' (आदि ग्रन्थ, पृ. 811) या 'खोजत खोजत खोजि बीचारिओ राम नामु ततु सारा' (आदि ग्रन्थ, पृ. 611) 2. सरधन=धनवान; अमीर 3. निरधन=ग़रीब 4. आँखों से अज्ञान का परदा उठा दो।

इस चर्चा की पृष्ठभूमि में पूर्व इतिहास में शब्द, कलमा या कलमे के विषय में पृथक-पृथक धर्मों में हुए महान सन्तों, फ़कीरों द्वारा प्रकट किये गए विचार विशेष ध्यान की माँग करते हैं।

हिन्दू धर्म और शब्द या कलमा

ऋषियों ने इसको शब्द, नाद, वाक, आकाशवाणी, दिव्य ध्वनि, राम धुन आदि कहा है और इसको सृष्टि का कर्ता माना है।[1] सामवेद में आता है कि शब्द ही परमात्मा है और शब्द ही कर्ता है : 'शब्द ब्रह्म निःशब्द ब्रह्म प्रणवों ब्रह्म।' उपनिषद् शब्द, अनहद शब्द, वाक, उद्गीत और आकाशवाणी की महिमा से भरे पड़े हैं।

प्राचीन यूनानी धर्म और कलमा

प्राचीन यूनानी महात्माओं ने शब्द या कलमे को 'लोगास' कह कर पुकारा है। लोगास की महिमा में कहा गया है, लोगास एक है, सर्वव्यापक और एक-रस है। प्रत्येक व्यक्ति आपे की पहचान द्वारा अन्तर में इससे जुड़ सकता है। यह ब्रह्माण्ड को चलाने वाला नियम या विधान है; यह परमात्मा का कानून, परमात्मा की इच्छा, परमात्मा की रज़ा है, यह स्वयं परमात्मा है। यह अनादि है, सृष्टि का मूल कारण है पर लोग इसका मर्म नहीं जानते। यह परमात्मा और जीव के बीच मध्यस्थ है। यह सबसे निर्मल और सच्चा मार्ग है। यह सत्य है, जीवन है और सबसे ऊँचे और पवित्र

---

1. "There is a hymn which celebrates Vac, (Speech) as the supporter of the world, as the companion of the gods, and the foundation of religious activity and all its advantages. She appears as impelling the Father in the beginning of the things and again as born in the waters. This idea which, of course, has long ago been compared by Weber with the Greek Logos is ingenious : The will of the creator is thus considered as expressed in Speech."

Religion and Philosophy of the Vedas, Harvard and Oriental Series, Vol. 32, pp. 435-36.

(b) "Prajapati certainly was alone (before) this (Universe). The Word (speech) certainly was His only possession : The word was the second. He desired : Let me emit it this very Word, it will pervades this whole (space). He emitted the Word and it pervaded this whole (space). It rose upward and spread as a continuous (well-joined) stream of water." (Tandyabra 20 : 14 : 2) Quoted by Bhagwat Datta in **Story of the Creation**, p. 116.

सदाचार की प्रेरणा देने वाला है। यह परमात्मा के सामने जीवों की ओर से विनती करने वाला मुख्य पुरोहित और उनको परमात्मा से मिलाने वाला मध्यस्थ है।[1]

---

1. **Logos :** It is considered equal to Verbum but whereas in Greek Philosophy the word means the Divine Reason, the authors of the Septuagint use it to translate the Hebrew **Memra** and its poetic synonyms which mean primarily the spoken word of the Deity.

Heraclitus of Ephesus (535-475 B. C.) :

(i) There is one Logos, the same throughout the world which is itself homogenous and one.

(ii) This wisdom we may win by searching within ourselves : 'It is open to all men to know themselves and be wise.

(iii) The divine soul is 'Nature', the cosmic process ; it is God ; it is the life principle ; it is divine law ; or will of God.

(iv) It prevails as much as it will and is sufficient for all things.

(v) Logos is the immanent reason of the world ; it existeth from all time yet men are unaware of it, both before they listen it and when they hear it.

(vi) The Logos..............keeps the stars in their courses. It is the hidden harmony which underlines the discords and antagonisms of existence.

In Anaxagoras :

(a) The Logos is intermediater between God and the world, being the regulating principle of the universe, the divine intelligence.

(b) The seminal Logos of the stoics, when spoken of as a single power, is God Himself, as the organic principle of the cosmic process which He directs to a rational and moral end.

(c) The stoics distinguished between the potential unmanifested Reason and the thought of God expressed in action. This distinction led to a new emphasis being laid on other meaning of Logos, as Word or Speech, and in this way stoicism made it easier for Jewish philosophy to identify, the Greek Logos, with the half personified 'Word of Jahweh.'

(d) The Logos Christ may be explained stoically as the indwelling revealer of the Father, with whom He is one, as the vital principle of the universe, as the way, the truth and the life, as the inspirer of the highest morality, and last and not the least, as the living bond of union between the various members of his body. The spirit goes through all things, formless itself, but the creator of forms. The Logos as World-Idea is also simple. It assumes manifold forms in its plastic self-unfolding. It is identical with Fate.

(शेष पृ. 121 पर)

यहूदी मत और कलमा

हीब्रू भाषा में इस शक्ति को 'मैमरा' कहा गया है जिसको यूनानियों के लोगास, मुसलमानों के अमर, कलमे, कलाम या कुन का समानार्थक माना गया है। इसका सम्बन्ध आरमीनी भाषा के शब्द 'एमर' (Amer) से जोड़ा जाता है, जिसका अर्थ शब्द या वाणी है। इसका प्रयोग यूनानी के

(पृ. 120 का शेष)

In Jewish Alexandrian Theology ;

The earlier books of the OT connect the operations of the Memra with three ideas—creation, providence and salvation. God spoke the Word and the worlds were made.

THEN at once His spirit or breath, gives life to what the Word creates, and renews the face of the earth. The protecting care of God for the chosen people is attributed by the Jewish commentaries to the Memra. Besides this the word of Lord inspires prophecy and imparts the Law.

Philo : The Logos is declared to be the first born son of God, the prototypal Man in whose image all men are created. The Logos dwells with God as His vicegerent. He is the oldest son of God and wisdom is His mother. In other places, He is identified with wisdom. Again He is the Idea of Ideas, the whole mind of God going out of itself in creation. He represents the world before God as High-priest Intercessor, Paraclete. Occasionally Philo seems to suggest that the Logos is the God of us, the imperfect, as if from the highest point of view, the Logos were only an appearance of the Absolute.

From all eternity before time began, the Logos was; He is Supra-Temporal, not only the Spirit of the world, He did not become personal either with the creation or at the Incarnation . The Logos is turned towards God. The proposition indicates the closet union, with a sort of transcandental subordination.

The Logos is the light of men as life ; that is to say, revelation is vital and dynamic . God reveals Himself as vital law to be obeyed and lived. The cosmic process, including, of course, the spiritual history of mankind and of the individual is the sole field of revelation.... "Salvation is not a physical process but a moral growth through union with God ; knowledge is not merely speculation but a growing sympathy and insight into the character of God and His laws. The union of Logos with God is so intimate that we cannot hold (with the Gnostics and some Platonists) that the Father is passive in the work of the redemption." Extracted from : **Encyclopaedia of Religion & Ethics,** Vol. VIII, pp. 135-137.

(b) See also : **Dictionary of the Bible** (Ed. James Hastings) Entry : Logos, pp. 549-551.

लोगास से भी पुराना है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि यहूदियों ने यह संकल्प यूनानियों से लिया। इसको दैवी वाणी, दैवी शब्द, दैवी इच्छा, दैवी इच्छा का प्रकट रूप, परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति, सृष्टि की रचना का नियम और कर्ता पुरुष परमेश्वर भी कहा गया है। ईसाइयों से भी पहले यहूदियों ने शब्द को अनादि, जगत का कर्ता और परमात्मा की आज्ञा कह कर पुकारा है। यह संकल्प यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों को रूहानी दृष्टि से एक लड़ी में पिरोने वाला है।[1]

ईसाई मत और कलमा

बाइबिल में इसको 'वर्ड', 'लोगास', 'स्पिरिट', 'होली घोस्ट', 'होली स्पिरिट' आदि कई नामों से पुकारा गया है। इन सब शब्दों के अर्थ

---

1. **Memra :** God's fiat by which creation came into being and continues to exist, is spoken of emanating from Him to execute His will. By the **Word of Jahweh** 'were the heavens made' (PS 33). In I. S. 55 the Word proceeding from God's mouth assumes form and accomplishes His will as His plenipotentiary. In the aprocypha also we meet with a few instances where the Word stands for God :

It was the Word that descended on the offspring of the fallen angels to pierce them with the sword (Jub 5 : 17) ; it entered Abraham's heart (12 : 17) ; it slew the first born in Egypt; 'Thine all powerful Word leaped from heaven out of the royal throne' (wis 18 : 17).

The Arm. Memra, emph. state memra from emar, to speak......... signifies like Logos 'a word', (in certain cases) it also stands for God.

(1) By my Memra I have founded the earth and by my strength I have hung up the heavens (Is. 48 : 13).

(2) The Israelites said, 'Behold, Jahweh our God has shown us His Glory and His greatness and we have heard the voice of his Memra (Dr. 5 : 24).

(3) The Memra gave the law (Ex. 20). These are the statutes which Jahweh made between his Memra and the children of Israel (Lt. 26 : 46).

(4) Its use in all the Targums rather warrants the assumption that its adoption is older than the Alexandrian Logos.........

(5) The Memra, therefore, is the deity revealed in its activity...

(6) The term is based on Gn. I, emphasising the fact that the World came into being by divine command.

Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. VIII, pp. 542-43.

परमेश्वर की सृष्टि की रचना करने वाली और जीव को इस रचना से मुक्त करने वाली शक्ति है।

बाइबिल में कहा गया है : प्रारम्भ में शब्द था, शब्द प्रभु के साथ था और शब्द ही प्रभु था। यही शब्द प्रारम्भ में प्रभु के साथ था। सब वस्तुएँ इसी ने बनाईं और कोई वस्तु इसके बिना बनाये नहीं बनी।[1] इसको पवित्र आत्मा और सुखदाता भी कहा गया है। हज़रत ईसा कहते हैं, प्रभु एक और सुखदाता भेजेगा जो सदा तुम्हारे अंग-संग रहेगा।[2] यह सुखदाता पवित्र शब्द है।[3] ईसा इसी का देहधारी रूप था।[4] इस पवित्र आत्मा या शब्द की भक्ति ही परमात्मा की सच्ची भक्ति है। कोई अन्य भक्ति परमात्मा को नहीं भाती।[5] शब्द को सुनने से ही परमात्मा में सच्चा भरोसा पैदा होता है।[6] जो लोग शब्द की शक्तिशाली शरण में आ जाते हैं, वे विनाश से बच जाते हैं।[7] परन्तु जो लोग शब्द से मुँह मोड़ लेते हैं, जो शब्द की निन्दा करते हैं, उनका यह गुनाह कभी क्षमा नहीं होता।[8]

पारसी मत और कलमा

पारसी मत में इसको 'सरोश' कहा गया है। 'श्' धातु से निकला होने के कारण इसकी संस्कृत के 'शब्द' और 'श्रुति' से समानता दिखाई

---

1. In the beginning was the Word, and the Word was with God, and the Word was God. The same was in the beginning with God. All things were made by him, and without him was not anything made that was made. In him was life, and the life was the light of men. (John 1 : 1-4)

2. And I will pray the Father, and He shall give you another comforter that he may abide with you forever. (John 14 : 16)

3. But the comforter which is the Holy Ghost. (John 14 : 26)

4. And the word was made flesh, and dwelt among us. (John 1 : 14)

5. Worship of Spirit is the Worship of Father, no other worship pleases the Father. (John 4 : 24)

6. So then faith cometh by hearing and hearing by the Word of God. (Romans 10 : 17)

7. The Name of the Lord is a strong tower; the righteous runneth into it and is safe. (Proverbs XVIII-10)

8. Blasphemy against the Holy Ghost shall not be forgiven unto men. (Matthew 12 : 31–32)

गई है। दूसरी ओर इसको 'वर्ड' या 'लोगास' का समानार्थक माना गया है।[1] शब्द, वर्ड, लोगास, कलाम, अमर, हुक्म, कुन की तरह सरोश सृष्टि के आदि में था। यही महान दैवी और बुद्धिमान शब्द है जिससे सृष्टि की रचना हुई।[2]

सरोश जो धरती, अग्नि, वनस्पति और प्रभु के पुत्र मनुष्य से भी पहले था, दैवी हुक्म या परमात्मा की रज़ा का प्रत्यक्ष रूप है। एक ओर यह रचना करता है और दूसरी ओर भाणे का पवित्र पाठ सिखाता है जो रूहानी उन्नति का सबसे सही मार्ग है।[3] यह आदिकाल से अहुरमज़द (परमात्मा) के वायसराय के तौर से कार्यशील है। इसकी महानता इस बात से प्रकट है कि हज़रत ज़रतुश्त प्रार्थना करते हैं : हे प्रभु, सरोश उसके पास जाये जिसको तू प्यार करता है।[4] यहाँ इसकी ईसाई मत के होली घोस्ट, होली स्पिरिट और कमफ़र्टर (सुखदाता) आदि से समानता देखने योग्य है।[5] यह सरोश या शब्द जो आदि से चला आ रहा है, नेकी, धर्म और रूहानी प्राप्ति का संयुक्त स्रोत है।[6]

---

1. (a) 'From the same root as Skt, 'Srutis', Duncan Greenless, **Gospel of Zarathushtra,** p. 54.

(b) Julian p. Johnson, **The path of The Masters,** Radhasoami Satsang Beas, p. 51.

2. Duncan Greenless, **Gospel of Zarathushtra.** p. 52.
(Yasna 57 : 1-2)

3-4. Ibid.

5. Julian p. Johnson, **The Path of The Masters,** Radhasoami Satsang Beas, p. 51.

6. (a) I the Lord God (4.19 : 3) pronounced this saying...before The Creation of Heaven (4.19 : 8) the sacred Word of Ahunavairya...the Word which was before the earth, before living beings, before trees, before fire, the son of Lord God before The Holy Man, before the demons......before all bodily life, even before God's all good creation, which holds the seed of righteousness.'' (See also Yasna 19 : 9)

(b) The Ahunvairya is the beginning of Religion and from it is the foundation of Nasks (D. K. 9 : 2 : 2) This Word of Mine chanted ceaselessly and without a break is equal to a hundred other chants.''
(19 : 5 : 21 : 4; 71 : 14-15)

चीन का ताउ मत और कलमा

चीन के ताउ मत[1] में ताउ की महानता की महिमा कही गई है।[2] ताउ अनादि है, इसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता।[3] ताउ को परमात्मा, मार्ग, रास्ता, पथ, शब्द, विवेक, विधान, हुक्म, सर्व-ज्ञाता, सृष्टि का अज्ञात तत्व, मन और माया को गति देने वाला नियम आदि कहा गया है।[4] यह ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति और संचालन का आधार है।[5]

ताउ कोई वस्तु या पदार्थ नहीं है परन्तु सब वस्तुएँ एवं पदार्थ इसमें समाये हुए हैं, यह अरूप है पर सब रूपों को लखने वाला है।[6] जीव मातलोक के नियमों पर चलता है, मातलोक देव-लोक के नियमों पर, देव-लोक ताउ के नियमों पर, ताउ सहज के नियमों पर और ताउ अपना नियम स्वयं है।[7] ताउ सहज, सत्, अनादि एवं अनामी है, परन्तु जब इसने प्रकृति, वस्तुओं और इनके धर्मों को उत्पन्न किया तो यह अनामी से नामी हो गया।[8] यह केवल सृष्टि का मूल कारण ही नहीं, सब पदार्थों के लिये नियम और आदर्श भी है।[9] यह अच्छाई और बुराई से परे सहज आनन्द की उस अवस्था का सूचक है जिसकी प्राप्ति ताउवादी चिन्तन का सार है।[10] ताउ ही सच्चे सदाचार, सच्चे धर्म, सच्ची रूहानियत और सच्ची करनी का एकमात्र सच्चा नियम है। सन्त-महात्मा अपने लिये ताउ का भण्डार जोड़ता है। जितना अधिक वह ताउ को बांटता है, उतना अधिक उसका भण्डार भरता है।[11]

जब महान ताउ की साधना बन्द हो गई तो नेकी और सदाचार पर ज़ोर हो गया, फिर बुद्धि और चतुराई का राज हो गया।[12] परन्तु कोई चीज़ ताउ का स्थान नहीं ले सकती। अपने स्रोत की ओर मुड़ना ही शान्त होना है और यही लक्ष्य प्राप्ति की सूचना है। लक्ष्य सिद्धि की सूचना का यह अटल नियम ताउ है, जो भाणे या रज़ा में रहने की अपार शक्ति प्रदान करता है।[13]

1-3. Soothhill W. F. **Three Religions of China,** London : Oxford University Press, 1929 (3rd Ed.).

4-9 Ibid. p. 16.

10. Ibid. p. 48.

11. James Legge, **The Texts of Taoism,** Tao Teh King, Part 81 : 2.

12. Ibid. 81 : 1.

13. Ibid. 16 : 1.

इस्लाम और सूफ़ी मत में कलमा

कुरान शरीफ़ में आता है कि अल्ला का शब्द या कलमा सर्वशक्तिमान है (9 : 39)। जो वह कहता है कि हो जा, वह हो जाता है (36 : 82)। अल्ला का कौल (वाक्य, शब्द, अमर) सत् (हक) है (6 :73)। और अपने जिस सेवक पर वह प्रसन्न होता है अपने हुक्म (अमर) द्वारा उसके पास अपना कलमा, कौल या शब्द भेजता है (40 : 15)। अल्ला का नाम मुबारक है, पवित्र है, यह मान-बड़ाई का स्वामी है (55 : 78)। इसलिये उस अल्ला ताला (परमात्मा) के नाम की बड़ाई करो (56 : 74)।

सूफ़ी फ़कीरों ने कलमे, कलाम या सौत से संसार की रचना मानी है। कुरान मजीद में कुन या अमर[1] से संसार की रचना का होना माना गया है

---

1. **Amr.** "According to the longer version of the **Theology,** the **amr** is one of the designations of the Word (kalima) of God, also called His will which is an intermediary between the creator and the first intelligence and the immediate cause of the latter. In a certain sense it can also be called 'nothing' (**laysa**), as it transcends movement and rest. Intellect which is the first created thing, is so intimately united with word that it is identical with it.

This theory recurs in an identical or almost identical form among the Isma-iliyya, for instance in the Khwan-i-Khwan, attributed to Nasir-i-Khusraw...Another Ismaili author, Hamir-al-al Kirmani seems to have regarded the **amr** as an influx coming from God and united to the intellect.... . In common with other Ismaili theologians, he considers it identical with divine will. In the Rawdat al-Taslim, or Tasawwurat, (ed. W. Invanop$_1$ 54 ; Cf, 29) an Ismaili work, attributed to Nasir al-Din al Tusi, the doctrine of divine **amr** is connected with the notion that at the psychic level, the ascension marked by the stages of the sense-perception, estimation (**Wahm**), soul (nafs) and intellect, ends in **amr**. There is a certain similarity between these Ismaili doctrines and the concept of **amr** found in the theological dialogue commonly called Kuzari, by the Jewish thinker Judah Halewi. On the one hand he seems to postulate or atleast to consider as admissable the identity of the **amr** with the will (ed, Hireshfeld 76); on the other he calls divine **amr** the power which is given to the prophet as an inherent faculty and which is superior to the intellect (eg. 42 ff).

(शेष पृ. 127 पर)

जो कलमे या शब्द के ही समानार्थक शब्द हैं। सूफ़ी दरवेशों ने इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। हज़रत शम्स तबरेज़ कहते हैं कि सारा जगत सौत (शब्द, कलमे) से अस्तित्व में आया और सारा नूर उससे ही फैला है।[1]

हज़रत अब्दुल रज़ाक काशी कहते हैं, इस्मे आज़म (बड़ा नाम) सब नामों का स्रोत या कर्ता है और वही सब वस्तुओं की आन्तरिक असलियत है। वह समुद्र है और संसार उसकी मौज या लहर है पर इस बात की समझ केवल उसको आ सकती है जो हमारे परिवार में से हो अर्थात कलमे या शब्द की आराधना करने वाले साधक या फ़कीर ही इस भेद को समझ सकते हैं।[2]

हज़रत शाह निआज़ फ़रमाते हैं, सारी सृष्टि ध्वनि या आवाज़ से भरपूर है। इस ध्वनि को सुनने के लिये आन्तरिक कान खोलो। अन्तर में वह निरन्तर धुन सुनाई देगी, जिसको पाकर तुम आदि, अन्त और मौत की सीमा पार कर जाओगे।[3]

यह कलाम असीम है जिसके कारण इसका नाम अनहद पड़ गया।[4]

(पृ. 126 का शेष)

On the basis of Kuran, vii : 53 : **amr** is sometimes opposed to **Khalq** the first term then designates the creation of the spiritual substances, or these substances, themselves, while the second refers to the creation of the material substances or the material substances themselves... Another them often treated by the Sufis, is the contradiction assumed by some as possible, between the **amr**, God's command to perform an action, and the divine will which prevents it.''

Extracted from : **Encyclopaedia of Islam,** Vol. I. (New Edition) pp. 449-450.

1. आलम अज़ सौत ज़हूर ग्रिफ़त, अज़ हजूरश बसाते नूर ग्रिफ़त।
2. इस्मे आज़म जामाए इसमा बुवद, सूरते ऊ माअनीए अशया बुवद।
   इस्म दरीआओ तईअन मौजे ऊ, ई कसे दानद कि ऊ अज़ मा बुवद।
3. हमा आलम पुर असत अज़ आवाज़, नेक दरहाए गोशे ख़ुद कुन बाज़।
   बिशनवी यक कलामे-ला-मकतूअ, अज़ हदूसो फ़ना बवद मरफ़ूअ।
4. अवलो आख़र चूं बेहद शुद, ज़ आं सबब नाम ऊ अनहद शुद।

मौलाना रूम ने इसको 'नाम', 'इस्मे-आज़म' और 'अल्ला का ज़ाती नाम' कहा है। आप कहते हैं कि सच्चा नाम इतना मीठा है कि इससे मेरी सारी हस्ती मीठी हो जाती है। यह इतना स्वादिष्ट है कि इसका कण-कण जीवन को मस्ती देने वाला है।[1]

यह नाम या शब्द ही बड़ा नाम है और यही बड़ा परमात्मा है। यह जानों की जान, अर्थात मानवीय अस्तित्व का आधार है। यह मुर्दा हड्डी को जीवित करने वाला है अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन में पड़ी आत्मा को अमर जीवन देने वाला है। मैं इस नाम से मस्त हूँ और मेरी रग-रग से इसका नशा टपक रहा है।[2]

यह उस प्रभु का निजी नाम है। यह उस पावन प्रभु का रूप है और यह इस्मे-आज़म ही उस प्रभु की निकटता का साधन है।[3]

हज़रत सुलतान बाहू ने जिह्वा से बोले जाने वाले कलमे को सिफ़ाती या 'सिफ़त सनाई कलमा'[4] कहा है और आन्तरिक सच्चे कलमे को 'ज़ाती इस्म', 'दिल का कलमा', 'इस्मे आज़म', 'अल्ला का इस्म'[5] आदि नामों से पुकारा है। वह ज़बानी पढ़ने वाला नहीं अपने आप दिल में हो रहा कलमा है जो सच्चे आशिक मुर्शिद की हिदायत के अनुसार अन्दर पढ़ते हैं :

1. काने कप के कलम बनावन, लिख न सक्कण कलमा हू।
2. ज़े ज़बानी कलमा हर कोई आखे, दिल दा पढ़दा कोई हू।
   जिथ्थे कलमा दिल दा पढ़िए, ओथे जीभे मिले न ढोई हू।

---

1. अल्ला अल्ला ईं चिह शीरींस्त नाम, शीरो शक्कर मी शवद जानम तमाम।
   अल्ला-अल्ला ईं चिह नाम-ए खुश मज़ाक, हरफ़ हरफ़श मीदहद जां रा रबाक।
2. इस्मे-आज़म हसत अल्ला-अल-अज़ीम, जाने-जां व मुहईए अज़मे रमीम।
3. अल्ला अल्ला इसमे-ज़ाते पाक दोस्त, इस्मे आज़म अज़ बराए कुरब ओस्त।
4. जीम जिन्हां अलफ़ जात मुतालिआ कीता बे दा बाब न पढ़दे हू।
   छोड़ सिफ़ाती लध्धो सु जाती, ओह आमी नाल ना रलदे हू।
5. सुआद सिफ़त सनाई मूल न पढ़दे जिहड़े पहुते जाती हू।
   इलमों अमल ओन्हां विच होवे, जिहड़े असली ते अस्थाती हू।

दिल दा कलमा आशिक पढ़दे, की जानन यार गलोई हू।
मैं कलमा पीर पढ़ाइआ बाहू, सदा सुहागन होई हू।

यही दिल को साफ़ करने वाला साबुन है और इसका सुमिरन ही परमात्मा का सच्चा प्रेम है :

1. कलमे दा तूं ज़िकर कमावें, कलमे दे नाल नाहवें हू।
2. आशिक राज़ माही दे कोलों, कदे न थींदे वांदे हू।
नींद हराम तिन्हां ते होई, जिहड़े ज़ाती इसम कमांदे हू।
3. ओह करदे वुज़ू इसम आज़म दा,
जिहड़े दरिआ वाहदत विच न्हाते हू।
4. आशिक पढ़न नमाज़ परम दी, जैं विच हरफ़ न कोई हू।
जीभ ते होठ ना हिल्लन बाहू, ख़ास नमाजी सोई हू।

यह कलमा सारी सृष्टि को पैदा करने वाला है और संसार के सब धर्म-ग्रन्थ इसमें से निकले हैं :

1. कलमे दी कल तदां पैसी, जदां गल कलमे वंज खोल्ही हू।
चौदां तबक कलमे दे बाहू, की जाणे खलकत भोली हू।
2. चौदां तबक कलमे दे अंदर, कुरान किताबां इलमां हू।

लोक और परलोक की कोई दौलत कलमे का मुकाबला नहीं कर सकती :

1. कलमे जेही कोई निहमत न बाहू, अंदर दोहीं जहानी हू।
2. कलमा मेरे लाल जवाहर, कलमा हट्ट पसारी हू।
एथे ओथे दोहीं जहानी, बाहू कलमा दौलत सारी हू।

कलमा आत्मा की जन्म-जन्मान्तर की मलिनता को काट कर इसको निर्मल करने वाला और नरकों की अग्नि को शान्त करने वाला है :

1. कलमे नाल बुझाए दोज़ख, जिथ्थे अग्ग बले अजगाही हू।
2. कलमे नाल बहिश्तीं जाना, कलमा करे सफ़ाई हू।
3. होर दवा न दिल दी काई, कलमा दिल दी कारी हू।
कलमा दूर जंगाल करेंदा, कलमे मैल उतारी हू।
4. अल्ला तैनूं पाक करेसी बाहू, जो ज़ाती इस्म कमावें हू।

यह कलमा वह चम्पा का पौधा है जो खिल कर तन और मन को दैविक प्रेम या रूहानियत की सुगन्धि से भर देता है :

अलफ अल्ला चंबे दी बूटी, मुर्शिद मन विच लाई हू।
नफ़ी असबात दा पानी मिलिआ, सु हर रगे हर जाई हू।
अंदर बूटी मुशक मचाइआ, जां फुल्लन पर आई हू।
जीवे मुर्शिद कामल बाहू, जिस इह बूटी लाई हू।

कलमा मरने से पहले मरने की युक्ति सिखाता है, कलमा द्वैत के कुफ्र को तोड़ कर अद्वैत के सच्चे ईमान में लाता है। कलमे ने करोड़ों पापी तार दिये और कलमे ने साधारण यात्रियों को वली-पैगम्बर और सन्त-महात्मा बना दिया :

1. मीम मूतू वाली मौत न मिली, जैं विच इश्क हयाती हू।
   मौत वसाल थीवसी इको, जद इस्म पढ़िओ सी जाती हू।
2. कलमे दी कल तदां पैसी, जद कलमे दिल नूं फड़िआ हू।
   कुफ़र इसलाम दा पता लग्गा, जद भंन जिगर विच वड़िया हू।
3. कलमे लख्ख करोड़ां तारे, वली कीते सै राही हू।

इस कलमे की दौलत परमात्मा ने हरएक मनुष्य के अन्दर छिपा कर रखी हुई है। यह दौलत पूर्ण सतगुरु की बख़्शिश से मिलती है और यह आत्मा को कलमे से जोड़ कर सदा के लिये सुहागिन बना देती है :

1. कलमे दी कल तदां पैसी जां मुर्शिद कलमा दस्सिआ हू।
   सारी उमर विच कुफ़र दे जाली बिन मुर्शिद दे दस्सियां हू।
2. काने कप्प के कलम बनावण, लिख न सकण कलमा हू।
   इह कलमां सानूं पीर पढ़ाइआ, ज़रा न हुंदा लंमा हू।
3. मैं कलमा पीर पढ़ाइआ बाहू सदा सुहागन होई हू।

जो मनुष्य सैंकड़ों वर्ष मन-मर्जी की भक्ति करता है परन्तु आत्मा को अन्तर में सच्चे सतगुरु के बताये हुए शब्द में लीन नहीं करता, वह मूर्ति-पूजक है क्योंकि उसका ख़याल संसार और शरीर के नौ द्वारों में कैद है। ऐसा व्यक्ति काफ़िर, मूर्ख और अज्ञानी है। वह कभी सच्चे प्रभु से मिलाप नहीं कर सकता :

कलमे बाझों फ़कर कमावे, सो काफ़र मरे दीवाना हू।
सैआं वरिहआं दी करे इबादत, अल्ला कंनो बेगाना हू।
ग़फ़लत कंनो न खुल्हसण परदे, जाहल है बुतख़ाना हू।
मैं कुरबान तिन्हां दे बाहू, जिन्हां मिलिआ यार यगाना हू।

आत्मा, शब्द और परमात्मा की एक ही जाति है। कलमे की आवाज़ में चुम्बकीय आकर्षण है और इसके प्रकाश में हर प्रकार की गन्दगी का नाश करने की शक्ति है। जो सच्चा साधक पूर्ण सतगुरु की आज्ञानुसार आत्मा को कलमे में लीन कर देता है, उसकी ज़ात (आत्मा) संसार और शरीर में से पलट कर उस ज़ाती (परमात्मा) से मिल जाती है और वह सही अर्थों में बा+हू (हू वाला) अर्थात् कलमे वाला या परमात्मा वाला बन जाता है :

यार यगाना मिलसी तैनूं, जे सिर दी बाज़ी लाएं हू।
इश्क अल्ला विच हो मसताना, हू हू सदा अलाएं हू।
नाल तसव्वर इस्म अल्ला दे, दंम नूं कैद लगाएं हू[1]।
ज़ाती नाल जा ज़ाती रलिआ, तद बाहू नाम सदाएं हू।

सन्तमत और कलमा

निर्गुणवादी सन्तों-महात्माओं के कलाम और उपदेश का आधार ही शब्द की महिमा और शब्द की आराधना है। गुरु साहिबान कहते हैं कि सृष्टि को बनाने और नष्ट करने वाली शक्ति शब्द है जो घट-घट में समाया हुआ है :

1. सबदे धरती सबद आकास।
सबदे सबद भइआ परगास।

---

1. ध्यान देने की आवश्यकता है कि योगी एवं वेदान्तियों की भाँति कुछ सूफ़ी हबसे-दम या प्राणायाम द्वारा आत्मा को शरीर से समेट कर आँखों के पीछे ले जाने का अभ्यास करते थे। प्राण चिदाकाश में से निकलते हैं और चिदाकाश में ही समा जाते हैं, जिसके कारण प्राणायाम या हबसे-दम का अभ्यास करने वाले अभ्यासियों की आत्मा इससे आगे नहीं जा सकती थी। हज़रत सुलतान बाहू समझाते हैं कि हबसे-दम कामिल फ़कीरों का साधन नहीं है। कामिल फ़कीर इस्मे-आजम या कलमे के विरद से आत्मा को शरीर से समेट कर आँखों के पीछे लाते हैं, जिससे प्राण स्वयं अन्दर की ओर पलट जाते हैं।

सगली त्रिसटि सबद के पाछे।
नानक सबद घटे घट आछे। (जन्म-साखी)

2. उतपति परलउ सबदे होवै।
सबदे ही फिरि ओपति होवै। (आदि ग्रन्थ, पृ. 117)

सन्त दादू दयाल जी कहते हैं कि जो कुछ है, शब्द से पैदा हुआ है और जो कुछ है शब्द में समा जाता है। सबकुछ शब्द से एक बार पैदा हुआ है, किसी वस्तु के पहले और पीछे होने का प्रश्न तो तब पैदा हो यदि शब्द सर्वशक्तिमान न हो :

दादू सबदै बंधिया सब रहै, सबदै सबही जाइ।
सबदै ही सब ऊपजै, सबदै सबै समाइ॥
एक सबद सब किछ कीआ, ऐसा समरथ सोइ।
आगै पीछै तउ करै, जो बल हीणा होइ॥

गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं कि गुरु-घर के उपदेश का सार शब्द या नाम की कमाई है, 'नानक के घर केवल नामु' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1136)। गुरु अमरदास जी कहते हैं कि शब्द ही चारों युगों से भवसागर से पार होने का एकमात्र साधन चला आ रहा है, 'एक नामि जुग चारि उधारे सबदे नाम विसाहा हे' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1055)। गुरु साहिब फिर फ़रमाते हैं कि परमात्मा ने सारे संसार के पार उतारे का एकमात्र साधन शब्द या नाम रखा है जिसकी प्राप्ति परमात्मा की दया व मेहर से पूरे सतगुरु के द्वारा होती है :

एकु नामु तारे संसारु। गुरपरसादी नाम पिआरु।
बिनु नामै मुकति किनै न पाई। पूरे गुर ते नामु पलै पाई।
सो बूझै जिसु आपि बुझाए। सतिगुर सेवा नामु दृड़ाए।
जिन इकु जाता से जन परवाणु। नानक नामि रते दरि नीसाणु।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1175)

गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं कि संसार के सब धर्म केवल नाम की प्राप्ति का उपदेश देते हैं, 'सगल मतांत केवल हरि नाम' (आदि ग्रन्थ, पृ. 296)। आप कहते हैं कि सब धर्मों से उत्तम धर्म और कर्मों से निर्मल कर्म नाम से लिव जोड़ना है :

सरब धर्म महि स्रेसट धरमु।
हरि को नामु जपि निरमल करमु।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 266)

यह नाम सब दुःखों का हरने वाला और सब सुखों का दाता है :

सुखमनी सुख अंमृत प्रभ नामु।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 262)

सरब रोग का अउखदु नामु।
कलिआण रूप मंगल गुण गाम।

(वही, पृ. 274)

नाम की कमाई के बिना कोई सांसारिक और आध्यात्मिक कर्म किसी लेखे में नहीं आता :

अवरि काज तेरै कितै न काम।
मिलु साध संगति भजु केवल नाम।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 378)

दरिया साहिब ने भी फ़रमाया है कि तीनों लोकों और सब धर्मों के लिये मुक्ति का एकमात्र साधन नाम है :

मुसलमान हिंदू कहां, षट दरसन रंक राव।
जन दरिया निज नाम बिन, सब पर जम का दाव॥
सुर्ग मिर्त पाताल कह, कह तीन लोक बिस्तार।
जन दरिया निज नाम बिन, सभी काल को चार॥

(दरिआ साहिब (मारवाड़) की बानी, पृ. 6)

इस शक्ति को सन्त नामदेव, कबीर साहिब, गुरु नानक, जगजीवन साहिब, पलटू साहिब, दरिया साहिब, तुलसी साहिब, हुज़ूर स्वामीजी महाराज आदि ने शब्द, नाम, सच्ची वाणी, अनहद शब्द, अनहद वाणी, निर्मल नाद, मूल कलाम, अमर, हुक्म, अकथ-कथा आदि अनेक नामों से पुकारा है। हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी इसको 'अलिखित कानून' और 'अनबोली भाषा' कह कर याद किया करते थे, क्योंकि यह शब्द न मनुष्य द्वारा बनाया गया है और न ही इन्द्रियों का विषय है। यह प्रभु की सृष्टि की रचना है और जीव के कल्याण का अनादि नियम है जो हर प्रकार के परिवर्तन से परे है।

बुल्लेशाह और कलमा

प्रत्यक्ष है कि कामिल फ़कीरों का कलमे, कलाम, अमर, हुक्म, कुन, शब्द या नाम से भाव किसी भाषा के विशेष शब्द या वाक्य से नहीं, उस परमपिता परमात्मा की सृष्टि की रचना करने वाली और सृष्टि में आये जीव को दोबारा अपने साथ मिलाने वाली शक्ति से है। साईं जी का कलाम इस शक्ति के वर्णन से ओत-प्रोत है। आपने इस शक्ति को कलमा, बांग, कुन, आवाज़ कहा है और इसको नाम, अनहद नाद, शब्द, अनहद शब्द, अनहद का बाजा, आरिफ़ का बाजा, अनहद की मुरली, अनहद की बाँसुरी, अनहद की तार, नाहुन अकरब की बाँसुरी, गंज मखफ़ी की मुरली, कुन, फ़यीकुन की आवाज़ आदि बहुत-से नामों से पुकारा है। इन नामों में देशी, विदेशी, इस्लामी और हिन्दू दोनों स्रोतों के शब्दों के प्रयोग से पता लगता है कि आप इनके द्वारा उस सर्वसामान्य शक्ति की ओर संकेत कर रहे हैं जो आत्मा को अन्तर में परमात्मा से मिलाने वाला एकमात्र प्राकृतिक साधन है।

सतगुरु या हादी

सतगुरु की आवश्यकता

बुल्लेशाह दी सुनो हकायत, हादी फाड़ियां लोग हदाइत।
मेरा मुरशद शाह अनायत, ओह लंघाए पार।

परमात्मा भी अन्दर है, आत्मा भी अन्दर है और आत्मा को परमात्मा से जोड़ने वाली रस्सी कलमा, शब्द या नाम भी अन्दर है। परन्तु परमात्मा या कलमे रूपी 'गंजे मख़फ़ी' (गुप्त ख़ज़ाने) का भेद खोलने वाला और इस तक पहुँच कराने वाला साधन पूरा सतगुरु है :

जो कोई उस नूं लखना चाहे, बाझ वसीले लखिया न जाए।
शाह अनायत भेद बताए तां खुल्हे इसरार।

मुर्शिद भवसागर के किनारे खड़ी अबला आत्मा को पार कराने वाला मल्लाह है। वह वियोग के रोग से पीड़ित विरहिणी के रोग का उपचार करने वाला योग्य हकीम है :

1. नदीओं पार मुल्क सजन दा हिरस लहिर ने घेरी।
   सतिगुरू बेड़ी फड़ी खलोते तूं क्यों लाई देरी।
2. झबदे आवीं वे तबीबा नहीं तां मैं मर गइयां।

मुर्शिद का वास्तविक कार्य आन्तरिक कलमे का भेद देना और आत्मा को इसके अभ्यास में सहायता देना है, क्योंकि इस कलमे, शब्द या नाम के बिना पार उतरने का कोई साधन नहीं। साईं बुल्लेशाह मुर्शिद के आगे विनती करते हैं, 'नाम अल्ला पैगाम सुनाईं, मुख देखन नूं न तरसाईं।' आप 'हथ्थी ढिलक पई मेरे चरखे दी मैथों कत्तिआ मूल न जावे' काफ़ी में संकेत करते हैं कि नौ द्वारों में कैद आत्मा को दसवें दरवाज़े में पहुँचने, इसको नफ़स या शैतान के हथकण्डों से बचाने और आन्तरिक रूहानी

सफ़र के उतार-चढ़ाव को पार करने में मुर्शिद बे-हिसाब सहायता करता है। वास्तव में मुर्शिद की दया सौ मन कातने से अधिक है अर्थात सतगुरु की दया व मेहर हर प्रकार की करनी से ऊँचा दर्जा रखती है :

हथ्थी ढिलक पई मेरे चरखे दी, मैथों कत्तिआ मूल न जावे।
हुन दिन चढ़िया कद गुज़रे, मैनूं राते मुंह दिखलावे।
तकले नूं वल पै पै जांदे, कौन लुहार लिआवे।
तकले तों वल लाह लुहारा, मैंडा तंद टुट-टुट जावे।
घड़ी-घड़ी इह झोले खांदा, छल्ली इक न लाहवे।
सै मनां दा कत्त लिआ बुल्लिया, जे शहु मैनूं गल लावे।

प्रसिद्ध सूफ़ी दरवेश शेख शहाबुदीन सुहरावर्दी (जन्म 1145) 'अवारिफ़-उल-मुआरिफ़' में कुरान शरीफ़ की आयतों के उद्धरण से लिखते हैं कि सूफ़ी मत का आधार पुस्तकीय या स्कूली विद्या नहीं, आन्तरिक रूहानी अनुभव है। यह अनुभव वलियों व पैगम्बरों की दौलत है, और केवल उनसे ही प्राप्त हो सकती है।[1]

रिज़वी सूफ़ी मत में मुर्शिद और तालिब, गुरु और शिष्य के सम्बन्धों के विषय में वर्णन करते हुए लिखता है कि शिष्य का मुर्शिद से नाम की दात पाना बहुत कठिन मामला है। पूर्ण सतगुरु हर शिष्य की रूहानी दशा के अनुसार उसको अमली साधना के मार्ग पर डालता था। सुमिरन और ध्यान का काम, सतगुरु की देखरेख में चलता था। शिष्य को अभ्यास के समय सिमटाव या एकाग्रता में आन्तरिक प्रकाश आदि के जो अनुभव होते थे, मुर्शिद शिष्य उनसे जानकार होता था। गुरु को पता होता था कि शिष्य को प्राप्त कौन-सा अनुभव सच्चा है और कौन-सा छलावा मात्र है। शिष्य अपने रूहानी अनुभव केवल गुरु को ही बता सकता था।[2] मुर्शिद से नामदान मिलने के समय शिष्य का गुरु से अटूट रूहानी सम्बन्ध जुड़ जाता था और गुरु शिष्य को अपनी शरण में लेने की निशानी के तौर पर उसके सिर पर हाथ रखता था।[3]

---

1. **History of Sufism in India,** Vol. I, p. 89.
2. Ibid, p. 99.
3. Ibid, p. 102.

सूफ़ियों का दृढ़ विश्वास है कि गुरु का पल्ला पकड़ना प्रभु की दया के दायरे में दाख़िल हो जाना है। साईं बुल्लेशाह ने अपनी वाणी में बार-बार इस बात की ओर संकेत किया है कि ईश्वरीय दया-मेहर गुरु द्वारा प्रकट होती है। आप फ़रमाते हैं कि गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलने से आशा-मनसा से छुटकारा मिलता है, मन निर्मल होता है और मनुष्य निश्चिन्त होकर सच्चे आनन्द का भागीदार बन जाता है :

फड़ मुरशद आबद खुदाई हो, विच मसती बेपरवाही हो।
बे-ख़ाहश बे-निवाई हो, विच दिल दे ख़ूब सफ़ाई हो।
बुल्ला बात सच्ची कदों लुकदी ए, गल इक नुकते विच मुकदी ए।

सतगुरु जीते-जी भी सहायता करता है और अन्त समय[1] भी सच्चे भक्त को हर प्रकार के संकटों से बचा कर धुर-दरगाह पहुँचाने के लिये वचन-बद्ध होता है :

इक औखा वेला आवेगा, सभ साक सैन भज्ज जावेगा।
कर मदद पार लंघावेगा, ओह बुल्ले दा सुलतान कुड़े।
कर कत्तण वल ध्यान कुड़े।

मुर्शिद इन दुःखों और खतरों की घाटी से पार करके आत्मा का मालिके-कुल (परमपिता परमात्मा) से मिलाप करा देता है और उसको उस मुकाम पर पहुँचा देता है, जहाँ कोई नहीं पहुँच सकता :

1. बुल्ला शहु मेरे घर आवसी, मेरी बलदी भा बुझावसी।
   अनायत दम दम नाल चितारिया, सानूं आ मिल यार प्यारिया।
2. हादी मैनूं सबक पढ़ाया। ओथे ग़ैर न आया जाया।
   मुतलक ज़ात जमाल विखाया। वहदत पाया शोर नी।

मौलाना रूम ने फ़रमाया है, उस मित्र (प्रभु) का मार्ग बहुत बारीक और तंग है। बुद्धिमान (सन्त-महात्मा) के बिना इस पर कौन सीधा चल सकता है ? इस कठिन मार्ग में दुर्गम घाटियाँ हैं जो पथ-प्रदर्शक के बिना पार नहीं की जा सकतीं। इसलिये उस दयालु शाह (हज़रत मुहम्मद) ने फ़रमाया है कि यात्रा का साथी पहले है और यात्रा का तय होना बाद में है। कोई पथ-

---

1. देखिये इसी पुस्तक का पृ. 101-102.

प्रदर्शक खोज ले ताकि तू सीधे मार्ग पर चल सके, वरन् मार्ग में बहुत-से कुएँ और गढ़े हैं। तू परकार की भाँति सदा एक ही स्थान पर चक्कर काट रहा है, इसलिये जहाँ था, वहीं है। तूने वर्षों रोज़े रखे और नमाज पढ़ी, परन्तु दिल का हाल जो पहले था, वही रहा। तू उस पथ-प्रदर्शक पर विश्वास कर, ताकि तू ला-कलाम मंज़िल (अनामी देश) तक पहुँच जाये। पीर की आज्ञा को न मानना, बिना कमान के तीर चलाने के सदृश्य है। तूने बिना कमान के कोई तीर कभी निशाने पर या निशाने के आसपास पहुँचता देखा है ?[1]

पूरा सतगुरु

यह बात कहने की आवश्यकता नहीं कि रूहानी उन्नति के लिये सतगुरु का अर्थ परमात्मा से मिलाप करके उसका रूप हो चुके सच्चे सतगुरु से है क्योंकि केवल परमात्मा या परमात्मा में समा कर परमात्मा बन चुका मनुष्य ही परमात्मा से मिलाप का साधन बन सकता है। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि मुर्शिद में परमात्मा और मनुष्य दोनों की सन्धि या मेल है :

1. ढोला आदमी बन आया।
2. मौला आदमी बन आया।

पानी में मिश्री घोलते जायें तो यहाँ तक पहुँच जायेगा कि पानी नाममात्र ही रह जायेगा, उसमें मिश्री की सारी खूबियाँ समा जायेंगी। इसी प्रकार जिसके अन्दर परमात्मा का नूर घर कर गया है और जिस पर ईश्वरीय कृपा के द्वार खुल चुके हैं, उसमें और परमात्मा में वास्तव में कोई अन्तर नहीं होता। ऐसे कामिल मनुष्य द्वारा ही परमात्मा की दया दूसरों को पार उतारती है :

वाह जिस पर करम आवेहा है। तसदीक ओह वी तैं जेहा है।
सच्च सही रवाइत एहा है। तेरी नज़र मिहर तर जाईदा।

परमेश्वर का सच्चा भक्त परमेश्वर रूपी समुद्र में से उठी ऐसी लहर है जो समुद्र में से उठती है, सदा समुद्र का भाग रहती है और समुद्र में ही समा जाती है। लहर कभी समुद्र से अलग नहीं होती। लहर की जड़ें समुद्र में होती हैं :

---

1. मसनवी मौलाना रूम।

हरि का सेवकु सो हरि जेहा। भेदु न जाणहु माणस देहा।
जिउ जल तरंग उठहि बहु भाती। फिरि सललै सलल समाइदा।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1076)

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मुर्शिद बाहर से देखने को 'चाक' अराईं या योगी लगता है परन्तु वास्तव में प्रभु के पावन प्रकाश की साक्षात् मूर्ति है। वह जीता-जागता, चलता-फिरता दयालु प्रभु है। उसका दर्शन परमात्मा का दर्शन है जो सब रोगों की अचूक औषधि है :

1. माही नहीं कोई नूर इलाही, अनहद दी उस मुरली वाई।
2. मुठ्ठी ओसु[1] हीर सिआल डाहडे कामन[2] पा के।
3. बुल्लिया दूरों चल के आया जी,
   ओहदी सूरत ने भरमाया जी।
   ओसे पाक जमाल दिखाया जी[3],
   ओह हिक्क दम न भुलेंदा।
4. बाग़ बहारां तां तूं देखें चाकर थीवें राईं दा।
   बुल्लिया इस नूं देख हमेशा इह है दरशन साईं दा।
5. माही वे तैं मिलियां सभ दुख्ख होवन दूर।
   लोकां दे भाणे चाक चकेटा साडा रब ग़फ़ूर[4]।

इश्के-मजाज़ी और इश्के-हकीकी

सूफ़ी दरवेशों ने कामिल मुर्शिद को निराकार प्रभु के आकाश को लगी सीढ़ी और वह पारदर्शी शीशा कहा है जिसमें से दूसरी ओर का प्रकाश स्पष्ट दिखाई देता है। साईं बुल्लेशाह इश्के-मजाज़ी को इश्के-हकीकी से जोड़ने वाला पुल कहते हैं। इश्के-मजाज़ी का अर्थ सतगुरु के रूप में मजाज़ या देह का चोला पहन कर आई हकीकत का इश्क है। आप बड़े सुन्दर ढंग से कहते हैं कि जब तक रूप का प्रेम न हो, अरूप का प्रेम किस प्रकार जागेगा ? आकार के प्रेम का धागा न हो तो सूई निराकार के प्रेम का जामा कैसे सिये ?

---

1. लूट ली, भरमा ली 2. जादू करके 3. पवित्र नूर दिखाया अर्थात् परमात्मा के दर्शन कराये 4. दयालु परमात्मा।

जब तक मजाज़ (देह-स्वरूप सतगुरु) दाता बन कर न आये, दैविक प्रेम की दात कैसे मिले ? सतगुरु की ज़ात का इश्क ही दैवी इश्क का माता-पिता अर्थात् जन्म-दाता है क्योंकि केवल इसके द्वारा ही हम जीते-जी मर कर आन्तरिक सत्य से मिलाप करने के योग्य बन सकते हैं :

जिवर न इश्क मजाज़ी लागे, सूई सीवे न बिन धागे।
इश्क मजाज़ी दाता है, जिस पिछ्छें मस्त हो जाता है।
इश्क जिन्हां दी हड्डीं पैंदा, सोई नर जीवत मर जाता।
इश्क पिता ते माता ए, जिस पिछ्छे मस्त हो जाता ए।

शरीर में कैद आत्मा अदृष्ट और अगोचर प्रभु को प्यार नहीं कर सकती। परन्तु जब सतगुरु द्वारा दैवी प्रकाश सामने झरता है तो जीव का सहज ही उससे प्यार हो जाता है।[1] इसी कारण कामिल फ़कीरों ने सतगुरु बन कर आये परमात्मा की बहुत महिमा कही है।[2]

1. नदरी आवै तिसु सिउ मोहु। किउ मिलीए प्रभ अबिनासी तोहि।
करि किरपा मोहि मारगि पावहु। साध संगति कै अंचलि लावहु।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 801)

2. (क) गुरु गोविंद दोऊ खड़े, का के लागौं पाय।
बलिहारी गुर आपने, जिन गोबिंद दिया दिखाय॥

(ख) कबीर हरि के रूठते, गुर की शरणी जाय।
कहु कबीर गुर रूठते, हरि नहीं होत सहाय॥ (कबीर)

(ग) राम तजूं पर गुर न बिसारूं। गुर के सम हरि कूं न निहारूं॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवागमन छुड़ाई॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा॥
हरि ने कुटुंब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुड़ायौ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतम रूप लखायौ॥
हरि ने मो सूं आप छिपायौ। गुरु दीपक दे ताहि दिखायौ॥
फिर हरिबंध मुक्ति गति लाये। गुरु ने सबही भर्म मिटाये॥
चरनदास पर तन मन वारूं। गुरु न तजूं हरि कूं तजि डारूं॥
सब परबत स्याही करूं, घोलूं समुंदर जाय।
धरती का कागद करूं, गुरु अस्तुति न समाय॥
(सहजोबाई की बानी, पृ. 3-4)

मौलाना जामी फ़रमाते हैं कि यदि कामिल मुर्शिद की देह का प्यार अन्तर में पैदा हो जाये तो बड़े सौभाग्य की बात है क्योंकि इश्के-हकीकी तक पहुँचने का साधन इश्के-मजाज़ी ही है।[3]

डॉ. इकबाल ने कहा है कि हे गुप्त या निराकार हकीकत (सत्य), तू कभी मजाज़ (देह) का चोला पहन कर सामने आ क्योंकि तेरे इस रूप की प्रतीक्षा में हज़ारों सजदे तड़प रहे हैं :

कभी ऐ हकीकते मुंतज़र नज़र आ लिबासे मजाज़ में,
कि हज़ारों सजदे तड़प रहे हैं मेरी जबीने निआज़ में।

कोई ऐसा प्रकट प्रकाश सामने होना चाहिये, जिसका प्रेम प्रेमी को भी प्रकाश का रूप बना दे :

सरापा नूर हो जाए जिसका आश्के सादक,
भला ऐ दिल हसीं ऐसा भी है कोई हसीनों में।

इसी प्रसंग में साईं जी की कुछ काफ़ियाँ ध्यान देने योग्य हैं। 'रांझा जोगीड़ा बन आया' में आप आत्मा और परमात्मा का वास्तविक सम्बन्ध दिखाते हैं। सतगुरु की आँखें प्रभु रूपी हीरे को दर्शाती हैं। उसकी शक्ल से यूसुफ़ (परमात्मा) की झलक झलकती है। मूल रूप में आत्मा निराकार और प्रकाशमय है परन्तु मन व माया के देश में वह योगिन बन कर आई है अर्थात् माया के जगत में आत्मा देह का चोला धार कर आई है। यही कारण है कि राँझा (परमात्मा) को भी संसार में योगी बन कर आना पड़ता है। परन्तु जब हीर को योगी के नक्शों (विशेषताओं) में से रांझा के नक्शों की झलक दिखाई देती है तो वह स्वतः योगी की ओर खिंची चली जाती है। उसके अन्दर सदियों से सोई दैवी प्रीति जाग उठती है बल्कि उसको पश्चात्ताप होता है कि योगी के प्रेम से पहले की आयु व्यर्थ चली गई। जब उसका योगी में विश्वास पक्का हो जाता है तो योगी उसको साथ लेकर तख़्त हज़ारे (अपने वास्तविक रूहानी देश) की ओर चल देता है :

---

3. ग़नीमत दां अगर इश्के मजाज़ीसत, कि अज़ बहिरे हकीकी कारसीज़ीसत।

उद्धरण, **कानूने इश्क**, अनवर अली रोहतकी, पृ. 50, अनवर अली रोहतकी ने इश्के-मजाज़ी और इश्के-हकीकी की सविस्तार व्याख्या की है।

रांझा जोगीड़ा बन आया, वाह सांगी सांग रचाया।
एस जोगी दे नैन कटोरे, बाज़ां वांगूं लैंदे डोरे।
मुख डिठिआं दुख जावन झोरे, इन्हां अख्खीआं लाल लखाया।
एस जोगी दी की नी निशानी, कंन विच मुंदरां गल विच गानी।
सूरत इस दी यूसुफ़ सानी, एस अलफ़ों अहद बनाया।
रांझा जोगी ते मैं जोगिआनी, इस दी ख़ातर भरसां पानी।
ऐवें पिछली उमर विहानी, एस हुन मैनूं भरमाया।
बुल्ला शहु दी हुन गत पाई, प्रीत पुरानी शोर मचाई।
इह गल कीकूं छुपे छुपाई, लै तख़त हज़ारे नूं धाया।
रांझा जोगीड़ा बन आया, वाह सांगी सांग रचाया।

'मेरे क्यों चिर लाया माही' और 'मैं विच मैं न रह गई' में भी यही अलंकार है। इन काफ़ियों में कहते हैं कि संसार की रचना का हुक्म (कुन फ़यीकुन) देते ही रांझा हीर को लेने के लिये तख़्त हज़ारे (सचखण्ड) से चल देता है। रांझा वास्तव में साहिब-सफ़ाई (परमात्मा) था, पर चूचक और मलकी (मन व माया) के देश में आकर उसको, उनकी सेवा का स्वाँग भरना पड़ा। परन्तु जब हीर को ज़बरदस्ती खेड़े (अहम् या शैतान) के साथ भेजा गया तो रांझा को योगी का भेष बदल कर उसके पीछे जाना पड़ा। खेड़ों की नगरी में योगी केवल अपने मतलब से घर आता है अर्थात् जो आत्मा खुशी-खुशी खेड़ों के देश बसना चाहती है, योगी उसकी ओर ध्यान नहीं देता। परन्तु जो आत्मा खेड़ों के हर प्रकार के साजो-सामान (इन्द्रियों के भोगों) को ठुकरा कर रांझा के लिये व्याकुल होती है, योगी उसके द्वार पर अवश्य पहुँचता है। योगी के पास कौन-सा मन्त्र है ? वह हीर के दरवाज़े पर नाद बजाता है, अर्थात् उसको अन्दर कलमे, शब्द या नाम से जोड़ देता है। योगी हीर के द्वार पर चीना (एक प्रकार का अनाज) बिखेर कर बैठ जाता है परन्तु चीना चुगते (सांसारिक कार्य-व्यवहार करते) हुए योगी की दृष्टि सदा हीर (आत्मा) पर रहती है। जब हीर योगी के नयनों में रांझा के नयन पहचान लेती है तो धुर दरगाह में हुई बख़्शिश से योगी उसको साथ लेकर तख़्त हज़ारे (धुरधाम) की ओर चल देता है :

1. मेरे क्यों चिर लाया माही, नी मैं उस तों घोल घुमाई।
कुन फ़यीकुन आवाज़ा आया, तख़त हज़ारिउं रांझा धाया।
चूचक दा उस चाक सदाया, ओह आह[1] साहिब सफ़ाई।
मेरे क्यों चिर लाया माही।
2. जोगी शहिर खेड़िआं दे आवे, जिस घर मतलब सो घर पावे।
बूहे जा के नाद वजावे, आपे होया फ़ज़ल इलाही।
बूहे पै खुड़बिआ[2] धिगाने[3], टुट पिआ खप्पर डुल पए दाणे।
इस दे वल छल कौन पछाने, चीना रुल गया विच पाही।
चीना चुन चुन झोली पावे, बैठा हीरे तरफ़ तकावे।
जो कुझ लिखिया लेख सो पावे, रो रो लड़दे नैन सिपाही।
मेरे क्यों चिर लाया माही।

आपकी काफ़ी 'मैं वैसां जोगी दे नाल, मथ्थे तिलक लगा के' भी इसी रंग में लिखी गई है। इस काफ़ी में इश्के-मजाज़ी द्वारा इश्के-हकीकी तक पहुँचने का जो सुन्दर वर्णन मिलता है, वह अपना उदाहरण आप है। इसमें आप जोगी (सतगुरु) को दैवी प्रकाश की मूरत और अनहद की मुरली बजाने वाला ऐसा जादूगर कहते हैं जो अपनी विशेषताओं से हीर स्याल का दिल मोह लेता है। वह हीर (आत्मा) के मन में इस प्रकार घर कर लेता है कि हीर को अपनी और संसार की कोई सुध-बुध नहीं रहती। वह योगी के प्रेम में मग्न होकर, योगी के पीछे-पीछे उसके देश में चली जाती है। 'कौन आया पहिन लिबास कुड़े' काफ़ी में भी सतगुरु के शारीरिक चोले के पीछे छिपी उसकी दैवी असलियत की पहचान करने की हिदायत की गई है। एक स्थान पर साईं जी ने मुर्शिद को अनहद द्वार का 'गवरीया' या 'ग्वाला' कहा है जो हीर की प्रीति के लिये—'मोहे प्रीती को'—योगी का रूप धार कर संसार में आता है :

अनहद द्वार का आया गवरीआ, कंगन दसत चढ़ाई।
मूंड मुंडा मोहे प्रीती को, रेन कंना में आई।

---

1. था 2. झगड़ा 3. बिना कारण के।

बाँसुरी (शब्द) वाले योगी, रांझे या कान्ह का सुर हीर से मिला हुआ है। इसलिये वह सहज ही उसकी सुरत को अपने साथ मिला सकता है :

बंसी वालिआ चाका रांझा, तेरा सुर सभ नाल है सांझा।
तेरीआं मौजां साडा मांझा, साडी सुरती आप मिलाई।

सतगुरु की आवश्यकता : एक दैवी नियम

उपर्युक्त वर्णन इस नियम की ओर संकेत करते हैं कि सृष्टि की रचना के समय से ही कुल मालिक ने अपने हुक्म (कुन) से भेजी हुई आत्मा को अपने साथ मिलाने की ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ले रखी है। यह उत्तरदायित्व दूसरा कौन ले सकता है ?

संसार की सम्पूर्ण रूहानियत इस एक नियम पर आधारित है कि परमात्मा की प्राप्ति का साधन परमात्मा द्वारा स्वयं सृजन किया गया है। वह साधन यह है कि परमात्मा-रूप सतगुरु, जीव को अन्तर में कलमे, शब्द या नाम से जोड़ कर रचना से मुक्त करके वापस धुरधाम ले जाता है।[1]

ध्यानपूर्वक देखा जाये तो ब्रह्माण्ड के सब नियम ही निरन्तर अटल और अचूक हैं। हर बीज से एक विशेष फल पैदा होता है। सन्तान की उत्पत्ति से लेकर सूर्य, चाँद और तारों की गर्दिश तक सब नियम सृष्टि की रचना के समय ही बना दिये जाते हैं। उनमें आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आश्चर्य की बात है कि स्वयं को सृष्टि का सिरमौर और सबसे अधिक बुद्धिमान कहलाने वाला मनुष्य सृष्टि के शेष सब नियमों को खूब अच्छी प्रकार समझता, पहचानता और मानता है, परन्तु इस

---

1. (क) धुरि खसमै का हुकमु पइआ विणु सतिगुर चेतिआ न जाइ।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 556)

(ख) गुरमुखि जाता करमि बिधाता। जुग चारे गुर सबदि पछाता।
(वही, पृ. 1054)

(ग) गुरमुखि भगति जुग चारे होई। होरतु भगति न पाए कोई।
नानक नामु गुर भगती पाईऐ गुर चरणी चितु लावणिआ।
(वही, पृ. 122)

अनादि नियम को समझना या मानना तो दूर रहा, इस पर गम्भीरता से विचार करने के लिये भी तैयार नहीं होता।

सन्तान स्त्री व पुरुष के संयोग से उत्पन्न होती है, रोग डाक्टर की दवाई खाने से दूर होता है और हर प्रकार की कला का वास्तविक ज्ञान उस कला के ज्ञाता से मिलता है। इसी प्रकार परमेश्वर प्राप्ति की युक्ति प्रभु से मिलाप कर चुके किसी पूर्ण मनुष्य से मिलती है।

अपने समय का पूर्ण सतगुरु

हम लोग प्राचीन समय में हुए पीरों, पैगम्बरों, गुरुओं, अवतारों आदि में, जिनको उस समय अनेक यातनाएँ दी गई थीं, विश्वास करने के लिये तैयार हो जाते हैं परन्तु अपने समय के कामिल फ़कीरों में विश्वास रखने के लिये तैयार नहीं होते।

यह उसी प्रकार है कि जैसे कोई स्त्री सदियों पहले हुए पुरुष के ख़याल से सन्तान पैदा करना चाहे, कोई रोगी आज लुकमान या धन्वन्तरि के ख़याल से रोग से मुक्त होना चाहे या कोई छात्र अरस्तू और प्लेटो में भरोसा रख कर विद्वान बनना चाहे। प्रत्येक दशा में समय का पति, समय का डाक्टर, समय का शिक्षक और समय के आध्यात्मिक गुरु की आवश्यकता होती है। संसार में हर समय, हर स्थान पर महान डाक्टर, संगीतकार, सेनाध्यक्ष, चित्रकार, दार्शनिक और वैज्ञानिक पैदा हो सकते हैं तो कामिल फ़कीर या सन्त-सतगुरु के आगमन को किसी विशेष समय, स्थान, कौम या धर्म तक ही कैसे सीमित रखा जा सकता है ?

सिरदार इकबाल अलीशाह के अनुसार सूफ़ी दरवेशों का विश्वास है कि जिस प्रभु ने संसार के सब वक्तों के लोगों को बिना किसी मतभेद के हवा, पानी, धरती, प्रकाश की नियामतें बाँटी हैं, वह उनके रूहानी विकास के लिये भी अपनी दया व मेहर समान रूप से बाँटता है। जिस प्रकार संसार को पदार्थिक गुत्थियों के हल के लिये अनेक प्रकार के महापुरुष हर समय जन्म लेते रहते हैं, उसी प्रकार लोगों की रूहानी

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी समय-समय पर पीर-पैगम्बर संसार में आते रहते हैं।[1]

सिरदार इकबाल अलीशाह के अनुसार कई सूफ़ी दरवेशों ने अपने विचारों की पुष्टि के लिये कुरान शरीफ़ की उन आयतों के उद्धरण दिये हैं, जिनमें कहा गया है कि परमात्मा ने सब कौमों के रूहानी कल्याण के लिये अपने पैगम्बर भेजे हैं। कुरान शरीफ़ में हिदायत की गई है कि उस ख़ालिक के द्वारा अलग-अलग कौमों और समय के लिये भेजे गए पैगम्बरों में किसी प्रकार का अन्तर न करो और अपनी मति को छोड़ कर परमात्मा के बनाये कानून के अनुसार उसकी खोज करो।[2]

अली बिन-अल हुसैन अल हकीम अलतिरमीज़ कहते हैं, कोई कारण नहीं कि खलीफ़ा अबूबकर और अली के बाद आने वाले सन्त उन जैसे या उनसे ऊँचे न हो सकें। प्रभु-कृपा को ऐसे समय के लोगों पर

---

1. "A Sufi believing in the Islamic religion must have complete submission to Divine control in the mode and conduct of life and implicit and unreserved obedience to laws revealed to man by God in preference to all our prepossessions, inclinations or judgements and believe that his religion is a religion which embraces all such religions that have been preached by teachers inspired by God in various ages and different countries. Thus the Quran says in this respect : "Say, we believe in God and in what has been revealed to us, as well as to Abraham, Ishmael, Issac, Jacob and their descendants ; we also believe in what was given to Moses, Jesus, and to all the prophets raised by the Creater of the Universe, we accept all of them, without making any distinction among them."

Sirdar Ikbal Ali Shah, **Islamic Sufism,** Samuel Weiser Inc, New York, 1971, p. 35.

2. "Moreover, the development of human faculties and complications of evils—a necessary sequel to earthly civilization—called for new orders for things. This emergency brought forth prophet after prophet, thinks the Sufi, who came and restored truths already revealed and made necessary additions to meet the requirements of the age. As different races of mankind were distantly located and separated from each other by natural barriers, with very limited means of intercourse between them, each nation needed its own prophet and so was it blessed — as Al-Quran says : "There was no nation but had its teacher." Again the Quran says : "Every nation had its guide, 'and' A divine messenger was sent to every class of men" (XXXV, 24 X. 47). Ibid. pp. 38, 39.

बरसाने से कौन रोक सकता है ? लोग यह क्यों सोचते हैं कि आज कोई सिदीक मुकरब्ब, मुजतज़ा या मुसतबा संसार में नहीं है।[1]

इबन-अल अरबी कहते हैं कि वली प्रभु का एक नाम है, जिस कारण प्रभु की तरह वली कभी ख़त्म नहीं होता। यह एक निरन्तर प्रवाह है। सन्त-जन या वली अल्ला अपने अहम् का नाश करके पूर्ण पुरुष बन चुका होता है। वह परमात्मा का ही रूप होता है और संसार से वली कभी समाप्त नहीं होता।[2]

प्राचीनकाल के कामिल फ़कीर

प्राचीनकाल में हुए कामिल मुर्शिद, पीर-पैगम्बर, सन्त-सतगुरु आज कहाँ हैं ? वे अवश्य कुल मालिक में समा चुके हैं। आज उन पर विश्वास रखने के स्थान पर सीधा परमात्मा पर विश्वास क्यों न किया जाये, क्योंकि वह भी तो उसमें ही समाये हुए हैं और हमारा वास्तविक उद्देश्य भी उसमें समा जाना है। परन्तु यदि हम आज परमात्मा से सीधी सहायता प्राप्त कर सकते हैं तो प्राचीनकाल में हुए लोग क्यों नहीं कर सकते थे ? उस समय किसी पीर या मुर्शिद के आने की क्या आवश्यकता थी ? किसी एक समय बादलों द्वारा वर्षा होने का अर्थ है कि वर्षा केवल बादलों द्वारा ही हो सकती है और किसी एक समय किसी आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता का अर्थ है कि मनुष्य केवल अपने समय के रूहानी रहबर से ही लाभान्वित हो सकता है। नबी, रसूल, कामिल मुर्शिद या सच्चे भक्त का अस्तित्व उसके शरीर और दूसरे मादी हालात (सांसारिक अवस्थाओं) तक सीमित नहीं हैं। उसकी असलियत उसके अन्दर कार्यशील ईश्वरीय प्रकाश है जो किसी समय, किसी स्थान पर, किसी भी मनुष्य शरीर के अन्दर बैठ कर अपना कार्य कर सकती है।

रिज़वी सूफ़ी सिलसिलों[3] के बारे में लिखता है कि पीर अपना चोला

---

1. "Who can prevent the mercy of God from prevailing in these modern times ? No body can check it, for it is continuous. Do they think that there is no **siddiq**, no **muqarrab**, no **muitaba**, no **mustafa** now a days ?" **History of Sufism in India**, V. I, p. 41.

2. Ibid, p. 108.

3. जैसे कबीर साहिब और गुरु नानक साहिब की कई गद्दियाँ हुई हैं, उसी प्रकार सूफ़ी दरवेशों की कई-कई गद्दियाँ चलती हैं। हर गद्दी को एक सिलसिला कहते हैं।

त्यागने से पूर्व अपना रूहानी उत्तराधिकारी नियुक्त करता था और उसको अपना सज्जादा (गद्दी), डण्डा और खिरका (चोला) स्मृति-चिह्न के रूप में देता था। उसके स्थान पर बैठने वाला पीर सज्जादा-नशीन (गद्दी नशीन) कहलाता था।[1] दूसरे सन्तों की भी कई-कई गद्दियाँ चली हैं।

सत्ते और बलवंडे ने अपनी रागु रामकली की वार में, जो आदि ग्रन्थ में दी गई है, गुरु नानक साहिब से गुरु अर्जुन साहिब तक गुरु-गद्दी पहुँचने का वृत्तान्त वर्णन करते हुए लिखा है :

1. जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फेर पलटीऐ।
2. नानक तू लहणा तू है गुरू अमर तू वीचारिआ।

यही विचार भाई गुरुदास जी ने अपनी वारों में गुरु नानक से गुरु हर गोबिन्द तक गुरु-गद्दी के पहुँचने और भाई नन्दलाल गोया ने अपनी रचना 'जोत विकास' में गुरु नानक साहिब से गुरु गोबिन्दसिंह तक गुरु-गद्दी के पहुँचने के सम्बन्ध में लिखा है :

1. निरंकारु नानक देउ निरंकारि आकार बणाइआ।
गुरु अंगदु गुरू अंग ते गंगहु जाण तरंग उठाइआ।
अमरदासु गुर अंगदहु जोति सरूप चलतु वरताइआ।
गुरु अमरहु गुरु रामदास अनहद नादहु सबदु सुणाइआ।
रामदासहु अरजनु गुरू दरसनु दरपनि विचि दिखाइआ।
हरि गोबिंद गुर अरजनहु गुरु गोबिंद नाउ सदवाइआ।
गुर मूरति गुर सबदु है साध संगति विचि प्रगटी आइआ।
पैरी पाइ सभ जगतु तराइआ।

(वार 24 : पौड़ी 25)

2. वाह वाह गुरू समरथ पूरनं। वाह वाह गुर सच्चा सूरनं।
वाह वाह गुर कबह न झूरनं। वाह वाह गुर कला संपूरनं।
नानक सो अंगद गुर देवनं। सो अमरदास हर सेवनं।
सो रामदास जो अरजनं। सो हरिगोबिंद हरि परसनं।
सो करता हरि राइ दातारनं। सो हरि किशन अगंम अपारनं।

---

1. History of Sufism in India. Vol. 1, p. 4.

सो तेग बहादर सत सरूपनं। सो गुर गोबिंदसिंह हरि का रूपनं।
सब एको एको एकनं। नहीं भेद ना कुछ भी पेखनं।

(जोत विकास—भाई नन्दलाल)

भाई गुरुदास और भाई नन्दलाल के उपर्युक्त उद्धरण ध्यान आकर्षित करते हैं। भाई गुरुदास ने गुरु साहिबान के गुरुत्व को विशेष देही तक सीमित नहीं किया बल्कि उस देही द्वारा कार्य कर रही निरंकार की ज्योति से जोड़ा है। आप गुरु को निराकार का आकार कहते हैं और पारब्रह्म परमेश्वर रूपी गंगा की तरंग कहते हैं। आप गुरुत्व के एक गुरु-व्यक्ति से दूसरे गुरु-व्यक्ति में पहुँचने के क्रम को अनहद शब्द के एक गुरु से दूसरे गुरु में प्रकाशित होने का नाम देते हैं, क्योंकि गुरु का वास्तविक स्वरूप उसके अन्दर काम कर रहा परमात्मा का शब्द है, 'गुर मूरति गुर सबदु है।' इसी प्रकार भाई नन्दलाल गुरु को पूर्ण परमात्मा की कला (कला संपूरनं), हरि की छोह (हरि परसनं) और हरि का रूप (हरि का रूपनं) कहते हैं। गुरु अपनी देह के कारण नहीं, उस देह द्वारा कार्यशील कर्ता-पुरुष की शक्ति के कारण ही कर्ता है, दाता है, अगम, अपार है और प्रभु का रूप है। इस मूल की एकता के कारण ही सब गुरु एक हैं अर्थात् हरि का रूप हैं।

गुरु रामदास जी समझाते हैं कि सतगुरु की पीढ़ी या परम्परा हर युग में सदा चलती रहती है। युग-युग कायम रहने वाली तत्व वस्तु परमात्मा की ज्योति है। कोई शरीर युग-युगान्तर तक नहीं चल सकता परन्तु ज्योति सदा चल सकती है। इससे भी यही संकेत मिलता है कि गुरुत्व का आधार देह न होकर उसमें काम करने वाली परमात्मा की अमर शक्ति है :

हरि जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलंदी।
जुगि जुगि पीडी चलै सतिगुरु की जिनी गुरमुखि नामु धिआइआ।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 79)

एक सतगुरु से दूसरे सतगुरु का बनना दीपक से दीपक का प्रकाशमान होना है क्योंकि सतगुरु में काम करने वाली शक्ति परमात्मा का शब्द या कलमा है। जो शिष्य या सेवक सतगुरु द्वारा इस हरि तत्व का संग्रह करते हैं वे भी हरि-चरणों से जुड़ जाते हैं :

आपि नराइणु कला धारि जग महि परवरियउ।
निरंकारि आकारु जोति जग मंडलि करियउ।
जह कह तह भरपूरु सबदु दीपकि दीपायउ।
जिह सिखह संग्रहिओ ततु हरि चरण मिलायउ।
नानक कुलि निंमलु अवतरिउ अंगद लहणे संगि हुअ।
गुर अमरदास तारण तरण जनम जनम पा सरणि तुअ।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1395)

इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि गुरु या मुर्शिद का होना ही काफ़ी नहीं है, गुरु का प्रभु-रूप होना आवश्यक है। नियम यह नहीं है कि मुक्ति गुरु द्वारा होगी, नियम यह है कि मुक्ति पूरे गुरु, सच्चे गुरु, कामिल मुर्शिद द्वारा होगी। निस्सन्देह ऐसे कामिल मुर्शिद, पूरे और सच्चे गुरु बिरले हैं।

कबीर साहिब, दादू साहिब आदि अनेक महात्माओं की अनेक गद्दियाँ चली हैं क्योंकि कामिल फ़कीर नश्वर शरीर का त्याग करते समय उसमें पड़े अमर प्रकाश को दूसरे शरीर में हस्तान्तरित कर देते हैं। शरीर नये से नया हो सकता है परन्तु प्रकाश सनातन से सनातन है क्योंकि प्रकाश पवित्र प्रभु का है। साईं बुल्लेशाह ने अपने कलाम में मुर्शिद और खुदा के लिये रांझा, पुन्नू, महीवाल, ढोला, सस्सी, राम, कृष्ण, कान्ह और ईसा के जो संकेत प्रयुक्त किये हैं और जिस प्रकार मंसूर, ज़करीया, सरमद, बू-अली आदि अनेक फ़कीरों की रूहानी महानता के गीत गाये हैं, उससे इस बात के विषय में कोई सन्देह नहीं रहता कि आप सतगुरु की हस्ती को किसी विशेष कौम, मज़हब, मुल्क, समय या स्थान तक सीमित नहीं करते, बल्कि उसको एक अनादि नियम, एक अविनाशी अस्तित्व और समर्थ शक्ति के रूप में चित्रित करते हैं जो किसी समय, किसी स्थान, किसी भी शरीर में प्रकाशमान हो सकती है।

हज़रत ईसा ने कहा है, जब तक मैं संसार में हूँ, मैं संसार का प्रकाश हूँ।[1] आप अपना काम दिन में कर लें[2] क्योंकि जब रात आती है तो कुछ नहीं

1. As long as I am in the world, I am the light of the world.
(John 9 : 5)
2. I must work the works of Him that sent me : while it is day.
(John 9 : 4)

किया जा सकता। इसका अर्थ है कि अपने समय के पूर्ण सतगुरु से प्रभु की सच्ची भक्ति का भेद लेकर जीते-जी रूहानी सफ़र तय कर लेना चाहिये।

साईं बुल्लेशाह मुर्शिद को सौदागर और लालों का व्यापारी कहते हुए जीव को सावधान करते हैं कि जब तक तू शरीर में है और मुर्शिद का पाँच तत्वों का शरीर कायम है, तू कलमे, शब्द या नाम का व्यापार कर ले। मुर्शिद के चले जाने के बाद न कलमे का भेद मिल सकता है और न ही किसी से अन्त समय कलमे की कमाई हो सकती है :

कर सौदा पास सौदागर है, इह वेला हथ न आवीगा।
वणज वणोला नाल शिताबी, वणजारा उठ जावीगा।
उस दिन कुझ न हो सकसी, जद कूच नगारा लावीगा।
हिजाब करें दरेवशी कोलों, कब लग हुकम चलावेगा।

इसी कारण आपने अपने मुर्शिद हज़रत अनायत शाह में प्राचीन कामिल दरवेशों वाले सारे गुण भी दिखाये हैं और उसको रांझा या परमात्मा का रूप ही माना है। आप कहते हैं कि मेरा मुर्शिद ही काबा (मक्का में पूजनीय स्थल) है और मुर्शिद ही किबला (खुदावन्द करीम, परमात्मा) है। मुर्शिद ही पति है और वही पति से मिलाप के सुन्दर वस्त्र पहनाने वाला साधन है। मुर्शिद ही सच्चा ज्ञान देने वाला ज्ञानी है और वही गुप्त दैवी भेदों को खोलने वाला आरिफ़ है। वही प्रभु के नाम, शब्द या कलमे का सन्देशवाहक है, वही लोहे को सोना बनाने वाला पारस है और वही इस ओर खड़ी आत्मा को पार करने वाला खेवट है। सच्ची बात तो यह है कि मुर्शिद नबी और वली ही नहीं, स्वयं दयालु प्रभु है :

(क) एस इश्क दी झंगी विच मोर बुलेंदा।
सानूं काबा ते किबला प्यारा यार दिसेंदा।
सानूं घायल करके ख़बर न लईआ।
तेरे इश्क नचाया कर थईया थईया।

(ख) बुल्ला शाह अनायत दे बहि बूहे। जिस पहिनाए सानूं सावे सूहे।
जां मैं मारी है अड्डी मिल पिआ वहीआ।
तेरे इश्क नचाया कर थईया थईया।

(ग) जो रंग रंगिया गूहड़ा रंगिया, मुरशद वाली लाली ओ यार।

(घ) वेखहु नी शाह अनायत साईं, मैं नाल करदा किवें अदाईं।

कदी आवे कदी आवे नाहीं, तिउं तिउं मैनूं भड़कन भाहीं।
नाम अल्ला पैगाम सुनाईं, मुख वेखन नूं न तरसाईं।

(ङ) बुल्ला शौह अनायत आरफ़ है, ओह दिल मेरे दा वारस है।
मैं लोहा ते ओह पारस है, तुसीं ओसे दे संग घसदे हो।
कीहनूं लामकानी दसदे हो, तुसी हर रंग दे विच वसदे हो।

इसलिये साईं बुल्लेशाह सतगुरु बन कर आये हुए परमात्मा को बार-बार याद कराते हैं कि तू सृष्टि की रचना के समय किया वायदा याद कर कि तुझे रचना से वापस लाने के लिये मैं स्वयं संसार में आऊँगा। आप परमात्मा द्वारा आत्मा को जगत में भेजने की घटना को परमात्मा का 'कारा' और रचना में आकर प्रभु रूप सतगुरु द्वारा आत्मा का हाथ पकड़ने को मुर्शिद का 'कारा' कहते हुए ताना देते हैं कि तू हमारे गुणों-अवगुणों को मत देख। तू उस कारे या वायदे को याद कर और अपने हुक्म से संसार में भेजे जीवों को अपनी दया से इस भवसागर से निकाल ले क्योंकि आत्माएँ कसुंभड़े के देश में रहती हुई थक गई हैं और तख़्त हज़ारे (सचखण्ड) को वापस जाने के लिये बेचैन हैं :

1. नाल रूहां दे लारा लाया, तुसीं चल्लो मैं नाले आया।
   ऐथे परदा चा बनाया, मैं भरम भुलाया फिरदा हां।
   मैं गल्ल ओथे दी करदा हां।
2. औगुण वेख न भुल मियां रांझा,
   याद करीं उस कारे नूं। दिल लोचे तख़त हज़ारे नूं।
3. अलस्त किहा जद अखिखआं लाईयां,
   हुन क्यों यार विसारी ? मैं कसुंभड़ा चुन चुन हारी।

साईं बुल्लेशाह के कलाम और उपर्युक्त चर्चा के सन्दर्भ में कुछ कामिल फ़कीरों के मुर्शिद की ज़ात के विषय में प्रकट किये गए विचार देखने से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण सतगुरु परमात्मा से अभेद होता है। वह दैवी प्रकाश देह का चोला केवल इसलिये धारण करता है कि मनुष्य के स्तर पर आकर और उस जैसा होकर उसके अन्दर अपना प्यार पैदा कर सके और अन्त में अपनी अँगुली पकड़ा कर उसको निज घर वापस ले जा सके।

विद्या और आध्यात्मिकता

विद्वान और ब्रह्मज्ञानी

अलफ़[1] अल्ला नाल रत्ता दिल मेरा, मैनूं 'बे' दी ख़बर न काई।
'बे'[2] पढ़दियां मैनूं समझ न आवे, लज़्ज़त अलफ़ दी आई।
'ऐन'[3] ते 'गैन' नूँ समझ न जाना, गल्ल अलफ़ समझाई।
बुल्लिया कौल अलफ़ दे पूरे, जिहड़े दिल दी करन सफ़ाई[4]।
असां पढ़िया इलम तहकीकी ए, ओथे इक्को हरफ़ हकीकी ए।
होर झगड़ा सभ वधीकी ए, ऐवें रौला पा पा बहिंदी ए।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।

अन्य कामिल फ़कीरों की भाँति साईं बुल्लेशाह ने वेद-कतेब, ग्रन्थों-पोथियों, शास्त्रों के ज्ञान और निजी रूहानी अनुभव की विस्तार से परस्पर तुलना की है। आप स्वयं बहुत बड़े विद्वान थे परन्तु आपको रूहानियत की दौलत उस अराईं फ़कीर से मिली जो बाहर से देखने में प्याज़ों की पनीरी लगाने का काम करता था परन्तु वास्तव में सत्य के सच्चे अभिलाषियों के हृदय में उसके[5] कलमे, शब्द या नाम का पौधा लगाने में निपुण था।

---

1. 'अलिफ़' अरबी, फ़ारसी और उर्दू वर्णमाला का पहला अक्षर है जिसका संकेत एक परमात्मा या पूर्ण अद्वैत की ओर है।

2. 'बे' वर्णमाला का दूसरा अक्षर है। परमात्मा के अतिरिक्त शेष जो कुछ है, सबको 'बे' या दूसरा कहा जाता है।

3. अरबी व फारसी वर्णमाला में ऐन और गैन में केवल इतना अन्तर होता है कि ऐन पर बिंदी लगाने से गैन बन जाता है। आपका इससे भाव है कि मुझे केवल परमात्मा की पूर्ण एकता का ज्ञान हुआ है। मैं ऐन और गैन अर्थात् अनेकता को नहीं मानता।

4. वे लोग ही अलिफ़ के पूर्ण कौल (वचन, हुक्म, शब्द) को समझ सकते हैं जो दिल की सफ़ाई करते हैं 5. उस ईश्वर के।

साईं जी के सामने अपने मुर्शिद की रूहानी बड़ाई और पवित्र व उच्च रहनी का जीवित उदाहरण था। विद्वान अपनी विद्या को धन-दौलत और मान-बड़ाई की प्राप्ति का साधन बना रहे थे, परन्तु हज़रत अनायत शाह हक-हलाल की 'कमाई करते हुए अपने ज्ञान और रूहानियत की उच्च व निर्मल दौलत को मुफ़्त बाँट रहे थे। संसार के महान सूफ़ी विद्वान मौलाना रूम ने फ़रमाया था कि शम्स तबरेज का दास बने बिना रूमी कभी मौलाना रूम नहीं बन सकता था : 'मौलवी हरगिज़ न शूद मौलाए रूम, चूं गुलामे शमस तबरेजी न शुद।' साईं बुल्लेशाह ने भी डंके की चोट से घोषणा की है :

बुल्लिआ जे तूं बाग बहारां लोड़ें, चाकर हो जा राईं दा।

इल्मे-सीना और इल्मे-सफ़ीना

यह इल्मे-सीना[1] की इल्मे-सफ़ीना[2] पर विजय का ज्वलन्त उदाहरण है। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि ग्रन्थों-पोथियों का बिना अभ्यास का कोरा ज्ञान दुःखों की गठरी है। विद्वान लोग धर्म-ग्रन्थों की व्याख्या करते समय बाल की खाल उतारते हैं परन्तु वे आन्तरिक भेदों से अनभिज्ञ हैं। उनको न तो वास्तविकता का निजी ज्ञान है और न ही वे ग्रन्थों-पोथियों में वर्णित उपदेशों के अनुसार अपनी रहनी ढालने का प्रयत्न करते हैं। विद्या का उद्देश्य सत्य का मार्ग दिखाना और उसकी प्राप्ति में सहयोग देना है। जिस विद्या से न नीयत साफ़ हो, न मन वश में आये और न ही रहनी पवित्र हो, उस विद्या का क्या लाभ है ? आप कहते हैं :

क्यों पढ़नां एं गड्ड किताबां दी, सिर चाईआ पंड अज़ाबां दी।
अगगे पैंडा मुशकल भारी ए।
बन हाफ़ज़ हिफ़ज़ कुरान करें। फिर निअमत विच ध्यान करें।

हकीम सनाई का कथन है कि जो विद्या हकीकत की मंज़िल पर धुरधाम नहीं पहुँचाती, उससे तो मूढ़ता अच्छी है।[3]

गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु

---

1. सहज ज्ञान जो रूहानी अभ्यास द्वारा सीधा अन्तर में मिलता है 2. बाहरमुखी विद्या 3. इल्म कज़ तू तुरा न बस्तानद, जहल ज़ां इल्म ब बवद बिसयार।

अहंकारा' (आदि ग्रन्थ, पृ. 140) क्योंकि 'पड़िऐ नाही भेद बुझिऐ पावणा' (आदि ग्रन्थ, पृ. 148)। प्रभु के दरबार में काम आने वाली वस्तु परमात्मा की सच्ची भक्ति है, विद्या का भण्डार नहीं :

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात।
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 467)

इस प्रकार के वाचक ज्ञानी की 'दीपक तले अँधेरा' वाली दशा होती है। वह दूसरों को उपदेश देता है और फ़तवे (मुसलमानों का दण्ड-पत्र) जारी करता है, परन्तु उसके अपने अन्दर भ्रमों व शंकाओं के ढेर लगे हुए हैं। उसकी रहनी और करनी में समानता नहीं है। इल्मे-सीना के जानकार कामिल मुर्शिद के बिना वह बाहर ही ठोकरें खाता रहता है :

पढ़ पढ़ मसले रोज सुनावें, खाना शक्क शुब्ह दा खावें।
दस्सें होर ते होर कमावें, अंदर खोट बाहर सचिआर।
इल्मों बस करीं ओ यार।
पढ़ पढ़ इल्म लगावे ढेर, कुरान किताबां चार चुफेर।
गिरदे चानण विच अनेर, बाझों राहबर ख़बर न सार।
इलमों बस करीं ओ यार।

साईं जी ने फ़रमाया है कि पण्डित और मशालची लोगों को प्रकाश दिखाते हैं परन्तु स्वयं अँधेरे में रहते हैं :

बुल्लिया मुल्लां अते मशालची दोहां इक्को चित्त।
लोकां करदे चानणा आप हनेरे नित्त।

जो विद्वान दूसरों को उपदेश देते हैं, पर स्वयं मोह और माया का शिकार हैं अर्थात् नाम की भक्ति नहीं करते, वे दरगाह में सज़ा पाते हैं :

पड़ि पड़ि पंडित बेद बखाणहि माइआ मोहु सुआइ।
दूजै भाइ हरिनामु विसारिआ मन मूरख मिलै सजाइ।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 85)

पलटू साहिब भी संकेत करते हैं कि जिस पण्डित ने सारा ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु अपने आपको न पहचाना, उसके ज्ञान का एक कौड़ी भी मूल्य नहीं। सच्चा पण्डित वह है जो लोगों को उपदेश देने की अपेक्षा मन व इन्द्रियों को वश में करके आत्मा की पहचान करता है :

पढ़ि पढ़ि क्या तुम कीन्हा पंडित, अपना रूप न चीन्हा॥
औरन को तुम ज्ञान बताऔ, तुमको परै न बूझी।
जस मसालची सबहिं दिखावै, वा को परै न सूझी॥
अपनी खबर नहीं है तुमको, औरन को परबोधो।
पढ़ना गुनना छोड़ि के पाँडे, अपनी काया सोधो॥
इन्द्रियन से आजिज तुम रहते, इन्द्री मार गिराओ[1]।
माया खातिर बकि बकि मरते, मन अपनो समुझाओ॥
बुद्धि मंहै परबीन[2] चतुर हो, खाँड धूरि में सानौ।
पलटूदास कहै सुनु पाँडे, बचन हमारा मानौ॥

(पलटू साहिब की बानी, भाग 3, शब्द 99)

साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि संसार में परमात्मा की प्राप्ति की बहुत चर्चा है। विद्वानों ने संसार में शोर मचा रखा है। ऐसी दशा में लोगों को सत्य का पता व ठिकाना कैसे लग सकता है :

होर ने सभों गल्लड़ीआं अल्लाह अल्लाह दी गल्ल।
कुझ रौला पाया आलमां कुझ कागज़ां पाया झल्ल।

कबीर साहिब कहते हैं कि ग्रन्थों-शास्त्रों की कागज़ की कोठरी को कर्मकाण्ड की सियाही के ताले लगे हुए हैं। पत्थरों की मूर्तियों ने संसार को भ्रमों की नदी में डुबो दिया है और ब्राह्मणों ने लोगों को लूट कर खा लिया है। इस बात की आवश्यकता है कि मानव इस भ्रम-जाल को तोड़ कर मन को परमात्मा के चरण-कमलों से जोड़े :

कबीर कागद की ओबरी मसु के करम कपाट।
पाहन बोरी पिरथमी पंडित पाड़ी बाट।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1371)

---

1. तू इन्द्रियों का मारा हुआ है; तू इन्द्रियों (विषयों-विकारों) को वश में कर।
2. समझदार।

कबीर संसा दूरि करु कागद देह बिहाइ।
बावन अखर सोधि कै हरि चरनी चितु लाइ।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1373)

पलटू साहिब कहते हैं कि पण्डित व पुरोहित ग्रन्थों की गूढ़ टीका करते हैं परन्तु स्वयं मन और माया के हाथों बिके हुए हैं। उन्होंने स्वयं कभी दैवी प्रकाश की एक किरण भी नहीं देखी, परन्तु दूसरों को परमात्मा से मिलाप करने का उपदेश देते रहते हैं। वे इस भ्रम के शिकार हैं कि शायद कागज़ों में ही परमात्मा मिल जायेगा :

बेद पुरान पंडित बाँचै, करता अपनी दुकान है जी।
अरथ को बूझि के टीका करै, माया मन बिकान है जी।
औरन को परबोध करै, खाली अपना मकान है जी।
पलटू कागद में खोजत है, साहिब कहीं लुकान है जी।

(पलटू साहिब की बानी, भाग 2, झूलना 59)

बाहरमुखी विद्या या मन और बुद्धि परमात्मा की प्राप्ति का साधन नहीं हैं, 'सहस सिआणपा लख होहि त इक ना चलै नालि' (गुरु नानक-जपुजी)। मन और बुद्धि के प्रयत्न और वेदों-शास्त्रों, ग्रन्थों-पोथियों का पाठ परमात्मा से मिलाने के स्थान पर अहं की मैल में वृद्धि करके परमात्मा से और अधिक दूर ले जाता है :

मन हठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार।
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 62)

मन और बुद्धि सीमित हैं जो उस असीम दयालु प्रभु की प्राप्ति का साधन नहीं बन सकते[1]। ग्रन्थ-शास्त्र सन्तों-महात्माओं द्वारा प्राप्त किए रूहानी अनुभव बयान करते हैं। हमारा कल्याण दूसरों के रूहानी अनुभव पढ़ने से नहीं, स्वयं वह अनुभव प्राप्त करने में है। प्यास पानी पीने से बुझती है, पानी की महिमा के सुन्दर वर्णन पढ़ने से नहीं।

---

1. अकल गो आस्तां से दूर नहीं।
इसकी तकदीर में हज़ूर नहीं। (डॉ. इकबाल)

विद्या, विवेक और करनी

साईं जी कहते हैं कि ज्ञान का वास्तविक कार्य हमारी विवेक शक्ति में वृद्धि करना है। ज्ञान झूठ और सत्य, गलत और सही, भले और बुरे में अन्तर करना सिखाता है परन्तु वे विद्वान जो स्वयं को आँखों वाले होने का दावा करते हैं, वास्तव में अकल के अँधे हैं। वे भले-बुरे, गुरुमुख-मनमुख की पहचान नहीं कर सकते, जिस कारण वे अपने लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ लेते हैं। जिस विद्या से आशा-तृष्णा शान्त होने के स्थान पर ईर्ष्या की अग्नि अधिक प्रचण्ड हो जाये या जो विद्या ईमानदारी के स्थान पर पराये धन में नीयत रखना सिखाये, परमात्मा ऐसी विद्या से प्रसन्न नहीं होता। वह तो सन्तोष और ईमानदारी पर प्रसन्न होता है, तृष्णा और बेईमानी की लपटें भड़काने वाली विद्या पर नहीं। मन के खोटे विद्वानों की अपेक्षा पवित्र हृदय वाले और अनपढ़ हज़ार दर्जे अच्छे हैं :

1. इल्मों पए कज़ीए होर, अक्खां वाले अन्ने कोर।
   फड़े साध ते छड्डे चोर, दोहीं जहानी होया खुआर।
   इल्मों बस करीं ओ यार।
2. पढ़ पढ़ मुल्लां होए काज़ी, अलह इल्मां बाझों राज़ी।
   होवे हिरस दिनो-दिन ताज़ी, नफ़ा नीअत विच गुज़ार।
   इल्मों बस करीं ओ यार।

गुरु नानक साहिब ने भी समझाया है कि विद्वान द्वारा किये गए पापों की सज़ा उसको स्वयं भोगनी पड़ती है, अनपढ़ साधू को नहीं। उस दरगाह में करनी देखी जाती है, विद्या नहीं :

पड़िआ होवै गुनहगारु ता ओमी साधु न मारीऐ।
जेहा घाले घालणा तेवेहो नाउ पचारीऐ।
ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ।
पड़िआ अतै ओमीआ वीचारु अगै वीचारीऐ।
मुहि चलै सु अगै मारीऐ। (आदि ग्रन्थ, पृ. 469)

प्रसिद्ध सूफ़ी दरवेश ख़्वाजा अबू इस्माइल अब्दुल्ला अनसारी (1005-1090) लिखते हैं : एक मनुष्य सत्तर वर्ष विद्या ग्रहण करता रहता है, परन्तु

अन्दर ज्योति प्रकट नहीं कर सकता। दूसरा इनसान सारी उम्र कुछ नहीं सीखता। वह केवल एक शब्द या कलमा सुनता है और उस शब्द या कलमे में ही लीन हो जाता है। इस मार्ग पर तर्क-वितर्क कुछ नहीं करता। आप तलाश करें तो शायद आपको हकीकत के दर्शन हो जायेंगे।[1]

ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि भक्ति-विहीन विद्वानों का उपदेश न सुनना अच्छा है। ऐसे उपदेशकों की सभा से कन्नी काट कर मयखाना (भाव कामिल मुर्शिद के सत्संग) में जाना चाहिये।[2]

उस सच्ची दरगाह में विद्या का नहीं वरन् अमल का मान है। वह परमात्मा अनपढ़, आमिलों, साधकों और आशिकों को अपने पास बिठाता है परन्तु जिन विद्वानों के अमल उनकी विद्या के अनुकूल नहीं, उनको दूर ही रखता है :

बुल्लिआ हरिमंदर में आए के, कहे लेख दिउ बता।
पढ़े पंडित पांधे दूर कीए, अहिमक लीए बुला।

जिस पण्डित के अपने घर में विकारों की आग लगी हुई है और वह दूसरों को उपदेश करता है, वह कभी भी आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता :

1. पड़ि पंडितु अवरा समझाए। घर जलते की खबरि न पाए।
(आदि ग्रन्थ, पृ. 1046)
2. अवर उपदेसै आपि न करै। आवत जावत जनमै मरै।
(वही, पृ. 269)

आध्यात्मिकता में सफलता की कुंजी मन की कोमलता, हृदय की विशालता, प्रीति-प्रतीति और नम्रता है। इसमें मन-मत को त्याग कर गुरु के कथनानुसार चलना पड़ता है और मन-मर्जी त्याग कर कुल मालिक की रज़ा और भाणे में आना पड़ता है। इसके विपरीत वाचक ज्ञान अहंकार, द्वैत, वाद-विवाद और घृणा पैदा करके मन को गन्दा कर देता है। साईं जी

---

1. The Persian Mystics : Ansari; p. 36. (Tr. by Sardar Sir Jogindra Singh)

2. अनां बमैकदा ख़ाहेम ताफ़त ज़ीं मजलिस,
कि वाअज़े बेअमलां वाजब अस्त ना शुनीदन।

संकेत करते हैं कि हुक्म न मानने वाला और अहं पैदा करने वाली विद्या लाभ के स्थान पर हानि का कारण बनती है :

बहुता इल्म अज़ाज़ील ने पढ़िया, झुग्गा झाहा उसे दा सड़िया।
गल विच तौक लाअनत दा पढ़िया, आख़िर गया ओह बाज़ी हार।
इल्मों बस करीं ओ यार।

धर्म-ग्रन्थों का वास्तविक उद्देश्य हमें वाचक-ज्ञानी या विद्वान बनाना नहीं, आलिम और साधक बनाना है। साईं बुल्लेशाह ने एक नहीं बल्कि अनेक काफ़ियों में इस बात पर ज़ोर दिया है कि परमात्मा के घर पहुँचने के लिये परमात्मा, सतगुरु और शब्द के प्रेम के एक 'अलिफ़' को छोड़ किसी दूसरी 'बे', 'पे' या 'ते' की आवश्यकता नहीं :

1. इक नुकता यार पढ़ाया है।
2. इक अलिफ़ पढ़ो छुटकारा है।
3. इल्मों बस करीं ओ यार। इक्को अलफ़ तेरे दरकार।

वाचक ज्ञान और सहज ज्ञान

संसार के सब सन्त-महात्मा इस एक अलिफ़ के अमल को हर प्रकार की विद्या से बड़ा मानते हैं। इस अमल से आन्तरिक सहज ज्ञान के अथाह ख़ज़ाने खुल जाते हैं। इस विद्या में एक अलिफ़ (परमात्मा) और एक मीम (सतगुरु) के बिना दूसरी किसी वस्तु की आवश्यकता ही नहीं :

बुल्ला न राफ़जी न है सुंनी, आलम फ़ाजल न आलम जुंनी।
इक्को पढ़िआ इल्म लुदंनी[1], वाहद अलफ़ मीम दरकार।

हुज़ूर स्वामीजी महाराज द्वारा की गई विद्या और सुरत-शब्द के अभ्यास की परस्पर तुलना को इस विषय पर अन्तिम निर्णय कहा जा सकता है। आप फ़रमाते हैं कि रूहानियत में सहायता करने वाली वस्तु विद्या या अविद्या नहीं, परमात्मा तथा उसके नाम का सच्चा प्रेम है। प्रेम-भक्ति और सुरत-शब्द की साधना द्वारा अन्तर में घट की पोथी पढ़ने और

---

1. आन्तरिक समाधि की अवस्था से प्राप्त होने वाले सहज ज्ञान को इल्मे लुदंनी कहा जाता है जो लिखने, पढ़ने और बोलने का विषय नहीं है।

साक्षात् रूहानी अनुभव प्राप्त करने के मुकाबले में ग्रन्थों-शास्त्रों के वाचक ज्ञान का एक कौड़ी भी मूल्य नहीं :

हे विद्या तू बड़ी अविद्या। संतन की तैं क़दर न जानी॥
उनकी प्रेम अनुभवी बानी। तू बुद्धी संग रहत खपानी॥
बानी बन में रहे भुलाने। पढ़ पढ़ पोथी जन्म बितानी॥
बाहरमुखी ग्रन्थ नित पढ़ते। घट की पोथी पढ़ें न पढ़ानी॥
संत गगन में सुरत चढ़ावें। वे सुनते नित व्हाँ की बानी॥
संत न विद्या पढ़ते कोई। उनके अनुभव समुंद समानी॥
सब परकार प्रेम की महिमा। विद्या अविद्या दोनों हानी॥
जिनका प्रेम शब्द में नाहीं। उनको विद्या ख़्वार करानी॥
कथनी बदनी काम न आवे। भक्ति बिना जम के सहे डानी॥
शब्द कमाई करो प्रेम से। राधास्वामी कहत बखानी॥

(सार बचन, बचन 24 : शब्द 3)[1]

एक सूफ़ी दरवेश कहता है कि अपने दिल की पुस्तक पढ़ो, इससे अच्छी कोई अन्य पुस्तक नहीं, 'दर मसहफ़े दिले खुद बीं कि किताबे बअज़ी नेस्त।' दादू साहिब लिखते हैं कि लोग सुनी-सुनाई बाते करते हैं परन्तु मैं आन्तरिक आँख से देखी हकीकत बयान करता हूँ :

दादू देखा दीदा, सब कोई कहत शुनीदा।

संसार के महान ग्रन्थ वाचक-ज्ञानियों ने नहीं, अन्दर जाकर सत्य के साक्षात् दर्शन करने वाले महापुरुषों ने रचे हैं। उनके ग्रन्थ आन्तरिक निजी अनुभव पर आधारित हैं, ग्रन्थों-शास्त्रों के पाठ-विचार पर नहीं। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं कि संसार के सब वेद-शास्त्र राम-नाम की लिव से निकले हैं :

बेद पुरान सिंमृति सुधाख्यर। कीने राम नाम इक आख्यर।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 262)

हज़रत सुलतान बाहू कहते हैं कि चौदह तबकों, कुरान शरीफ़ और सब दूसरी रूहानी पुस्तकें उस कलमे, शब्द या नाम में शामिल हैं जो

---

1. इस शब्द की 41 पंक्तियों में से केवल दस पंक्तियाँ ही यहाँ दी गई हैं।

लिखने, पढ़ने और बोलने का विषय नहीं है :

अलफ़ अंदर कलमा कल कल करदा, इश्क सिखाया कलमा हू।
चौदह तबक कलमे दे अंदर, कुरान किताबां इल्मां हू।

आप आलमों और परमात्मा के सच्चे आशिकों की तुलना करते हुए कहते हैं :

पढ़ पढ़ इल्म हज़ार किताबां, आलम होए सारे हू।
इक हरफ़ इश्क दा न पढ़ जानन, भूले फिरन विचारे हू।
इक निगाह जे आशिक देखे, लख हज़ारां तारे हू।
लख निगाह जे आलम देखे, किसे न कंधी चाढ़े हू।
इश्क शरा विच मंज़िल भारी, सैआं कोहां दे पाड़े हू।
इश्क न जिन्हां खरीदिआ बाहू, दोहीं जहानी माड़े हू।

साईं बुल्लेशाह ने सतगुरु से यही एक पाठ पढ़ा जिससे आत्मा अद्वैत के समुद्र की तैराक हो गई :

जद मैं सबक इश्क दा पढ़िआ, दरिया वेख वहदत दा वड़िआ।
घुंमन घेरा दे विच अड़िआ, शाह अनाइत लाया पार।

विद्या के विषय में उपरोक्त विचारों से यह ख़याल नहीं बनना चाहिये कि कामिल मुर्शिद धर्म-ग्रन्थों के पाठ-विचार के विरुद्ध हैं। सन्तों-महात्माओं ने स्वयं जीवन के अनेक अमूल्य वर्ष व्यतीत करके हमारे लाभ के लिये धर्म-ग्रन्थों की रचना की है। परन्तु इन ग्रन्थों में ही उन्होंने लिखा है कि हमारा छुटकारा धर्म-ग्रन्थों के पाठ-विचार से नहीं, परमात्मा की सच्ची भक्ति, सच्चे प्रेम और कलमे या शब्द की कमाई से होगा। एक लम्बी व अँधेरी सुरंग में बैठा मनुष्य चाहे सारी आयु सूर्य के प्रकाश की महिमा के गुणगान करता रहे, उसको उसका कोई अमली लाभ नहीं है। अमली लाभ सुरंग से बाहर निकल कर सूर्य के प्रकाश में आने से मिलेगा। परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास रख कर सारी आयु ग्रन्थों-शास्त्रों में उसकी महिमा पढ़ते रहने का कोई अमली लाभ नहीं होगा। परमात्मा में विश्वास होने और ग्रन्थों-शास्त्रों में उसकी महिमा पढ़ने का वास्तविक लाभ परमात्मा से मिलाप करके ही हो सकता है।

खोज की दृष्टि से, सत्य के विषय में जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि

से, शंका, भ्रम-निवारण करने और रूहानियत के विषय में सैद्धान्तिक जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से ग्रन्थों-शास्त्रों की भारी महिमा है परन्तु इनसे प्राप्त हुए ज्ञान का वास्तविक लाभ तभी है जब हम इस ज्ञान के अनुसार जीवन को ढालें और जिस सत्य का इनमें वर्णन है, उसका साक्षात् दर्शन कर लें।

धर्म-ग्रन्थों और रूहानी सिद्धान्तों का ज्ञान हमारी प्रारम्भिक अवस्था है, अन्तिम नहीं। विज्ञान के सिद्धान्त, प्रयोगों में ढल कर ही सत्य का रूप धारण करते हैं। इसलिये सन्तों-महात्माओं ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि ग्रन्थों-शास्त्रों में वर्णित ज्ञान दूसरों का अनुभव है, परन्तु हमारे लिये केवल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को रूहानी अभ्यास द्वारा अपने लिये ठीक सिद्ध करना ही हमारा वास्तविक उद्देश्य है।

[illegible]

कर्मकाण्ड और आध्यात्मिकता

इश्क शरा की नाता

इश्क हकीकी ने मुट्ठी कुड़े, मैनूं दस्सो पिया का देस।
मापियां दे घर बाल इआणी, प्रीत लगा कर लुट्टी कुड़े।
मनतक[1] मअने कंनज़ कदूरी[2], मैं पढ़-पढ़ इलम विगुची कुड़े।
नमाज़ रोज़ा ओहनां की करना, जिन्हां प्रेम सुराही लुट्टी कुड़े।
बुल्ला शहु दी मजलस बहि के, सभ करनी मेरी छुट्टी कुड़े।

सच्ची आध्यात्मिकता के निष्पक्ष खोजी के लिये आवश्यक है कि कामिल फ़कीरों द्वारा की गई शरीयत या कर्मकाण्ड की आलोचना को अपनी बन चुकी धारणाओं से मुक्त होकर उदार हृदय से विचार करें ताकि उसको असलियत की तह तक पहुँचने में कठिनाई न हो।

संसार में अनगणित कर्मकाण्ड प्रचलित हैं। हर धर्म अपने कर्मकाण्ड को उत्तम मानता है। परन्तु कामिल फ़कीर समदर्शी होते हैं। हज़रत जुनैद कहते हैं कि परमात्मा की दया से अद्वैत में पहुँच चुका ब्रह्मज्ञानी धरती के समान है, जिस पर अच्छे और बुरे, सब लोग एक तरह चल फिर सकते हैं। वे उन बादलों के समान हैं जो सब पर एक जैसी छाया करते हैं। वे उस वर्षा-जल के समान हैं जो किसी भेद-भाव के बिना सब पर एक जैसा बरसता है।[3] कुल मालिक सारे संसार के लिये है। वह रब्बुल आलमीन है। परमात्मा का रूप बन चुके कामिल फ़कीर भी लोगों के सर्व-हितैषी होते हैं, इसलिये वे किसी विशेष धर्म के कर्मकाण्ड से नहीं बँध सकते।

---

1. दलील बाज़ी, तर्क-वितर्क 2. इस्लामी फिकाअ की पुस्तक।
3. **History of Sufism in India, Vol. I, pp. 56-57.**

कामिल फ़कीर परमात्मा से मिलाप के सच्चे मार्ग की सराहना करने के लिये और अधूरे या गलत मार्ग की आलोचना करने के लिये विवश होते हैं ताकि लोग गलती का शिकार होकर मनुष्य-जन्म के अमूल्य अवसर को व्यर्थ न खो दें। वे जन-कल्याण के लिये अनेक प्रकार के संकट झेल कर भी सत्य की मशाल जलाते हैं। साईं जी संसार की संकीर्णता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि लोग सत्य को प्रकट करने वाले फ़कीरों के रक्त के प्यासे हो जाते हैं, परन्तु फ़कीर संकेत से या स्पष्टता से सत्य का वर्णन करने के लिये विवश होते हैं ताकि हकीकत के जिज्ञासुओं को असलियत का संकेत मिल जाये :

1. झूठ आखां तां कुझ बचदा ए, सच्च आखिआं भांबड़ मचदा ए।
   जी दोहां गल्लां तों जचदा ए, जच जच के जिह्वा कहिंदी ए।
   मुँह आई बात न रहिंदी ए।
2. जे ज़ाहर करां असरार[1] ताईं, सभ भुल्ल जावन तकरार[2] ताईं।
   फिर मारन बुल्ले यार ताईं, एथे मख़फ़ी[3] बात सुहेंदी ए।

साईं जी की कर्मकाण्ड की सबसे कड़ी आलोचना इस प्रकार है :

भट्ठ नमाजां चिकड़ रोज़े कलमे ते फिर गई सिआही।
बुल्ले नूं शहु अंदरों मिलिआ, भुल्ली फिरे लोकाई।

कर्मकाण्ड और रूहानी सत्य दोनों के पूर्ण ज्ञाता द्वारा की गई इस आलोचना को पल भर के लिये एक ओर रख कर यह सोचना चाहिये कि सब लोग परमात्मा की प्राप्ति के लिये ही सारी आयु मन्दिरों, मसजिदों, गिरजा-घरों आदि की पूजा-पाठ, अरदास, आरती, नमाज़ आदि करते हैं। हम इस उद्देश्य के लिये ही तीर्थ-यात्रा या हज करते हैं, रोज़े या व्रत रखते हैं और अनेक प्रकार के जप-तप, दान-पुण्य, ग्रन्थों-शास्त्रों के पाठ तथा कई हठ कर्म करते हैं। क्या हमें कभी इन साधनों द्वारा दैवी प्रकाश की एक किरण भी दिखाई दी है या हमारी आत्मा तनिक अन्दर की ओर गई है ? इसके विपरीत साईं जी कहते हैं, 'बुल्ले नूं शहु अंदरों मिलिआ।' आप सत्य के सच्चे प्रेमियों को समझाते हैं कि परमात्मा भी अन्दर है,

---

1. भेद 2. झगड़े 3. गुप्त, छिपा कर या संकेत से की गई बात।

उसके मिलने का मार्ग और साधन भी अन्दर है। यह मार्ग या साधन हर धर्म के हर प्रकार के कर्मकाण्ड से मुक्त है। आप कहते हैं कि जब तक मन साफ़ नहीं होता और प्रभु से मिलाप नहीं होता, हमारी दिखावे की धार्मिक रहनी का क्या लाभ है ?

उम्र गवाई विच मसीतीं, अंदर भरिया नाल पलीती।
कदे नमाज़ तौहीद न कीती, हुन की करना एं शोर पुकार।
इश्क दी नवीओं नवीं बहार।

एक जर्मन विद्वान लिखता है कि जब कोई सत्य का जानकार हमारी किसी पुरानी कमज़ोरी की ओर संकेत करता है तो हमारे अन्दर ज़बरदस्त रोष पैदा होता है। हम अहम् वश यह सोच नहीं सकते कि हम सचमुच वर्षों गलती का शिकार रहे हैं। अपने अहम् और अज्ञान के कारण हम ज्ञानी की सही बात को भी गलत सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। इसके विपरीत जो लोग ज्ञानी के सच्चे वचनों का वार सहन करके विवेक से काम लेते हैं, उनके अन्दर गलती का अहसास पश्चात्ताप में, पश्चात्ताप गलती के त्याग में और सत्य को धारण करने की दिलेरी में बदल जाता है। इस प्रकार वह व्यक्ति अँधकार से प्रकाश में पहुँच जाता है।

सन्त-महात्मा, कामिल फ़कीर या सच्चे ब्रह्मज्ञानी उस डाक्टर के समान हैं जो जीव के मन पर बने हुए अज्ञान के फोड़े पर नश्तर लगाने के लिये विवश होते हैं। जो लोग यह नश्तर सहन कर लेते हैं उनके अन्दर से गन्दा मादा निकल जाता है, जिसके बाद सतगुरु ज़ख्म पर परमात्मा के प्रेम का मरहम लगा कर उसको सदा के लिये आरोग्य कर देते हैं। यही कारण है कि केवल सूफ़ी फ़कीरों ने ही नहीं, सन्त नामदेव, कबीर साहिब, गुरु नानक साहिब, दादू साहिब, पलटू साहिब, तुलसी साहिब और हुज़ूर स्वामीजी महाराज आदि अनेक सन्तों ने संसार के अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों की आलोचना की है।

इन सब पूर्ण सन्तों-महात्माओं की भाँति साईं जी की कर्मकाण्ड की आलोचना का वास्तविक उद्देश्य विरोध, ईर्ष्या या निन्दा नहीं, परन्तु लोगों का रूहानी हित है। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि परमात्मा के सच्चे भक्त चौथे पद अर्थात् सचखण्ड का भेद खोलते हैं, 'गल चौथे पद दी

खोलहे हैं।' उनके अन्दर से सत्य की सुगन्ध बरबस बाहर निकलती है। अज्ञानी लोग उनकी ऊँची रूहानी अवस्था को तो समझ नहीं सकते, उनकी जान के दुश्मन अवश्य बन जाते हैं, 'सच्च कहीए तां गल पैंदे नी।' आप कहते हैं कि प्रियतम के मिलाप की माला गूँथ चुकी सच्ची सुहागिन वहमों, भ्रमों आदि के माया-जाल से मुक्त हो जाती है। अज्ञानी की बड़ी निशानी ही यह है कि वह ज्ञानी को अज्ञानी समझता है। आप कहते हैं कि सन्तों-महात्माओं की बात सुन कर सच्चे प्रेमियों के हृदय फूल की तरह खिल उठते हैं परन्तु आध्यात्मिक भेदों से अनभिज्ञ कर्मकाण्डों के कैदी लोग, सन्तों का विरोध करने के लिये मैदान में कूद पड़ते हैं :

चुप्प करके करीं गुज़ारे नूं।
सच्च सुन के लोक न सहिंदे नीं, सच्च आखीए तां गल पैंदे नी।
फिर सच्चे पास न बहिंदे नी, सच्च मिट्ठा आशिक प्यारे नूं।
सच्च शरा करे बर्बादी ए, सच्च आशिक दे घर शादी ए।
सच्च करदा नईं आबादी ए, जिहा शरा तरीकत हारे नूं।
चुप्प आशिक तों न हुंदी ए, जिस आई सच्च सुगन्धी ए।
जिस माहल सुहाग दी गुंदी ए, छड्ड दुनियां कूड़ पसारे नूं।
बुल्ला शाह सच्च हुन बोले हैं, सच्च शरा तरीकत फोले हैं।
गल्ल चौथे पद[1] दी खोले हैं, जिहा शरा तरीकत हारे नूं।
चुप्प करके करीं गुज़ारे नूं।

---

1. चौथा पद सन्तों-महात्माओं की सबसे ऊँची रूहानी अवस्था का नाम है, जहाँ आत्मा परमात्मा में समा जाती है। सन्तों ने तीनों गुणों की रचना को भ्रमों की घाटी कहा है और चौथे पद को विशुद्ध हकीकत का देश कहा है। साईं जी तीनों गुणों की रचना को कूड़ का पसारा कहते हैं, 'छड्ड दुनिया कूड़ पसारे नूँ।' आप चौथे पद को हकीकत की घाटी कहते हैं। गुरु अमरदास जी कहते हैं कि तीनों गुण भ्रमों से भरे हुए हैं। सहज अवस्था सतगुरु की कृपा द्वारा चौथे पद में जाकर मिलती है :

त्रिहु गुणा विचि सहजु न पाईऐ त्रै गुण भरमि भुलाइ।
पड़ीऐ गुणीऐ किआ कथीऐ जा मुँढहु घुथा जाइ।
चउथे पद महि सहजु है गुरमुखि पलै पाइ।

(आदि ग्रन्थ पृ. 68)

(शेष पृ. 169 पर)

साईं बुल्लेशाह कहते हैं :

शरीअत साडी दाई है, तरीकत साडी माई है।
अग्गों हक्क हकीकत आई है, ते मार्फ़तों कुछ पाया है।

आपका अभिप्राय है कि प्रत्येक मनुष्य का जन्म किसी न किसी विशेष धर्म में होता है। उसको उसकी धर्म विधियाँ उत्तराधिकार में मिलती हैं। परन्तु रूहानी विकास के लिये आवश्यक है कि मनुष्य दाई से माई की गोद में जायें और इससे आगे बढ़े अर्थात उसके लिये आवश्यक है कि वह सन्तोष, क्षमा, सहनशीलता आदि नेक गुणों को धारण करता हुआ अमली रूहानी अभ्यास की ओर ध्यान दे और कलमे की कमाई के मार्ग पर उन्नति करता हुआ अहम् या मन को त्याग कर हकीकत में समा जाये। गुरु नानक साहिब ने 'जपुजी' में पाँच खण्डों का वर्णन करते हुए और सूफ़ी दरवेशों ने नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत और हूत में आत्मा की चढ़ाई का वर्णन बयान करते हुए जीव के तरीकत और मारिफ़त की सहायता से हकीकत में पहुँचने का संकेत दिया है। कर्मकाण्ड पूरने या पहाड़े के समान है। इसका वास्तविक मनोरथ धार्मिक और पारलौकिक वृत्ति पैदा करना है, परन्तु सत्य की प्राप्ति का साधन हृदय की निर्मलता और शब्द की कमाई है।

गुरु अर्जुन साहिब ने अपने शब्द 'अलह अगम खुदाई बंदे' में समझाया है कि मालिक के सच्चे भक्तों की शरीयत धार्मिक लोगों की शरीयत से बिलकुल अलग प्रकार की होती है। मालिक के प्रेमी सत्य की नमाज़ पढ़ते हैं और मन रूपी मौलाना को देह रूपी मसजिद में खड़ा

(पृ. 168 का शेष भाग)

कबीर साहिब फ़रमाते हैं कि सन्त-जन चौथे पद के निवासी होते हैं और उनका रखवाला उस धाम का स्वामी वह कुल मालिक परमात्मा होता है :

कहि कबीर हमरा गोबिंदु।
चउथे पद महि जन की जिंदु। (आदि ग्रन्थ, पृ. 871)

हुज़ूर स्वामीजी महाराज संकेत करते हैं कि वह प्रभु जो शब्द या नाम रूप है, चौथे पद का रहने वाला है :

तीन लोक में बसता काल। चौथे में रहे नाम दयाल॥
(सार बचन, बचन 38 : मास तीसरा)

करके अन्दर परमात्मा के सच्चे कलमे से जोड़ते हैं। ऐसे प्रेमियों की तरीकत अन्दर कुल मालिक की खोज करना है। उनकी मारिफ़त मन-इन्द्रियों को वश में करना है और हकीकत परमात्मा के साथ मिलाप करके आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाना है। दया व मेहर ऐसे सच्चे आशिकों का मक्का है, नम्रता रोज़ा है और मुर्शिद की आज्ञा का पालन करना उनका बहिश्त है। परमात्मा की महिमा, सब्र, शुक्र, नम्रता, दया और पाँचों विकारों को जीतना, उनकी पाँच नमाज़ें हैं। उनकी मुसलमानी दिल की कोमलता और दुनिया के इश्क के स्थान पर परमात्मा के इश्क में लीन होना है :

सचु निवाज यकीन मुसला। मनसा मारि निवारिहु आसा।
देह मसीति मनु मउलाणा कलम खुदाई पाकु खरा।
सार सरीअति ले कंमावहु। तरीकति तरक खोजि टोलावहु।
मारफति मनु मारहु अबदाला।
मिलहु हकीकति जितु फिरि न मरा।
कुराणु कतेब दिल माहि कमाही। दस अउरात रखहु बदराही[1]।
पंच मरद सिदकि ले बाधहु। खैरि सबूरी कबूल परा[2]।
मका मिहर रोजा पैखाका। भिसतु पीर लफ़ज कमाइ अंदाजा।
हूर नूर मुसकु खुदाइआ। बंदगी अल्लाह आला हुजरा[3]।
सचु कमावै सोई काजी। जो दिलु सोधै सोई हाजी।
सो मुल्ला मलऊन निवारै[4]। सो दरवेसु जिसु सिफति धरा।
सभे वखत सभे करि वेला। खालकु यादि दिलै महि मउला।
तसबी यादि करहु दस मरदनु। सुंनति सीलु बंधानि बरा[5]।
अवलि सिफति दूजी साबूरी। तीजै हलेमी चउथै खैरी।

---

1. दस इन्द्रियों को वश में करना अन्दर कुरान शरीफ़ की शिक्षा पर अमल करना है 2. पाँचों विकारों को दूर करके अन्दर शुभ गुण पैदा करो 3. परमात्मा के नूर का अन्तर में मिलना हूरें (अप्सराओं) के मिलने से अच्छा है, और अन्तर में भक्ति करना ही उत्तम मन्दिर या मसजिद में जाना है 4. असल मौलाना वही है जो शैतान या अहम् को मारता है 5. खुदा की याद सच्ची तसबी है। दस इन्द्रियों को मार कर संयमी हो जाना सच्ची सुन्नत है।

पंजवै पंजे इकतु मुकामै एहि पंजि वखत तेरे अपर परा।
... ...
हकु हलालु बखोरहु खाणा। दिल दरिआउ धोवहु मैलाणा।
पीरु पछाणै भिसती सोई अजराईलु न दोज ठरां।
मुसलमाणु मोम दिलि होवै। अंतर की मलु दिल ते धोवै।
दुनिया रंग न आवै नेड़ै जिउ कुसम पाटु घिउ पाकु हरा[1]।
कुदरति कादर करण करीमा। सिफति मुहबति अथाह रहीमा।
हकु हुकमु सचु खुदाइआ बुझि नानक बंदि खलास तरा।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1083)

प्रसिद्ध सूफ़ी शेख गुजदवानी सच्चे सूफ़ी साधक के लिये जो आदेश देते हैं, उनमें सम्पूर्ण जीवन को ऐसी कठिन साधना के अधीन किया गया है कि संसार के कठोर से कठोर कर्मकाण्ड का रंग उसके सामने पीला पड़ जाता है। ये आठ हिदायतें इस प्रकार हैं:

1. **होश दर दम** : प्रत्येक साँस परमात्मा की विद्यमानता को अनुभव करते हुए लेना।

2. **नज़र बर क़दम** : प्रत्येक कदम परमात्मा की विद्यमानता को अनुभव करते हुए उठाना।

3. **सफ़र दर वतन** : सदा निज घर वापस जाने का ध्यान रखना।

4. **खिलवत दर अंजमन** : संसार में रहते हुए अन्दर अकेले रहना और सदा ज़िकर या सुमिरन में लगे रहना।

5. **याद करद** : जिह्वा या आत्मा की ज़बान से सदा सुमिरन करते रहना।

6. **बाज़ गश्त** : मन को अच्छे-बुरे ख़यालों से पवित्र रखते हुए सुमिरन में लगे रहना।

---

1. जिस प्रकार फूल, रेशम, घी और मृगछाला कभी अपवित्र नहीं होते, सच्चा मुसलमान वह है जो दिल को संसार की अपवित्रता से बचा कर रखे।

अधिक विस्तार के लिये देखिये : 'सन्तमत प्रकाश, भाग चार' में इस शब्द की हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी द्वारा की गई सत्संग में व्याख्या।

7. निगाह दाश्त : बुरे ख़यालों को मन में दाखिल होने से रोकना।

8. याददाश्त : सदा परमात्मा की उपस्थिति में होने का जीवित अहसास होना।[1]

इसके विपरीत व्यवसायी और स्वार्थी लोग भोले-भाले लोगों को अनेक प्रकार के भ्रमों में फँसा कर सच्ची रूहानियत से गुमराह कर देते हैं। साईं जी के कलाम और सूफ़ी साहित्य में ही नहीं, बल्कि सारे रूहानी साहित्य में आपकी काफ़ी 'गल रौले लोकां पाई ए' विशेष महत्व रखती है :

गल्ल रौले लोकां पाई ए।
सच्च आख मनां क्यों डरना ए, इस सच्च पिछ्छे तूं तरना ए।
सच्च सदा अबादी करना ए, सच्च वसत अचम्भा आई ए।
ब्राह्मण आन जजमान डराए, पितर पीड़ दस भर्म दुड़ाए।
आपे दस्स के यत्न कराए, पूजा शुरू कराई ए।
पितर तुसां दे उपर पीड़ा, गुड़ चावल मंगाओ लीड़ा।
जंजू पाओ लाहो बीड़ा, चुल्ली तुरत पवाई ए।
पीड़ नहीं ऐवें निकलन लग्गी, रोक रुपया भांडे ढग्गी।
होवे लाखी दरुस्त न बग्गी, बुल्ला इह बात बनाई ए।
प्रथम जंडी मात बनाई, जिस नूं पूजे सर्ब लोकाई।
पाछे वड्ड के जंज चढ़ाई, डोली ठुम ठुम आई ए।
भुल खुदा नूं जान खुआई, बुत्तां अग्गे सीस निवाई।
जिहड़े घड़ के आप बनाई, शर्म रत्ता न आई ए।
वेखो तुलसी मात बनाई, सालग रामी संग परनाई।
हस हस डोली चा चढ़ाई, साला सहुरा बने जवाई ए।
धीआं भैणां सभ विआहवण, परदे अपने आप कजावण।
बुल्ला शाह की आखण आवण, न माता किसे विआही ए।
शाह रग थीं रब दिसदा नेड़े, लोकां पाए लम्बे झेड़े।
वां के झगड़े कौन नबेड़े, भज भज उमर गवाई ए।
वृक्ष बाग विच नहीं जुदाई, बंदा रब्ब तिवें बन आई।
पिछले सोते ते खिड़ आई, दुविधा आन मिटाई ए।

1. History of Sufism in India, Vol. I, pp. 95-96.

बुल्ला आपे भुल भुलाया, आपे चिल्लिआ विच दबाया।
आपे होका दे सुनाया, मुझ में भेत न काई ए।
गरम सर्द हो जिसनूं पाला, हरकत कीता चिहरा काला।
तिस नूं आखण 'जी सुखाला', इस दी करो दवाई ए।
अक्खियां पक्किआं आखण 'आईआं',
अलसी सुखके आउणी माईआं।
आपे भुल गईआं हुन साईआं, हुन तीर्थ पास सुधाई ए।
पोसती आखे मिले अफीम, बंदा भाले कादर करीम।
न कोई दिस्से ज्ञान हकीम, अकल तुसाडी जाई ए।
जो कोई दिसदा ओहो प्यारा, बुल्ला आपे वेखणहारा।
आपे बेद क़ुरान पुकारा, जो सुपने वस्त भुलाई ए।

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि लोगों को सत्य कड़वा अवश्य लगेगा परन्तु सत्य धुर-दरगाह में प्यारा है। इसलिये मैं सच्ची बात कह देता हूँ।

आप कहते हैं, ब्राह्मण यजमानों के मन में भय पैदा करते हैं कि तुम्हारे पूर्वजों के सिर पर भारी कष्ट है। इस प्रकार वे उनको अनेक प्रकार की पूजा में फँसा कर गुड़, चावल, वस्त्र, धन-दौलत, बर्तन, पशु और रुपया-पैसा दान में ले लेते हैं। इसी प्रकार वे भोले-भाले लोगों के मन में यह भ्रम पैदा कर देते हैं कि जब तक पूजा न कराओगे, तुम्हारी गाय, बछड़े, घोड़े, घोड़ियाँ आदि निरोग न होंगी। ये पण्डित या पुरोहित सीधे-सादे लोगों को परमेश्वर की सच्ची भक्ति से हटा कर माता और हाथों से बनाये हुए ठाकुरों की पूजा में लगा देते हैं। वे तुलसी माता का सालिगराम से विवाह रचाते हैं। कोई भला मानुस यह सोचने का प्रयत्न नहीं करता कि कभी पुत्र भी माता की शादी कर सकते हैं।

यदि कोई ज्वर से पीड़ित हो जाये तो कहते हैं कि इसका 'जी सुखाला' अर्थात झाड़ा कराओ। आँखें आ जायेंगे तो कई मन्नते मानी जाती हैं, भूल बख़्शाई जाती है और तीर्थों की यात्रा की जाती है। आप कहते हैं कि लोग भ्रमों की अफ़ीम के शिकार हो चुके हैं क्योंकि संसार में सच्चे व निर्मल ज्ञान और सच्चे ज्ञानियों का अभाव है।

लोग परमात्मा की खोज में बाहरमुखी भटक रहे हैं जबकि वह प्रिय प्रियतम हरएक की शाह रग में बैठा है। जीव और परमात्मा का वृक्ष और बाग वाला कुदरती सम्बन्ध है और जीव भ्रमों का नाश करके अन्दर ही परमात्मा से मिलाप कर सकता है।

साईं जी द्वारा प्रकट किये गए विचार हर धर्म के कर्मकाण्डी पुरोहितों, मुल्लाओं, पादरियों और भाइयों पर पूरे उतरते हैं जो अपने पेट के लिये भोली-भाली जनता को अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों में फँसा कर सच्ची रूहानियत से वंचित कर देते हैं। प्रत्येक धर्म में धर्म के ऐसे ठेकेदार पैदा हो जाते हैं जो अपने सामाजिक, आर्थिक और अन्य कई प्रकार के हितों के कारण भ्रमों के अनेक तरह के जाल बुन देते हैं। ये भले मानुस ही अपने स्वार्थ के कारण लोगों में मतभेद पैदा करने वाले और विरोध उत्पन्न करने वाले धर्म और कर्म जारी करते हैं। यही अपने स्वार्थ के लिये लोगों को सच्चे सन्तों-महात्माओं, पीरों-फ़कीरों के विरुद्ध भड़काते हैं। यदि गुरु नानक कुराहिया (कुमार्गी) था तो सही मार्ग पर चलने वाला कौन है ? यदि हज़रत ईसा, हज़रत मुहम्मद, गुरु अर्जुन, नामदेव, कबीर साहिब, दादू साहिब, पलटू साहिब धर्म के विरोधी थे तो संसार में सच्चा धार्मिक व्यक्ति कौन हुआ है ? परन्तु इन सबको अनेक प्रकार की यातनाएँ दी गई क्योंकि सन्तों से भय धर्म को नहीं, धर्म के पुरोहितों को होता है। मानवता के साथ इससे बड़ा मज़ाक और क्या हो सकता है कि धर्म के सच्चे हितैषी और मानवता के सच्चे उपकारियों को ही धर्म और मानवता के विरोधी सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है ? यह सबकुछ पुरोहित-गण करते हैं। आश्चर्य की बात यह कि अलग-अलग धर्मों के पुरोहित एक-दूसरे के धर्म के विरोधी होते हैं परन्तु सन्तों-महात्माओं और पीरों-पैगम्बरों के विरोध के लिये इकट्ठे हो जाते हैं क्योंकि उनको कामिल फ़कीरों के सच्चे ज्ञान के कारण अपनी रोटी और मान-बड़ाई खतरे में दिखाई देती है।

गुरु नानक साहिब अपने शब्द 'राम नामि मनु बेधिआ' में कहते हैं कि हवन-यज्ञ में सामग्री के स्थान पर शरीर के अंग-अंग कटवा कर इसकी आहुति देने से, शरीर को आरे के नीचे चिरा देने से, हठ-कर्मी द्वारा

अपना शरीर हिमालय की बर्फ में गला लेने से, सोने के किले, हाथी, घोड़े, भूमि आदि का दान देने से या ग्रन्थों-पोथियों, वेदों, शास्त्रों के पाठ-विचार से परमात्मा नहीं मिल सकता। परमात्मा से मिलने का साधन इस प्रकार के बाहरमुखी कर्म न होकर, हर मनुष्य के अन्दर रखा शब्द, नाम या कलमा है। ऊपर बताये गये हर प्रकार के कर्मकाण्ड व्यर्थ हैं क्योंकि परमात्मा से मिलाप का सच्चा आनन्द सुरत को अन्दर शब्द से जोड़ने पर ही प्राप्त होता है :

राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु।
... ...
तनु बैसंतरि होमीऐ इक रती तोलि कटाइ[1]।
तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ[2]।
हरिनामै तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ[3]।
अरद सरीरु कटाईऐ सिरि करवतु धराइ[4]।
तनु हैमंचलि गालीऐ भी मन ते रोगु न जाइ[5]।
हरिनामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ[6]।
कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु[7]।

---

1. शरीर को रत्ती-रत्ती करके हवन की अग्नि में सामग्री के स्थान पर जला दो।

2. हवन में लकड़ी के स्थान पर तन और मन को जला दो।

3. चाहे ऐसे लाखों व करोड़ों कर्मकाण्ड कर लो, यह आत्मा को अन्दर शब्द, नाम या कलमे से जोड़ने का मुकाबला नहीं कर सकते।

4. शरीर को आरे से चिरा लिया जाये। बनारस में एक आरा होता था। पाण्डे भोले-भाले यात्रियों को यह कह कर आरे से चिरा देते थे कि तुम जो मनोकामना लेकर अपने आपको आरे से चिराओगे, तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जायेगी और तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी।

5. शरीर को हिमालय की बर्फ़ में गला दो, फिर भी मन से हौंमैं, खुदी या तकब्बर का रोग दूर न होगा।

6. हर प्रकार के कर्मकाण्ड को ठोक बजा कर देख लिया है, कोई वस्तु नाम, शब्द या कलमे की कमाई का मुकाबला नहीं कर सकती।

7. सोने के किले और हाथी-घोड़े दान में दे दो।

भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु[1]।
रामनामि मनु बेधिआ गुरि दीआ सचु दानु[2]।
मन हठ बुधि केतीआ केते बेद वीचार[3]।
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर[4]।
सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु[5]।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 62)

गुरु नानक साहिब ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'आसा दी वार' में हिन्दुओं, जैनियों, बौद्धों, मुसलमानों और योगियों की अनेक प्रकार की बाहरमुखी शरीयत की कड़ी आलोचना की है और हर प्रकार के कर्मकाण्ड को कलमे, शब्द या नाम की कमाई के मुकाबले में तुच्छ या व्यर्थ कहा है! आपने तन्त्र-मन्त्र, देव-पूजा, तीर्थ-व्रत, धर्म-पुस्तकों के पाठ, माला, तिलक, वनों के भ्रमण, भस्म लगाने, धूनियाँ रमाने, नंगे फिरने, जागरण करने, मौन धारण करने, व्रत रखने आदि अनेक प्रकार के साधनों को फोकट कर्म कहा है, 'सभि फोकट निसचउ करमं' (आसा दी वार, पृ. 470)।

पलटू साहिब कहते हैं कि भेखी लोग परमात्मा की भक्ति के समाचार से नहीं, उदर-पूर्ति के प्रबन्ध से प्रसन्न होकर यजमानों की प्रशंसा करते हैं :

---

1. बहुत-सी भूमि और बहुत-सी गौएँ दान में दे दो, फिर भी अन्दर से अहंकार दूर न होगा।

2. मन को वश में करने वाली वस्तु वह नाम, शब्द या कलमा है, जिसका भेद कामिल मुर्शिद सतगुरु से मिलता है।

3. मन, बुद्धि से जो मर्जी कर्म कर लो, जितने मर्जी हठ-कर्म कर लो और वेदों-शास्त्रों का जितनी इच्छा हो पाठ कर लो, मन वश में नहीं आयेगा और परमात्मा से मिलाप न होगा।

4. इस प्रकार के सब कर्म आत्मा को बन्धनों में जकड़ने वाले हैं। आत्मा को बन्धनों से मुक्त करने वाली युक्ति का गुरुमुखों अर्थात मालिक के सच्चे भक्तों या कामिल फ़कीरों से पता चलता है।

5. बाकी सब कर्म-धर्म शब्द, नाम या कलमे रूपी सत्य को धारण करने से नीचे है, सबसे ऊँची करनी आत्मा को नाम, शब्द या कलमे से जोड़ना है।

भरि भरि पेट खिलाइये तब रीझैगा भेख॥
तब रीझैगा भेख जगत में करै बड़ाई।
लाख भगत जो होय खाये बिनु निंदत जाई॥
रहनि लखै नहिं कोय नाहिं टकसार बिचारै।
भाव भक्ति ना लखै खोजत सब फिरै अहारै॥
भेख में नाहिं बिबेक भये दस बीस बिबेकी।
कोटिन में दस बीस संत तिन रहनी देखी॥
पलटू रहै अपान में आन में मारै मेख।
भरि भरि पेट खिलाइये तब रीझैगा भेख॥

(पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुण्डली 243)

साईं जी कहते हैं कि व्यवसायी लोगों ने धर्म-स्थानों को अपनी उदरपूर्ति का साधन बना लिया है। जब तक दिल में से सच्ची विनती नहीं निकलती, मन्दिरों व मसजिदों में माथे रगड़ने से क्या लाभ है ?

1. बुल्ले नूं लोकीं मती दिंदे बुल्लिआ जा बह विच मसीतीं।
   विच मसीता दे की कुछ हुंदा जे दिलों नमाज़ न कीती।
2. धर्म साल धड़वई रहिंदे ठाकर दुआरे ठग।
   विच मसीतां कुसती रहिंदे आशिक रहिन अलग।

हज़रत ईसा ने भी कहा था कि जो लोग मन्दिरों में क्रय-विक्रय करते हैं, उनको मन्दिरों से बाहर निकाल दो क्योंकि परमात्मा का घर परमात्मा की पूजा के लिये है, दुकानदारी के लिये नहीं।[1]

ख़्वाज़ा अबू इस्माइल अब्दुल्ला अनसारी अपनी प्रसिद्ध रचना 'मुनाजात' में लिखते हैं कि बाहर का काबा तो हज़रत इब्राहिम ने बनवाया परन्तु हृदय का काबा परमात्मा के प्रकाश से पवित्र हो चुका है।[2] आप फ़रमाते हैं, रोज़ा रखना अनाज की बचत करना है। बाहरमुखी पूजा और नमाज़ स्त्रियों और वृद्ध लोगों का काम है, हज या तीर्थ-यात्रा संसार का

1. Cast out them all that sold and bought in the temple, and overthrow the tables of money-changers and the seats of them that sold doves. It is written, My house shall be called the house of prayer, but ye have made it a den of thieves. (Matthew 21 : 12-15)

2. **History of Sufism in India**, Vol. I, p. 78.

स्वाद लेना है, तू मन को जीतने का प्रयत्न कर क्योंकि वास्तविक विजय यही है। सूफ़ी दरवेश नौशाह कहते हैं, हमारी मसजिद वह नहीं जहाँ मुल्ला रहता है, वास्तविक मसजिद वह है, जहाँ परमात्मा मिलता है।[1]

हम अपने आसपास दृष्टि डाल कर देख सकते हैं कि आज हमारे धर्म-स्थानों की क्या दशा है ? सब धर्मों के धर्म-स्थान मालिक की भक्ति के वास्तविक उद्देश्य से बहुत दूर जा रहे हैं। फिर जो शरीर रूपी मक्का, हरि-मन्दिर, ठाकुरद्वारा, मसजिद, गिरजा या सिनागाग है, वह भी कुमार्गी बन चुका है क्योंकि हम अन्दर प्रवेश करके मालिक की सच्ची भक्ति करने के स्थान पर, संसार में बाहर ही बाहर भटकते फिरते हैं।

हज़रत सुलतान बाहू फ़रमाते हैं कि कामिल मुर्शिद अन्तर में प्रियतम से मिलाप करने की वह युक्ति समझाता है, जिससे अन्दर ही प्रभु के नाम का पौधा मिल जाता है, अन्दर ही परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं और किसी प्रकार की बाहरमुखी करनी की कोई आवश्यकता नहीं रहती।[2-3]

साईं बुल्लेशाह जी फ़रमाते हैं कि मुल्ला और काज़ी अपना भ्रम-जाल फैला कर संसार को गुमराह करने का प्रयत्न करते हैं। वे बाहरमुखी कर्मकाण्ड को ही सच्चा धर्म सिद्ध करने की कोशिश करते हैं और सच्ची रूहानी उन्नति के मार्ग में रुकावटें खड़ी करते हैं। वे लोगों को जात-पाँत, काफ़िर-मोमिन की कैद में बन्द करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु इस प्रियतम प्यारे का सच्चा प्रेम, इस प्रकार के बनावटी बन्धनों में कैसे बंध सकता है ?

---

1. **History of Sufism in India,** Vol. II, p. 440.
2. नफ़ल नमाज़ा कंम ज़ना दे रोज़े सदका रोटी हू।
   मक्के दे वल सोई जावन, धरों जिन्हां तरोटी हू।
   उच्चीआं बांगां सोई देवन, नीयत जिन्हां दी खोटी हू।
   की परवाह तिनां नूं बाहू, जिन्हां घर विच लधी बूटी हू।
3. ना रब अरस मुअल्ला उते ना रब खाने काबे हू।
   ना रब इलम किताबी लभ्भा ना रब विच महिराबे हू।
   गंगा तीरथीं मूल ना मिलिआ मारे पैंडे बे हिसाबे हू।
   जद दा मुरशद फड़िआ बाहू छुट्टे सब अज़ाबे हू।

मुल्लां काजी सानूं राह बतावन, देन भर्म दी फेरी।
इह तां ठग जगत दे झीवर, लावन जाल चुफेरी।
कर्म शरा दे धर्म बतावन, संगल पावन पैरीं।
जात, मज़हब इह इश्क न पुच्छदा, इश्क शरा दा वैरी।

मौलाना रूम ने फ़रमाया है कि परमात्मा के सच्चे भक्तों का एक ही धर्म है—अपने अह्म को वश में करके परमात्मा में समा जाना, वे दूसरा कोई धर्म-कर्म नहीं जानते, 'आशिकां रा मज़हबे मिल्लत नेस्ती।'

अपनी काफ़ी 'इक नुकते विच गल मुकदी ए' में साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य हृदय की सफ़ाई और परमात्मा के नाम की कमाई का है। जब तक दिल की सफ़ाई नहीं होती, मन्दिरों और मसजिदों में पूजा या नमाज़ें करने और माथा रगड़ने का क्या लाभ है ? आप आश्चर्य प्रकट करते हैं कि लोग अपने हज के पुण्य को लेकर बेच देते हैं।[1] कुछ लोग लम्बे रोज़े रखते हैं और शरीर को कई प्रकार की यातनाएँ देते हैं। वे भले लोग यह नहीं समझते कि परमात्मा की भक्ति का

---

1. ख़्वाज़ा हाफ़िज़ फ़रमाते हैं कि अपने प्यारे के प्याले के बिना किसी अन्य वस्तु को मत चूमो। भक्ति बेचने वालों के हाथों का बोसा लेना बड़ा गुनाह है :

मबोस जुज़ लबे माशूक व जाम हाफ़िज़,
कि दसति ज़हूद फ़रोसा गुनाह अस्त बोसीदन।

गुरु नानक साहिब ने भी फ़रमाया है कि जो लोग अपनी भक्ति का मूल्य ले लेते हैं, उनका जीवन धिक्कार है। जिनकी खेती ही उजड़ जाये, उनका खलिहान क्या सजेगा ? अर्थात उनके लोक और परलोक दोनों बरबाद हो जाते हैं :

ध्रिगु तिना का जीविआ जि लिखि लिखि वेचहि नाउ।
खेती जिन की उजड़ै खलवाड़े किआ थाउ।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1245)

कबीर साहिब ने फ़रमाया है कि कबीर का वंश डूब गया है क्योंकि उसके घर में कमाल जैसा पुत्र पैदा हो गया है जो हरि के सुमिरन जैसी अमर वस्तु के बदले में संसार की नश्वर दौलत घर ले आया है :

बूडा बंसु कबीर का उपजिउ पूतु कमालु।
हरि का सिमरन छाडि कै घरि ले आया मालु।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1370)

सम्बन्ध मन और आत्मा से है, शरीर को कष्ट देने से कोई लाभ नहीं। सतगुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार मन को हर प्रकार की मलिनता से पवित्र और साफ़ करने की आवश्यकता है, हठ-कर्मों द्वारा शरीर को कष्ट देने की नहीं।

पलटू साहिब कहते हैं कि उस परमात्मा के दरबार में न धर्म पहुँचते हैं और न ही किसी के कर्मकाण्ड :

वह दरबारा भारा साधो, हिन्दू मुसलमान से न्यारा।
मक्के रहे न ठाकुर द्वारा, है सबमें सब खोजत हारा।
नहिं दरबारा न तीरथ संगा, गंगा नीर न तुलसी भंगा।
सालिगराम न महजिद कोई, उहाँ जनेव न सुन्नत होई।
पढ़ै निवाज न लावै पूजा, पंडित काजी बसै न दूजा।
फेरै न तसबी जपै न माला, ना मुरदा ना करै हलाला।
मारै न सुबर जिबहे ना गाई, कलमा भजन न राम खुदाई।
एकादसी न रोजा करई, डंडवत करै न सिरदा[1] परई।
पलटू दुई की किस्ती, दोजख नर्क बैकुंठ न भिस्ती।

(पलटू साहिब की बानी, भाग 3, शब्द 101)

साईं बुल्लेशाह संकेत करते हैं कि हर प्रकार की धार्मिक करनी का मूल मनोरथ प्रियतम का मिलाप है। जब मेरा प्रियतम से मिलाप हो गया तो मुझे किसी भी साधन की क्या आवश्यकता है :

रोजे हज्ज नमाज़ नी माए, मैंनूं पिया ने आन भुलाए।
जद पिया दीआं खबरां मिलियां, मंत्र नहिन सभ भुल्ल गईआं[1]।
उस अनहद तार वजाए।
जां पिया मेरे घर आया, भुल्ल गया मैनूं शरा वकाया[2]।
हर मज़हर विच ऊहा दिसदा[3], अंदर बाहर जलवा जिसदा।
लोकां खबर न काई।

---

1. मन्त्र, जादू-टोने आदि भूल गये हैं।

2. शरीयत की भी सुध-बुध नहीं रही 3. हर कालिब (शरीर) में उसी प्रियतम का दीदार होता है।

आप अपनी काफ़ी 'माए न मुड़दा इश्क दीवाना शहु नाल प्रीतां ला के' में इश्क और शरीयत का आपसी सम्बन्ध बहुत सुन्दर ढंग से विस्तारपूर्वक समझाते हैं। इस काफ़ी में आये वर्णन 'यार सुत्ती गल ला के', 'वहदत के विच आ के', 'वसल करां नाल सजना दे' और 'सिर देही नाल मिल गई सिर देही' संकेत करते हैं कि आप प्रियतम से पूर्ण अभेदता की अवस्था में पहुँच चुके थे। लड़कियाँ गुड़ियों और गुड्डों से उतनी देर खेलती हैं जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती। विवाह के पश्चात् गुड़ियाँ या गुड्डे तो क्या सखी-सहेलियाँ और माता-पिता भी भूल जाते हैं। आप कहते हैं कि लोग मुझे काफिर कह कर ताने देते हैं कि तेरे अन्दर शैतान का निवास है। मेरी यह दशा है कि मैं अहम् रूपी पति और द्वैत रूपी शत्रु दोनों को मार कर पूर्ण अद्वैत में पहुँच गया हूँ। इस अवस्था में न केवल कर्मकाण्ड ही बच्चों के खेल और अज्ञानियों के झगड़े प्रतीत होते हैं अपितु मैंने चोली, चुनरी और कुर्ता भी जला दिया है अर्थात मैंने संसार की हर प्रकार की लोक-लाज और सूफ़ियों की शरीयत का भी त्याग कर दिया है :

माए न मुड़दा इश्क दीवाना, शहु नाल प्रीतां ला के।
इश्क शरा दी लग्ग गई बाजी, खेडां मैं दाओ लगा के।
मारन बोली ते बोली, न बोलां सुनां न कंन ला के।
विहड़े विच शैतान नचेंदा, उसनूं रख समझा के।
तोड़ शरां नूँ जित्त लई बाजी, फिरदी नक्क वढा के।
मैं वे अनजानी खेड वगुच्चीआं, खेलां मैं आके-बाके।
इह खेलां हुन लगदीआं झेडां, घर पीआ दे आ के।
सईआं नाल मैं पावां गिद्धा, दिलबर लुक-लुक झाके।
पुच्छो नी इह क्यों शरमांदा, जांदा न भेत बता के।
काफ़र काफ़र आखण मैंनूं, सारे लोक सुना के[1]।
मोमन काफ़र मैनूं दोवें न दिसदे, वहदत दे विच आ के।
चोली चुंनी ते फूकिया झुग्गा, धूनी शिरक जला के[2]।
वारिआ कुफ़र वड्डा मैं दिल थीं, तली ते सीस टिका के।

1. लोग ताने देते हैं कि तेरे अन्दर शैतान का प्रवेश है। वे मुझे काफ़िर कहते हैं
2. परमात्मा के बिना किसी दूसरे की भक्ति करना शिर्क है। मैंने उसको जला दिया है।

मैं वडभागी मारिआ खाविंद, हत्थीं ज़हर पिला के।
वसल करां मैं नाल सज्जन दे, शर्म ह्या गंवा के।
विच चमन मैं पलंघ बिछाया, यार सुत्ती गल ला के।
सिर देही नाल मिल गई सिर देही, बुल्ला शहु नूं पा के।
माए न मुड़दा इश्क दीवाना, शहु नाल प्रीतां ला के।

कर्मकाण्ड तस्वीर के फ्रेम, गत्ते और शीशे की भाँति तस्वीर की रक्षा के लिये हैं, परन्तु फ्रेम और शीशा ही तस्वीर नहीं है। डिब्बा आभूषणों की सँभाल के लिये होता है, वह आभूषणों का स्थान नहीं ले सकता। कर्मकाण्ड का मोल रूहानियत से है। मारिफ़त और हकीकत से ख़ाली शरीयत ख़ाली डिब्बे के समान है। मामूली या टूटे हुए टिन के डिब्बे में भी कीमती आभूषणों का मूल्य कम नहीं होता, परन्तु सीपियों आदि से भरा मखमल का डिब्बा किस काम का है ?

छिलका फल के गूदे और रस की रक्षा के लिये होता है, परन्तु छिलका ही फल नहीं बन जाता। इसी प्रकार कर्मकाण्ड केवल उतना ठीक है जितना सत्य की प्राप्ति में सहायता देता है परन्तु कर्मकाण्ड सत्य का विकल्प नहीं है। जहाँ परमात्मा और सतगुरु का प्रेम कलमे, शब्द या नाम का प्रेम नहीं है, वहाँ सुन्दर से सुन्दर और बारीक से बारीक कर्मकाण्ड भी बेकार है, परन्तु जहाँ हृदय की सफ़ाई है, परमात्मा, सतगुरु और कलमे का प्यार है, वहाँ कर्मकाण्ड है तो मुबारक है, नहीं है तो हानि भी नहीं है। साईं बुल्लेशाह बड़े सुन्दर ढंग से कहते हैं कि सत्य में पहुँच चुका साधक समाज और कर्मकाण्ड के बन्धनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। उसको जीवित अनुभव हो जाता है कि पार करने वाली वस्तु प्रभु, सतगुरु और शब्द का प्रेम है, कर्मकाण्ड नहीं। सच्चे प्रेमी सत्य के मार्ग में रुकावट बनने वाली किसी बाधा को कैसे सहन कर सकते हैं ?

1. बुल्लिआ सभ मजाज़ी पउड़ीआं तूं हाल हकीकत देख।
   जो कोई ओत्थे पहुँचिया, चाहे भुल्ल जाए सलाम अलेक।
2. नी मैं हुन सुनिया इश्क शरा की नाता।
   मुहब्बत दा इक प्याला पी के, भुल्ल जावन सब बातां।
   घर घर साईं है, ओह साईं हर हर नाल पछाता।

अंदर साडे मुर्शिद वसदा, नेहुं लग्गा तां जाता।
मंतक माअने कंनज़ कदूरी, पढ़िया इलम गवाता[1]।
नमाज रोज़ा ओस की करना, जिस मध पीता मधमाता[2]।
पढ़ पढ़ पंडित मुल्लां हारे, किसे न भेद पछाता।
ज़री बाफ़री कदर की जाने, छट्ट ओन्हां जत काता[3]।
बुल्ला शहु दी मजलस बहिके, हो गया गुँगा बाता[4]।
नी मैं हुन सुनिया, इश्क शरां की नाता।

---

1. मंतक=दलील, तर्क, वाद-विवाद या शास्त्रार्थ से रूहानी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना, माअने=धर्म-ग्रन्थों के गूढ़ भावों के अर्थ या टीका करना, कंनज़=विद्या का भण्डार, कदूरी=विद्वानों का इकट्ठे होकर इस्लाम की धार्मिक समस्याओं को बुद्धि हदीसों और कयास (Speculation) की सहायता से हल करने का प्रयत्न करना।

2. मध=शराब, मधमाता=मस्त, शराबी। जिसने हकीकत की शराब पी, वह उसी मस्ती में खोकर शरीयत से बेनिआज़ (दूर) हो गया।

3. ज़री=सुनहरी तारों से बुना कीमती कपड़ा, बाफ़री=रेशमी कपड़ा, जत काता=जिन्होंने काता। जिन्होंने मोटे खुरदरे कपड़े बुने हों, उनको ज़री, बाफ़री की क्या पहचान हो सकती है ?

4. परमात्मा से मिलाप हुआ तो ज़बान बन्द हो गई। इस अवस्था को सन्तों-महात्माओं ने गूँगे का गुड़ कह कर पुकारा है।

> [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उपसंहार

यहाँ साईं बुल्लेशाह की वाणी की दूसरे कई पूर्ण सन्तों, पीरों और फ़क़ीरों की वाणी से तुलना करके विचार करने का प्रयत्न किया गया है क्योंकि सब कौमों, मज़हबों, मुल्कों और वक़्तों में हुए कामिल फ़क़ीर एक ही रूहानियत का प्रचार करते हैं। हुज़ूर स्वामीजी महाराज फ़रमाते हैं, 'संत फ़कर बोली जुगल। पद दोउ एक अखंड॥' (सार बचन, बचन 38: मास पाँचवा) अर्थात् सन्तों और फ़क़ीरों की बोली अलग-अलग है परन्तु वे वर्णन एक ही अनश्वर सत्य का करते हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में यह बात समझनी कठिन नहीं कि जिस प्रकार एक वस्तु को अंग्रेज़ी, फ्राँसीसी, चीनी, रूसी, हिन्दी और जर्मन आदि भाषाओं में अलग-अलग नाम दिये जाते हैं, उसी प्रकार हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, चीनी और यूनानी कामिल फ़क़ीरों ने एक ही रूहानी सत्य को अपनी-अपनी भाषा में अनेक प्रकार से प्रकट करने का प्रयत्न किया है। परमात्मा, परमात्मा की सृजनात्मिक शक्ति और मुक्ति-दाता शक्ति को ही सन्तों-महात्माओं ने सच्चा कलमा, सच्चा नाम, सच्चा शब्द, सरोश, मैमरा, ताउ आदि अनेक नामों से पुकारा है। भाषा का छिलका उतार कर सत्य की गिरी तक पहुँचने की आवश्यकता है।

जिस प्रकार भाखड़ा, नंगल आदि बिजली पैदा करने वाले बड़े बिजली-घर, शहरों व कस्बों में लगे बिजली-घर और छोटे से बल्ब में कार्यशील बिजली की शक्ति एक ही है परन्तु उसके कार्यशील होने का स्तर और रूप भिन्न-भिन्न हैं, उसी प्रकार कर्तापुरुष, सतगुरु और आत्मा तीनों में कार्यशील शक्ति एक है, परन्तु उसके कार्यशील होने के स्तर और रूप भिन्न-भिन्न हैं। जिस प्रकार समुद्र, लहर और कतरे का मूल एक है, उसी प्रकार परमात्मा सतगुरु और आत्मा का मूल एक है। इस एक मूल

तत्व के कारण ही बूँद (आत्मा), लहर (सतगुरु) से मिल कर सागर (परमात्मा) में समा सकती है।

शहर में फैले हुए बिजली के अथाह जाल और घर में लगी बिजली से तभी लाभ उठा सकते हैं जब रेडियो, पंखे या बल्ब का तार बिजली घर से आ रहे तार से जुड़ा हो। इसी प्रकार प्रभु सृष्टि के कण-कण और हर शरीर के अन्दर समान रूप से उपस्थित है, परन्तु उससे विशेष लाभ वे जीव ही प्राप्त कर सकते हैं, जो अपनी लिव, सुरत, आत्मा या आत्मा के तार को शक्ति, ज्ञान और आनन्द के अथाह भण्डार, उस परमपिता परमेश्वर से जोड़ लेते हैं।

पूर्ण सतगुरु अपने स्रोत से टूटी आत्मा, लिव या सुरत को दोबारा उससे जोड़ने वाला कुशल इंजीनियर है। रूहानी उन्नति आत्मा को अन्दर कलमे, शब्द या नाम से जोड़ने से होती है, परन्तु शब्द से लिव पूरे सतगुरु की सहायता से जुड़ती है। गुरु रामदास जी कहते हैं कि संसार में आई आत्मा माया के प्रभाव से अपने मूल से टूट चुकी है जिस कारण यह आशा-तृष्णा की कभी न शान्त होने वाली आग में जल रही है :

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माइआ।
माइआ अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ।
जा तिसु भाणा ता जंमिआ परवारि भला भाइआ।
लिव छुड़की लगी तृसना माइआ अमरु वरताइआ।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 921)

आप कहते हैं कि अपने मूल से टूटी लिव सतगुरु की कृपा से दोबारा अन्दर जुड़ जाये तो जीव माया में रहते हुए भी इसके प्रभाव से निर्लेप हो जाता है और परमात्मा से मिल कर सदा के लिये सुख प्राप्त कर लेता है :

एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ।
कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माआ पाइआ।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 921)

परमात्मा ने प्रत्येक जीव के अन्दर शक्ति, ज्ञान और आनन्द के अथाह भण्डार रखे हैं, परन्तु जीव अनाथों की भाँति बाहर ठोकरें खा रहा है।

हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी सत्संग में अक्सर फ़रमाते थे कि जिस मनुष्य के घर के अन्दर करोड़ों रुपयों का खज़ाना दबा हो और वह सड़कों पर कौड़ियाँ माँगता फिरे तो उस भले मानुस को समझदार कौन कहेगा। भीखा साहिब समझाते हैं कि आन्तरिक दौलत प्राप्त करने की युक्ति से अनजान होने के कारण ही संसार में परेशान हो रहे हैं :

भीखा भूखा को नहीं, सब की गठड़ी लाल।
गिरह खोल न जानसी, तां ते भए कंगाल॥

कामिल फ़क़ीर या सन्त-महात्मा इस गुप्त ख़जाने को प्राप्त करने का भेद समझाते हैं। वे मन और माया के बन्धनों में फँसे जीवों को इन बन्धनों से मुक्त होने की युक्ति सिखाते हैं ताकि वे जीते-जी पूर्ण शक्ति, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द के देश पहुँच जायें, और दीन तथा दुनिया, लोक तथा परलोक दोनों सँवार लें। दुःख इस बात का है कि लोग उनकी बात समझने, मानने और उनके उपदेश पर अमल करने के लिये तैयार नहीं होते।

साईं बुल्लेशाह अपनी काफ़ी 'रैन गई लटके सभ तारे' में संकेत करते हैं कि संसार में इसकी असलियत को समझ कर रहना चाहिये और संसार में आकर यहाँ आने के वास्तविक उद्देश्य को सदा आँखों के सामने रखना चाहिये। झूठी रचना की ओर से मुँह मोड़ कर सच्ची वस्तु की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये अन्यथा काल रूपी मृग खेत को अवश्य उजाड़ देगा।

आप कहते हैं कि नाशवान संसार से कभी स्थायी सुख देने वाली वस्तु नहीं मिल सकती। यहाँ आकर प्राप्त करने वाली वास्तविक वस्तु वह अमर, अविनाशी परमेश्वर है। परमेश्वर रूपी मोती या पारस भी कहीं बाहर नहीं है। रूहानियत और आनन्द का वह अथाह सागर जीव के अपने अन्दर है। समुद्र के किनारे बैठा व्यक्ति प्यासा मरे तो यह उसकी अपनी नादानी है।

रूहानियत के भण्डार को प्राप्त करने का साधन कलमा, शब्द या नाम भी प्रत्येक मनुष्य के अपने अन्दर है। किसी ब्रह्मज्ञानी या हादी की सहायता से आन्तरिक आँख खोल कर उस कलमे या नाम से लिव जोड़ने की

आवश्यकता है, 'लद्धा नाम लै लिओल सभारे।[1] फिर मनुष्य को अन्दर ही रूहानियत के वे अथाह भण्डार मिल जाते हैं कि वह जन्म-जन्मान्तर के भिक्षुक के स्थान पर एक बड़ा शाहंशाह बन जाता है :

रैन गई लटके सभ तारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
आवागमन सराई डेरे, साथ त्यार मुसाफ़र तेरे।
तैं न सुनिओ कूच नगारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
कर लै अज्ज करने दी बेला[2], बहुड़ न होसी आवन तेरा।
साथी चलो चल पुकारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
क्या सरधन क्या निरधन पौड़े, अपने अपने देस को दौड़े।
लद्धा नाम लै लिओ सभारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
मोती चूनी पारस पासे, पास समुंदर मरो प्यासे।
खोल अख्खीं उठ बहु भिकारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
बुल्ला शौह दी पैरी पड़ीए, ग़फ़लत छोड़ हीला कुझ करीए।
मिरग जतन बिन खेत उजाड़े, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।
रैन गई लटके सभ तारे, अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे।

शेख फ़रीद कहते हैं कि मनुष्य-जीवन छत की दौड़ के समान है। यह दौड़ कितनी लम्बी हो सकती है ? जीव को चाहिये कि नींद को त्याग

1-2. बाबा फ़रीद कहते हैं कि हर काम करने का समय होता है। बाढ़ आने से पूर्व बेड़ा न बाँधा जाये तो नदी को तैरना असम्भव है। परमात्मा से मिलाप का समय मनुष्य-जन्म है। एक बार मनुष्य-जन्म बरबाद हो जाये तो फिर यह अमूल्य दात नहीं मिलती। जब धुर दरगाह से बुलावा आता है तो आत्मा दुचित्ती में शरीर को छोड़ती है और शरीर मिट्टी की ढेरी की तरह नष्ट हो जाता है। उस समय कुछ नहीं हो सकता। जो कुछ करना है, साँसों का भण्डार समाप्त होने से पूर्व कर लेना चाहिये :

बेड़ा बंधि न सकिउ बंधन की वेला।
भरि सरवरु जब ऊछले तब तरणु दुहेला।
हथु न लाइ कसुंभड़े जलि जासी ढोला।
इक आपीने पतली सह केरे बोला।
दुधा थणी न आवई फिरि होइ न मेला।
कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाएसी।
हंसु चलसी डुंमणा अहि तनु ढेरी थीसी।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 794)

कर और आँखें खोल कर देखे कि जीवन के जो गिनती के दिन मिले हैं, छलाँगें मार कर गुज़रते जा रहे हैं। जीव को आगे जाकर जवाब देना है कि तुझे संसार में किस काम के लिये भेजा था और तूने क्या किया है :

1. फरीदा कोठे धुकणु केतड़ा पिर नीदड़ी निवारि।
   जो दिह लधे गाणवे गए विलाड़ि विलाड़ि।

(फ़रीद—आदि ग्रन्थ, पृ. 1380)

2. फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि।
   लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केर्हे कंमि।

(वही, पृ. 1379)

आप जीव को सावधान करते हैं कि तुझे संसार में परमात्मा की भक्ति के लिये और उसके नाम की दौलत इकट्‌ठी करने के लिये भेजा गया था। यदि तू यह दौलत इकट्‌ठी नहीं करेगा तो लोक-परलोक दोनों में बेइज़्ज़त होगा। परमात्मा की भक्ति के बिना तू मृतक देह से अधिक नहीं। तू बेशक परमात्मा को भूल जा परन्तु परमात्मा की दृष्टि सदा तेरे कर्मों पर है :

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ।
ऐथै दुख घणेरिआ अगै ठउर न ठाउ।
फरीदा पिछल राति न जागिओहि जीवदड़ो मुइओहि।
जे तै रबु विसारिआ त रबि न विसरिओहि।

(फ़रीद-आदि ग्रन्थ, पृ. 1383)

ख़्वाजा हाफिज़ फ़रमाते हैं कि यदि तू पुरुष है तो संसार से दिल न लगा क्योंकि संसार मुरदार (नश्वर) और हेच (तुच्छ) है। मैं हज़ार बार इस विषय की छानबीन कर चुका हूँ कि संसार व इसके काम व्यर्थ हैं।[1]

साईं बुल्लेशाह जीव को सावधान करते हैं :

तैं कित वल पाउं पसारा ए, कोई दम का इन्हा गुज़ारा ए।
इक पलक छलक दा मेला ए, कुझ कर लै इहो वेला ए।
इह घड़ी गनीमत दिहाड़ा ए, तैं कित वल पाउं पसारा ए।
इक रात सरां दा रहिना ए, एथे आ कर भुल्ल न बहिना ए।
कल्ह सब दा कूच नकारा एं, तैं कित वल पाउं पसारा एं।

1. दिल बदुनिआं मबंद अगर मरदी, ज़ा कि दुनिआस्त लाशे लाशे।
जहां व कारे जहां जुमला हेच अस्त, हज़ार बार मन ईं नुकता करदह अम तहिकीक।

तू ओस मुकामों आया ए, एथे आदम बन समाया ए।
हुन छड्ड मजलस कोई कारा ए, तै कित वल पाउं पसारा ए।
बुल्ला शाह इह भरम तुम्हारा ए, सिर चुकिया परबत भारा ए।
उस मंज़ल राह न खाहड़ा ए, तैं कित वल पाउं पसारा ए।

गुरु नानक साहिब कहते हैं कि हमें आवागमन के बन्धन तोड़ कर परमात्मा से मिलाप करने के लिये मनुष्य-जन्म की अमूल्य दात दी गई है। परन्तु हम संसार के धन्धों में इस प्रकार फँसे हुए हैं कि जीवन के इस मूल उद्देश्य की ओर हमारा कभी ध्यान ही नहीं जाता। इसके विपरीत जो लोग पूरे गुरु की हिदायत पर चलते हुए शब्द, नाम या कलमे से लिव जोड़ लेते हैं, वे सदा के लिये भवसागर से पार हो जाते हैं :

धंधै धावत जगु बाधिया ना बूझै वीचारु।
जंमण मरणु विसारिआ मनमुख मुगधु गवारु।
गुरि राखे से उबरे सचा सबदु वीचारि।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1010)

अन्तर में शब्द से लिव जोड़ने के लिये किसी को अपनी कौम, मज़हब या मुल्क बदलने की आवश्यकता नहीं। न ही घर-बार त्याग कर जंगलों या पहाड़ों में जाने की आवश्यकता है। कमल के फूल की जड़ें पानी में अवश्य होती हैं परन्तु फूल सदा पानी से बाहर रहता है। मुरगाबी सदा पानी में रहती है परन्तु इसके पंख पानी में नहीं भीगते। जब चाहती है, पानी से बाहर उड़ान भर लेती है। उसी प्रकार हम संसार में रहते हुए अपनी सुरत या लिव अन्दर शब्द से जोड़ कर सहज ही भवसागर से पार हो सकते हैं :

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे।
सुरति सबदि भवसागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 938)

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि शरीर नाशवान है परन्तु इसके अन्दर एक अविनाशी तत्व विद्यमान है।[1] रूहानी अभ्यास द्वारा नाशवान से अविनाशी को अलग कर लेना ही मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य है :

1. पंच ततु मिलि काइआ कीनी तिस महि राम रतनु लै चीनी।
आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबद वीचारा हे।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1030)

मैं मेरी है कि तेरी है, इह अंत भस्म दी ढेरी है।
इह ढेरी पिया ने घेरी है, ढेरी नू नाच नचाईदा।
हुन किस थीं आप छुपाईदा।

मुहम्मद दारा शिकोह लिखता है कि आत्मा के शरीर में प्रवेश करने का यह कारण है कि इसके अन्दर पड़ी पूर्णता की शक्ति प्रफुल्लित हो सके और यह संसार के अनुभव से अमीर होकर अपने स्रोत में वापस समा सके। इसलिये हर प्राणी का कर्तव्य है कि वह द्वैत के दुःखों से मुक्त होकर अपने मूल में वापस समाने का प्रयत्न करे।[1] हज़रत इबन-अल-अरबी लिखते हैं कि जो अपने आपको जान लेता है, परमात्मा को जान लेता है।[2]

हज़रत अबअल हसन नूरी कहते हैं कि सच्चा सूफ़ी वह है जो मन के सब विकार त्याग देता है। वह न किसी वस्तु को अपना बनाता है और न ही स्वयं किसी वस्तु का बनता है।[3] यह तभी सम्भव है जब साधक आत्मा को मन और इन्द्रियों से अलग कर ले। अबू बदर शिबली कहते हैं कि सच्चा सूफ़ी मत यह है कि सूफ़ी को दोनों लोकों में परमात्मा के बजाय अन्य कोई वस्तु दिखाई न दे।[4] यह भी तभी सम्भव है यदि अभ्यासी आत्मा को अन्दर परमात्मा में लीन करके वास्तविक तौर से यह अनुभव करले कि संसार और इसकी प्रत्येक वस्तु का आधार वह दयालु प्रभु है। हज़रत अबू सैय्यद फ़जल अल्ला ने फ़रमाया है कि मन को परमात्मा में लीन कर देना ही सूफ़ीमत का उपदेश है।[5] हज़रत ख़फीफ ने भी फ़रमाया है कि समाधि की अवस्था में जब तन की खबर नहीं रहती तो परमात्मा के अस्तित्व का अनुभव हो जाता है और यही सच्चा सूफ़ीमत है।[6]

रिज़वी लिखता है कि रूहानी अभ्यास के द्वारा सूफ़ी अपने रोम-रोम में परमात्मा की विद्यमानता का अनुभव कर सकते थे।[7] इस प्रकार वे ऐसी

---

1. 'रसाला-ए-हक-नुमा' पाणिनी आफ़िस, भुवनेश्वरी आश्रम, इलाहाबाद, 1912, पृ. 1.

2. **History of Sufism in India,** vol. I, P. 106.

3-6. Sirdar Ikbal Ali Shah, **Islamic Sufism,** PP. 19-20.

7. **History of Sufism in India,** Vol. I., P. 76.

अवस्था में पहुँच जाते हैं, जिसमें भक्त, भक्ति और भगवन्त का भेद समाप्त हो जाता है।[1]

साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मेरा और परमात्मा का मूल एक था। इसलिये जब मैं उसको ढूँढने गया तो मेरा अहम् समाप्त हो गया और मैं उसमें समा कर उसका रूप ही बन गया :

तेरा मेरा निआउं नबेड़े रूमो काज़ी आवे।
खोल किताबां करे तसल्ली दोहां इक बतावे।
बुल्ला शौह तूं केहा जेहा, हुन तूं केहा मैं केही।
तैनूं जो मैं ढूंडन लग्गी, मैं भी आप न रही।
पाया ज़ाहर बातन तैनूं, बाहर अंदर रुशनाई।

साईं बुल्लेशाह ने अपने कलाम में उस सरल युक्ति का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है जिसके द्वारा वे अपनी आत्मा को परमात्मा से जोड़ कर एक भटकते जिज्ञासु से एक आनन्द रूप पहुँचे हुए दरवेश की पदवी पर जा आसीन हुए। वह युक्ति धर्म, जाति और राष्ट्र के भेद-भाव के बिना संसार के सब जीवों की साँझी सम्पत्ति है। उस सम्पत्ति को लेने के लिये कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं, केवल अन्दर खुदाई करने या अन्दर झाँकने की आवश्यकता है। अन्दर खोज करने या झाँकने की युक्ति पूर्ण सतगुरु अथवा मालिक के सच्चे भक्तों से मिलती है। जो लोग कामिल फकीरों पर विश्वास करते हैं, साईं बुल्लेशाह उनको विश्वास दिलाते हैं :

जे तूं साडे आखे लग्गें तैनूं तख़त बहावांगे।
जिस नूं सारा आलम ढूँडे तैनूं आन मिलावांगे।
ज़ुहदी हो के ज़ुहद कमावें लै पिया गल लावेंगा।
हिजाब करें दरवेशी कोलों कब लग हुकम चलावेंगा।

1. **History of Sufism in India, Vol. I, P. 101**

भाषा एवं शैली

साईं बुल्लेशाह की अधिकतर वाणी काफ़ियों में है। उनके समय सूफ़ियों में काफ़ी लिखने का बहुत रिवाज था। काफ़ी भक्तों के शब्दों या पदों से मिलता हुआ काव्य का रूप है। इसमें कवि किसी परमार्थी विषय को—अधिकतर गुरु या परमात्मा के प्यार और विरह को—साधारण ढंग से वर्णन करता था। काफ़ी गाये जाने के लिये लिखी जाती थी और कई सूफ़ियों ने अपनी काफ़ियाँ क्लासिकल या सनातनी रागों में बाँधी हैं। साधारण लोग सूफ़ियों के तकियों में दायरे की शक्ल में जुड़ जाते हैं और मिल कर काफ़ियाँ गाते हैं। कई बार कव्वाल काफ़ी गाते हैं। काफ़ियों की बोली बहुत सादी और आम जानकारी की होती थी।

सूफ़ियों की पंजाबी में लिखी काफ़ियों में अरबी और फ़ारसी के शब्दों और इस्लामी धर्म-ग्रन्थों के कई उद्धरण भी मिलते हैं, परन्तु कुल मिला कर इनमें स्थानीय भाषा, मुहावरे और सदाचार का रंग प्रधान है।

बुल्लेशाह ने 'बारहमाह' और 'अठवारे' भी रचे हैं और 'सीहरफ़ियाँ' और दोहे भी। बारहमाह में वर्ष के भिन्न-भिन्न महीनों के द्वारा कवि ने प्रेम और विरह के विषयों को लिया है। 'सीहरफ़ी', 'पट्टी' या 'बावन अखरी' काव्य का रूप है जिसमें कवि किसी वर्णमाला के भिन्न-भिन्न अक्षरों के सहारे अपने विचार प्रकट करता है। बुल्लेशाह, सुल्तान बाहू और दूसरे कई सूफ़ियों ने सीहरफ़ियाँ लिखी हैं। बुल्लेशाह की सीहरफ़ियाँ उसकी काफ़ियों की तरह प्रेम और विरह के रंग से ओत-प्रोत हैं। इनमें कई सूक्ष्म रूहानी अनुभव बहुत रहस्यमय, परन्तु आसान बोली में प्रस्तुत किये गए हैं। अठवारियों में भी कवि ने सप्ताह के हर दिन के आधार पर प्रेम और विरह का वर्णन किया है। दोहे में साधारण तौर से कवि दो पंक्तियों में कोई पूरा भाव प्रकट करता है। साईं जी के दोहे बहुत प्रबल और स्पष्ट शैली में लिखे

गये हैं। इनमें कर्मकाण्ड और मुल्लाओं, काजिओं, पण्डितों और तथाकथित विद्वानों पर करारी चोट की गई है। कई दोहों में सूक्ष्म रूहानी रहस्य बहुत सरल परन्तु भाव-विभोर ढंग से प्रकट किया गया है।

शाह हुसैन आदि सूफ़ी कवियों की तरह बुल्लेशाह ने बहुत-से अलंकार और प्रतीक साधारण पंजाबी जीवन से लिये हैं। इन अलंकारों का सम्बन्ध चर्खों, पूनियों, गोहड़ियाँ, तकलों, त्रिंजण, पत्तन, पूर, रस्सी, घड़ा, घड़ोली आदि से है।[1] इस लोक को मायका और परलोक को ससुराल कहा है और आत्मा व परमात्मा के सम्बन्ध को स्त्री व पुरुष के रिश्ते द्वारा वर्णन किया गया है। इसी सम्बन्ध को हीर-रांझा, सस्सी-पुन्नू, संमी-ढोला, यूसुफ-जुलैखा, लैला-मजनूं आदि की उपमाओं द्वारा भी प्रकट किया है। आपने ईरानी सूफ़ियों वाले बुलबुल, चमन, पीरे-मुगां, मयखाना, शराब, प्याले, सुराही आदि प्रतीकों के साथ कृष्ण, कान्ह, गउओं, वृन्दावन, बाँसुरी, राम, दहसिर, लंका आदि प्रतीक भी प्रयोग किये हैं। इसी प्रकार कलमे या कलाम का भाव प्रभावशाली बनाने के लिये शब्द, नाम, अनहद शब्द, अनहद की मुरली, अनहद नाद आदि विशुद्ध भारतीय पदों का प्रयोग किया है। मुर्शिद के लिये गुरु और सतगुरु शब्दों का प्रयोग किया है। मानव शरीर को हरि-मन्दिर, ठाकुरद्वारा आदि कहा है। प्रत्यक्ष है कि आपने सर्व-साँझे विचारों को प्रकट करने के लिये भी और हिन्दू-मुसलमान दोनों में सरलता से समझी जा सकने वाली मिश्रित शब्दावली प्रयोग की है।

साईं जी की बोली अधिकतर पंजाबी है, परन्तु आपने कुछ काफ़ियाँ और दोहे हिन्दी और साध-भाषा के मिश्रित रंग में भी रचे हैं। बारहमाह में पंजाबी और हिन्दी दोनों भाषाएँ इकट्ठी प्रयोग की हैं। इससे पता चलता है कि आपका भाषा के प्रति बड़ा उदार दृष्टिकोण था। आपका मुख्य उद्देश्य विचारों की अभिव्यक्ति था। जिस भाषा में कोई भाव सरल और सुन्दर ढंग से प्रस्तुत हो सका, वह आपने कर दिया।

हज़रत अनवर अली रोहतकी लिखते हैं कि पंजाब और इसके आसपास के क्षेत्रों में इंसाने-कामिल हज़रत बुल्लेशाह का कलाम पढ़ने और

---

1. पंजाब, भाषा विभाग पंजाब, पटियाला, 1960, पृ. 424.

गाने का आम रिवाज़ है क्योंकि यह कलाम अद्वैतवाद से सम्बन्धित है और इसमें हज़रत शाह साहिब ने आध्यात्मिक और वास्तविकता के मोती पंजाब की प्यारी बोली में पिरोये हैं। यह दैविक प्रेम का शक्तिशाली कलाम है जो परमात्मा के सच्चे भक्तों और प्रेमियों की ऐसी दशा बना देता है जिसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। यह कलाम इश्क की आग भड़काता है और तन-बदन में आग लगाता है जो सच्चे भक्तों की आत्मा का भोजन है।[1]

आप कहते हैं कि कामिल सूफ़ी फ़कीरों ने लोगों को अज्ञान की नींद से सावधान करने के लिये अपने कलाम में वास्तविकता अर्थात् सत्य का रहस्य भरा ताकि इस कलाम को सुन कर लोगों के दिल पर चोट लगे और उनको अपनी असलियत का ज्ञान हो।[2] हज़रत बुल्लेशाह का कलाम भी इसी श्रेणी में आता है, इसमें बिजली जैसा प्रभाव है। इसको सुनने से लोगों पर सन्नाटा छा जाता है और उनके अन्दर परमात्मा की याद ताज़ा हो जाती है।[3]

डॉ. नज़ीर अहमद लिखते हैं कि साईं बुल्लेशाह अपनी बात को घुमा-फिरा कर नहीं कहते। उन्होंने जो बात कही है, सीधी कही है परन्तु विचार की तीव्रता और दृष्टि की गहराई इसमें वह प्रभाव पैदा करती है कि कला मुँह देखती रह जाती है। यह सादगी किसी अभ्यास का परिणाम नहीं है। यह वह आदिम या प्रारम्भिक सरलता है जो खुरदरी भी है और शक्तिशाली भी।[4]

परमार्थ के गूढ़ रहस्यों को अरबी, फ़ारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के कठिन शब्दों में व्यक्त करने के स्थान पर साधारण लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा में प्रकट कर देना मध्यकाल के सभी सन्त, भक्त, फ़कीर कवियों की वाणी का विशेष गुण है, जिसके साईं बुल्लेशाह के कलाम में भी सुन्दर दर्शन होते हैं।

आपकी वाणी की एक बड़ी विशेषता व्यंग्य या प्रहार है जो कहीं सुई की चुभन का रूप धारण करती है और कही डंके की करारी चोट बन

1. कानूने-इश्क, पृ. 6.

2-3. वही, पृ. 63-64.

4. कलामे बुल्लेशाह, तअारफ़।

जाती है। इस व्यंग्य का सबसे अधिक प्रयोग मुल्लाओं, काजियों, पण्डितों, पुरोहितों और तथाकथित परहेजगारों के विरुद्ध किया गया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

1. इल्मों मियां जी कहावें, तंबा चुक चुक मंडी जावें।
धेला लै के छुरी चलावें, नाल कसाइयां बहुत प्यार।
इल्मों बस करीं ओ यार, इल्मों बस करीं ओ यार।
2. वारे जाईए ओन्हां तों जिहड़े मारन गप्प शड़प्प।
कौडी लभ्भी दे देवन ते बुगचा घाऊं घप्प।
3. वारे जाईए ओन्हां तों जिहड़े गल्लीं लैन परचा।
सूई सलाई दान करन ते अहिरन लैन छुपा।

(डॉ. नज़ीर अहमद : **कलाम बुल्लेशाह तआरफ**)

साईं बुल्लेशाह के कलाम में ऐसी शोखी और नाजुक ख़याली है जिसका उदाहरण ढूँढ़ पाना सरल नहीं। 'हुन किस थीं आप छुपाईदा' काफ़ी में आप कहते हैं कि वह दयालु प्रभु स्वयं ही वृन्दाबन का ग्वाला (भगवान कृष्ण) बन कर आता है, स्वयं ही लंका पर आक्रमण की रणभेरी बजाने वाला (भगवान राम) बनता है और स्वयं ही मक्के का हज करने वाला (हज़रत मुहम्मद) बन जाता है :

बिंदारबन में गऊआं चरावे, लंका ते चढ़ नाद वजावे।
मक्के दा बन हाजी आवें, वाह वाह रंग वटाईदा।

मक्का के हज की प्रथा हज़रत मुहम्मद के बाद प्रारम्भ हुई, परन्तु आप दयालु प्रभु के मुकामे हक (सचखण्ड) से हज़रत मुहम्मह का रूप धारण करके मक्का पहुँचने को मक्के का हाजी बन कर आने का नाम देते हैं, जो बहुत अछूता वर्णन है।

इसी काफ़ी में आगे चल कर आप कहते हैं कि जब मंसूर तुम्हारे पास पहुँचा तो तुमने उसको सूली पर चढ़ा दिया। वह मेरे पिता का पुत्र होने के नाते मेरा भाई है। मैं उसका उत्तराधिकारी हूँ, इसलिये मुझे उसके रक्त का बदला दो। एक ओर परमात्मा को पिता कहना और फिर उसके पुत्र को अपना भाई कह कर उसके रक्त का बदला माँगना एक अजीब चोंचला है जो साईं बुल्लेशाह को ही शोभा देता है :

मनसूर तुसां ते आया ए, तुसां सूली पकड़ चढ़ाया ए।
मेरा भाई बाबल जाया ए, तुसीं खून दिओ मेरे भाई दा।

इसी काफ़ी में प्रेमिका के रूप में बहुत प्यार भरी अदा में उस दयालु प्रभु को परेशान करते हुए कहते हैं कि अब जो मर्जी हो जाये। मुझे तुमसे दूर नहीं जाना, मैं तेरे सारे भेद खोल कर देखूँगी कि तू किस प्रकार मुझे अंग नहीं लगाता। परमात्मा का डट कर मुकाबला करने वाला और उसको ताने ही नहीं, धमकियाँ तथा अल्टीमेटम देने वाला ऐसा शोख इन्कलाबी कहीं कम ही दिखाई देता है :

हुन पास तुहाडे वस्सांगी, न बेदिल हो के नस्सांगी।
सब भेद तुसाडे दस्सांगी, क्यों मैंनूं अंग न लाईदा।

इस प्रकार आपने मुर्शिद या परमात्मा को बुक्कल (चादर) का चोर कह कर पुकारा है। चोर ख़तरनाक है। परन्तु घर का चोर और बुक्कल या अन्दर का चोर तो और भी ख़तरनाक होता है। दयालु प्रभु को चित्तचोर कहा गया है क्योंकि वह छिप-छिप कर मन को मोह लेता है और पकड़ने का प्रयत्न करें तो वश में नहीं आता। आत्मा कुंडी में फँसी मछली की तरह है और मुर्शिद छिप-छिप कर कुंडियाँ डालने वाला और डोर खींचने वाला मछेरा है :

साधो किस नूं कूक सुनांवा, मेरी बुक्कल दे विच चोर।
वाह अनायत कुंडियां पाइयां, लुक छुप खिचदा डोर।

जिस प्रकार साईं बुल्लेशाह ने अपने महबूब (प्रेमी), मुर्शिद या परमात्मा को समानता के स्तर पर आकर ताने दिये हैं, उससे उनका कलाम बिलकुल स्वाभाविक बन गया है और परमात्मा या गुरु दूर की वस्तु न रह कर अपने किसी निकट के सम्बन्धी या प्रेमी की भाँति लगने लगा है।

साईं बुल्लेशाह की सारी वाणी में विचारों की निश्छलता तथा निष्कपटता है। यह वाणी बिना प्रयत्न के प्राकृतिक झरनों की भाँति दिल की गहरी कन्दराओं से निकली प्रतीत होती है। इस वाणी में बेख़ुदी और बेपरवाही है, मस्ती और ख़ुमारी है, रहस्यमय नज़ाकत और अल्हड़ कोमल शोखी है। इसमें एक मटक है, दिलेरी और शक्ति है। इस वाणी में सुखान्त

गीत वाला आनन्द है और दुखान्त उलाहने की करुणामय वेदना। यह कहीं संगीत की मधुर ध्वनि बन जाती है तो कहीं नृत्य की लयमय छमछमाहट। यह भेद छिपाती है और भेद खोलती भी है। इसकी प्रकृति जितनी सरल और स्वाभाविक है, उतनी ही गूढ़ और अर्थमय है। इसमें प्रेम के तीक्ष्ण अनुभव को ऐसी रवानगी और शक्ति से वर्णन किया गया है कि यह ज़बरदस्ती हृदय की गहरी तह में उतरती चली जाती है। जो कोई एक बार इसको पढ़ लेता है, बार-बार इसको पढ़ने के लिये विवश हो जाता है।

•

साईं बुल्लेशाह
की वाणी

*काफ़ियाँ
*बारहमाह
*सीहरफ़ी
*अठवारा
*गंढाँ
*दोहे

मैं बे कैद मैं बे कैद

मैं बे कैद मैं बे कैद।
न रोगी न वैद।
न मैं मोमन न मैं काफ़र।
न सैयद न सैद।
चौधीं तबकीं सैर असाडा।
किते न हुंदा कैद।
ख़राबात है ज़ात असाडी।
न शोभा न ऐब।
बुल्ला शहु दी ज़ात की पुछनै।
न पैदा न पैद।

(फ़कीर मुहम्मह : 'कुल्लियात', 135)

वाणी का सम्पादन

यहाँ बुल्लेशाह की वाणी के अध्ययन के लिये हज़रत अनवर अली रोहतकी की पुस्तक 'कानूने इश्क', डॉ. फ़कीर मुहम्मह की पुस्तक 'कुल्लियात' या 'काफ़ियाँ बुल्लेशाह', डॉ. नज़ीर अहमद की पुस्तक 'कलाम बुल्लेशाह', 'अब्दुल मजीद भट्टी की पुस्तक 'काफ़ियाँ बुल्लेशाह, डॉ. गुरदेवसिंह द्वारा सम्पादित पुस्तक 'कलाम बुल्लेशाह', डॉ. दीवानसिंह और डॉ. विक्रमसिंह घुम्मण द्वारा सम्पादित पुस्तक 'बुल्लेशाह का काव्य लोक', प्रो. जी. एल. शर्मा की पुस्तक 'बुल्लेशाह : विवेचन और रचना' और प्यारासिंह पदम की रचना 'काफ़ियाँ साईं बुल्लेशाह' से लाभ उठाया गया है।

साईं बुल्लेशाह की अधिकतर वाणी काफ़ियों में है। इस पुस्तक में आपकी अधिक से अधिक काफ़ियाँ सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है।

जो काफ़ी पुस्तक के पहले भाग अर्थात् 'जीवन और रूहानी उपदेश' में पूरी आ चुकी है, वह दोबारा वाणी वाले भाग में शामिल नहीं की गई, परन्तु पाठकों की सुविधा के लिये विषय-सूची में उसका भी विवरण दे दिया गया है।

काफ़ियों का चुनाव मुख्य तौर से रोहतकी की रचना 'कानूने इश्क', डॉ. फ़कीर मुहम्मद की 'कुल्लियात' और डॉ. नज़ीर अहमद की रचना 'कलाम बुल्लेशाह' से किया गया है। प्रो. जी. एल. शर्मा और डॉ. गुरदेव सिंह ने साईं बुल्लेशाह की सारी काफ़ियाँ पंजाबी लिपि में प्रकाशित की हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लिये काफ़ियों का हिन्दी पाठ तैयार करने में इन दोनों विद्वानों की पुस्तकों से भी लाभ उठाया गया है।

काफ़ियों में कई स्थानों पर पाठ में अन्तर दिखाई देता है। पुस्तक का मुख्य उद्देश्य साईं बुल्लेशाह की वाणी के रूहानी पहलू को प्रस्तुत करना है परन्तु कहीं-कहीं पाठ-भेदों के विषय में अपने सुझाव नीचे टिप्पणियों में शामिल किये गए हैं।

काफ़ियों के भाव और उनमें आये कठिन पदों के अर्थ नीचे फुट नोटों में दिये गए हैं। आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं विचारों की संक्षेप व्याख्या भी की गई है।

साईं बुल्लेशाह की काफ़ियाँ गाये जाने के लिये रची गई हैं। प्रत्येक काफ़ी की पहली पंक्ति टेक या स्थायी की सूचक है जो हर पद्यांश के बाद दोहराई जाती है। पुस्तक में एक पद्यांश को दूसरे से अलग करने के लिये स्पेस दिखाई गई है या टेक को दोहराया गया है। काफ़ी गाते समय हर पद्यांश के बाद टेक की तुक को दोहराना आवश्यक है।

कुछ चुनी हुई प्रसिद्ध काफ़ियाँ

अंमां बाबे दी भलिआई

इस काफ़ी में संकेत किया गया है कि मनुष्य के पूर्वज—आदम और हव्वा ने प्रभु के आदेश का पालन न करते हुए गेहूँ की चोरी की। माता-पिता के इस कर्म का फल सारी मानव-जाति को मिल रहा है। साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि संसार में उलटी रीति है। करता कोई है और भरता कोई है। अच्छे लोग दुःख प्राप्त कर रहे हैं और बुरे मौज उड़ा रहे हैं :

अंमां बाबे दी भलिआई, ओह हुन कंम असाडे आई[1]।
अंमां बाबा चोर धुरां दे, पुत्तर दी वडिआई[2]।
दाणे उत्तों गुत्त विगुत्ती, घर घर पई लड़ाई[3]।
असां कजीए तदांही जाले, जदां कनक ओन्हां टरकाई[4]।
खाए खैरा ते फाटीए जुंमा, उलटी दस्तक लाई[5]।

---

1. 'भलिआई' शब्द व्यंग्यात्मक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। आदम और हव्वा की भलाई परमात्मा की आज्ञा का न पालन करना है, जिसका मनुष्य फल भोग रहा है।

2. यहाँ 'वडिआई' शब्द व्यंग्य के रूप में प्रयुक्त है।

3. गुत्त-विगुत्ती=गुत्थम-गुत्था; स्त्रियाँ प्रायः लड़ते समय गुत्थम-गुत्था हो जाती हैं। शायद कवि यह कहना चाहता है कि गेहूँ के दाने की चोरी के कारण झगड़ा बढ़ गया जिसका प्रभाव अब भी हर जीव पर पड़ रहा है।

4. हमें तभी दुःख उठाने पड़े क्योंकि हमारे पूर्वजों ने स्वर्ग से गेहूँ चुरा लिया था।

5. यह ऐसा उलटा खेल है जिसमें करता कोई (खैरा) है और भोगता कोई दूसरा (जुम्मा) है।

बुल्ला तोते मार बागां थीं कढ्ढे, उल्लू रहिन उस जाई[1]।
अंमां बाबे दी भलिआई, ओह हुन कंम असाडे आई।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 16)

अपना दस्स ठिकाना

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह जीव को उपदेश देते हैं कि तू यह सोचने का प्रयत्न कर कि तू किस देश से आया है और तुझे किस मंज़िल पर पहुँचना है। तू संसार की जिस भी वस्तु का अभिमान करता है वह तेरे साथ नहीं जा सकती। तू अत्याचार करता है, लोगों को दुःखी करता है और तूने अपना धन्धा (किसब) लोगों को लूट कर खाना बना लिया है। तू यहाँ पर चार दिन मनमानी कर सकता है परन्तु अन्ततः तुझे यहाँ से मृत्यु लोक में जाना पड़ेगा। मृत्यु का देवता बहुत कठोर है। काफ़ी के अन्त में साईं जी नम्रतापूर्वक कहते हैं कि मैं संसार के लोगों में सबसे पुराना और बड़ा पापी हूँ :

अपना दस्स ठिकाना, किधरों आया, किधर जाना।
जिस ठाने दा मान करें तूं, ओहने तेरे नाल न जाना।
जुलम करें ते लोक सतावें, कसब फड़िउ लुट खाना।
कर लै चावड़[2] चार दिहाड़े, औड़क[3] तूं उठ जाना।
शहिर-ख़ामोशां[4] दे चल वसीए, जित्थे मुलक समाना।
भर भर पूर लंगावे डाढा, मलक-उल-मौत[5] मुहाना।
इन्हां सभनां थीं ए, बुल्ला औगुणहार पुराना।
तूं किधरों आया, किधर जाना, अपना दस्स ठिकाना।

(नज़ीर अहमद : 'कलाम बुल्लेशाह', 6)

---

1. तोते (तू-तू और मै-मैं करने वाले मनुष्य) बाग से निकाल दिये और उल्लू (आँखें बन्द करके रहने वाले) वहाँ रहने दिये।

2. चावड़=मनमान, 3. ओड़क=अन्ततः 4. शहरे-खामोशां=कब्रिस्तान, 5. मलक-उल-मौत=मौत का देवता।

अपने संग रलाईं प्यारे

शिष्य रूहानी सफ़र की कठिनाइयों एवं कष्टों का वर्णन करता हुआ सतगुरु से दया माँगता है। वह कहता है कि प्रीति चाहे मैंने की है चाहे तुमने, तुम अपनी दया से उसको सदा निभाते रहना। काफ़ी में संकेत किया गया है कि मन, माया और काल के संसार में विषयों-विकारों के अनेक शत्रु जीव का मार्ग रोक कर खड़े हैं। केवल प्रभु-भक्ति से ही जीव का छुटकारा हो सकता है :

अपने संग रलाईं प्यारे, अपने संग रलाईं।
पहलों नेहुं लगाया सी तैं, आपे चाईं चाईं।
मैं पाया ए कि तुध लाया, अपनी ओड़ निभाईं[1]।
राह पवां ता धाड़े[2] बेले[3], जंगल लख बलाईं।
भौंकन चीते ते चितमचित्ते, भौंकन करन अदाईं।
पार तेरे जगातर चढ़िया, कंढ़े लख्ख बलाईं[4]।
हौल दिले दा थर थर कंबदा[5], बेड़ा पार लंघाईं।
कर लईं बंदगी रब्ब सचे दी, पवन कबूल दुआईं।
बुल्ले शाह ते शाहां दा मुखड़ा, घुंगट खोल विखाईं[6]।
अपने संग रलाईं प्यारे, अपने संग रलाईं।

(फ़क़ीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 5)

अब क्यों साजन चिर लाइओ रे

इस काफ़ी में प्रेयसी के हृदय पर प्रेम से उत्पन्न होने वाले विचित्र प्रभाव को अंकित किया गया है। विरहिणी सांसारिक दुःख-सुख से ऊपर उठ जाती है। उसके हृदय में प्रेम की ज्वाला दहकती है। उसे किसी प्रकार का शृंगार नहीं भाता। प्रियतम की प्रतीक्षा करते हुए नयनों में रक्त उतर आता है परन्तु इस दुःख में भी एक विचित्र आनन्द है :

---

1. अपनी दया से इसको पूरा कर देना 2. डाका 3. बलाईं अर्थात् दुःख और कष्ट 4. नदी चढ़ी हुई है और किनारे पर भूत-प्रेत बैठे हैं 5. दिल भय से काँप रहा है 6. डॉ० नज़ीर अहमद ने 'बुल्लेशाह नूं शोह दा मुखड़ा घूंघट खोल दिखाईं' दिया है, जो अधिक उचित है।

अब क्यों साजन चिर लाइओ रे[1]। टेक।
ऐसी मन में आई का, दुख सुख सभ वंजाइओ रे[2]।
हार शिंगार को आग लगाऊं, घट पर ढांड मचाइओ रे[3]।
सुन के ज्ञान की ऐसी बातां, नाम निशान सभी अणघाता[4]।
कोयल वांगूं कूकां आतां, तैं अजे वी तरस ना आइओ रे[5]।
मुल्लां इश्क ने बांग दिवाई, उठ दौड़न गल वाजब आई[6]।
कर कर सजदे घर वल धाई[7], मत्थे महिराब टिकाइओ रे[8]।
प्रेम नगर दें उलटे चाले, खूनी नैन होए खुशहाले[9]।
आपे आप फसे विच जाले, फस फस आप कुहाइओ रे[10]।
बुल्ला शौह संग प्रीत लगाई, सोहनी बन तन सभ कोई आई।
वेख के[11] शाह अनाइत साईं, जीअ मेरा भर आइओ रे[12]।

(अब्दुल मजीद भट्टी : **'काफ़ियाँ बुल्लेशाह'**, 16)

आओ सइओ रल दिओ नी वधाई

इस काफ़ी में यह भाव प्रकट किया गया है कि सतगुरु का बाहरी वेष तो आम मनुष्य जैसा होता है परन्तु वह वास्तव में प्रभु का रूप ही

---

1. हे प्रियतम, तूने अब क्यों देर लगाई है, भाव तू मुझे दर्शन क्यों नहीं देता 2. का=क्या ; मेरे मन में क्या आई है जो मैं सुख-दुःख का विचार भूल गई हूँ।

3. मेरे अन्दर आग की लपटें लगी हैं 4. अणघात=अचानक 5. मैं कोयल की भाँति कूक रही हूँ परन्तु तुझे अब तक मुझ पर दया नहीं आई।

6. प्रेम के मुल्ला ने अनहद शब्द की बाँग दी है। उसको सुन कर मेरा उस ओर दौड़ना उचित है 7. दौड़ी 8. अर्थ के लिये देखिये पृ. 82.

9. प्रेम की उलटी रीति है। प्रियतम के नेत्र जो प्रेमिका का खून पीते है, वही प्रेमिका को ठण्डक पहुँचाते हैं। मिर्जा गालिब ने भी लिखा है : 'उसी को देख कर जीते हैं कि जिस काफ़र पे दम निकले' 10. प्रेमी स्वयं प्रेम के जाल में फँसता है और स्वयं अपने आपको कटवा लेता है 11. वेख के=देख कर 12. अब्दुल मजीद भट्टी ने 'जीअ मेरा भरमाइओ रे' लिखा है परन्तु अधिकतर स्थानों पर 'जीअ मेरा भर आइओ रे' दिया है जो उचित है। इसका अर्थ यह है कि उस साजन को देख कर मेरा जी भर आया है अर्थात् उसे देख कर मैं अपने आँसू रोक न सकी। ये आँसू प्रेम की निशानी हैं।

होते हैं। साईं जी कहते हैं कि मेरे मुर्शिद (रांझा) के हाथ में डण्डा और कन्धे पर कम्बल है। उसने साधारण चरवाहों जैसी शक्ल बना रखी है परन्तु किसी को उसकी वास्तविक सामर्थ्य का ज्ञान नहीं है : 'असल हक़ीक़त ख़बर न काई।' मुर्शिद के रूप में संसार में आया हुआ प्रभु वनों में भटकता फिरता है। उसकी शान (मुकुट) वनों में मन्द पड़ रही है, परन्तु उसका रूप प्रभु के रूप से मिलता है : 'है कोई अल्ला दे वल भुलदा।' काफ़ी के अन्त में आप कहते है कि मैंने उस प्रभु के साथ सच्चा प्रेम किया है, जिससे मेरे सिर पर दु:खों की गठरी लद गई है। मुझे प्रेम के व्यापार में अभी तक कुछ लाभ नहीं हुआ :

आओ सइओ रल दिओ नी वधाई।
मैं बर[1] पाया रांझा माही। टेक।
अज तां रोज़ मुबारक चड़िया।
रांझा साडे विहड़े वड़िया।
हत्थ खुंडी मोढे कंबल धरिया।
चाकां वाली शकल बनाई[2]।
आओ सइओ रल दिओ नी वधाई।
मुकट गऊआं दे विच रुलदा[3]।
जंगल जूहां दे विच रुलदा।
है कोई अल्ला दे वल भुलदा[4]।
असल हक़ीकत ख़बर न काई।
आओ सइओ रल दिओ नी वधाई।
बुल्ले शाह एक सौदा कीता।
पीता ज़हर प्याला पीता।
न कुझ लाहा टोटा[5] लीता।

1. वर 2. भैंसे चराने वालों की शक्ल बनाई है 3. वह शहंशाह है परन्तु उस की शान (मुकुट) गौओं और वनों में खराब हो रही है 4. उसकी शक्ल परमात्मा से मिलती है 5. लाहा टोटा=लाभ-हानि।

दरद दुखां दी गठड़ी चाई।
आओ सइओ रल दिओ नी वधाई।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 19)

आ मिल यार सार लै मेरी

प्रस्तुत काफ़ी में कर्मकाण्डी पुरोहितों और मुल्लाओं पर व्यंग्य कसा गया है। साईं जी कहते हैं कि प्रभु से बिछुड़ा हुआ निर्बल जीव संसार में अकेला है। यह कई प्रकार से घिरा हुआ है। धर्म के ठेकेदारों ने इसको कई प्रकार के भ्रम-जाल में फँसा रखा है। प्राणी के पाँव में भ्रमों की कठोर बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं। मुल्ला लोग कर्मकाण्ड को ही सच्चा धर्म कहते हैं। बुल्लेशाह कहते हैं कि परमात्मा का सच्चा प्रेम धर्म और जाति के बन्धनों का शत्रु होता है। आप कहते हैं कि प्रियतम के देश पहुँचने के लिये सतगुरु की नौका पर सवार हो जाना चाहिये। इस प्रकार जीवन के सब संकटों का निवारण हो सकता है :

आ मिल यार सार लै मेरी, मेरी जान दुखखां ने घेरी।
अंदर खवाब विछोड़ा होया, ख़बर न पैंदी तेरी[1]।
सुंञी बन विच लुट्टी साईंआं, चोर शंग ने घेरी[2]। 3172
मुल्लां काजी राह बतावन, देन धर्म दे फेरे[3]।

---

1. ख़वाब=स्वप्न; डॉ नज़ीर अहमद ने स्वप्न में वियोग होने का अर्थ ग़फलत या बेपरवाही के कारण प्रियतम से बिछुड़ जाने का किया है।

2. सुंञी=अकेली, चोर शंग=चोर और डाकू; कई पुस्तकों में 'सुंझी बन विच लुट्टी साईआं सूर पलंघ ने घेरी' लिखा मिलता है। सूर=जंगली सूर, पलंघ=चीता।

3. इन दो तुकों का साधारण तौर से यह पाठ मिलता है :

मुल्ला काजी सानूं राह बतावन, देन भरम दी फेरी।
इह तां ठग्ग जगत दे, जिहा लावन जाल चुफेरी।

'धर्म दे फेरे' से तात्पर्य बनावटी धर्म के चक्र से है जिसमें काजियों, मुल्लाओं आदि पर बहुत सूक्ष्म व्यंग्य है। 'भरम दी फेरी' और 'धर्म दे फेरे' दोनों का सूक्ष्म भाव एक ही है।

इह तां ठग ने जग दे झीवर, लावन जाल चुफेरे[1]।
करम शरां दे धरम बतावन, संगल पावन पैरीं[2]।
जात मज़हब इह इश्क न पुछदा, इश्क शरा दा वैरी।
नदीउ पार मुलक सज्जन दा, लोभ लहिर ने घेरी[3]।
सतिगुर बेड़ी फड़ी खलोते, तैं क्यों लाई ए देरी।
बुल्ला शाह शौह तैनूं मिलसी, दिल नूं देह दलेरी।
प्रीतम पास ते टोलना किसनूं[4], भुलियों सिखर दुपहिरी।
आ मिल यार सार[5] लै मेरी, मेरी जान दुखवां ने घेरी।

(नज़ीर अहमद : 'कलाम बुल्लेशाह', 15)

इक अलिफ़ पढ़ो छुटकारा ए

अन्य कई काफ़ियों की भाँति इस काफ़ी में भी यह भाव प्रकट किया गया है कि सच्चा ज्ञान एकमात्र प्रभु के सम्मिलन से प्राप्त होता है। ग्रन्थों-शास्त्रों का समस्त बाहरी पठन-पाठन व्यर्थ है। आप कहते हैं कि विद्वान धर्म-ग्रन्थों का पाठ करते हैं परन्तु उनका आचरण अत्याचारियों जैसा है। वह बिना रुके तीव्रगति से शास्त्रों का पाठ करते हैं पर उनका ध्यान सांसारिक वस्तुओं की ओर रहता है और चंचल मन सन्देशवाहक की भाँति सभी ओर दौड़ता है। आप कहते हैं कि वास्तव में जानने योग्य वस्तु तो एक प्रभु है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई। जब सृष्टि का नाश हो जाता है तो भी वह प्रभु विद्यमान रहता है :

---

1. झीवर=चिड़ीमार; जीव को मासूम, निर्बल, बेचारी चिड़िया कहना और काजियों, मुल्लाओं आदि को निर्दय, ज़ालिम, फाहीवाल आदि कहना बहुत भावमय है। ये लोग स्वार्थ के कारण भोले-भाले लोगों को कई प्रकार के प्रलोभनों में फँसा लेते हैं।

2. डॉ. नज़ीर अहमद ने इस वर्णन में कर्म और धर्म के विरोध की सुन्दरता की ओर संकेत किया है। पुरोहित कर्मकाण्ड को ही सच्चा धर्म सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। यह जीव को इस सीमा तक कर्मकाण्ड के कटु बन्धनों में जकड़ देती है कि उसकी सच्ची रूहानी उन्नति की कोई गुँजाइश नहीं रहती।

3. भवसागर को पार करके ही प्रियतम से मिलाप हो सकता है परन्तु जीव मोह, माया या लोभ के चक्र में फँसा हुआ है।

4. अन्दर बैठे प्रियतम को बाहर कहाँ ढूँढता फिरता है ? 5. सार=ख़बर।

इक अलिफ़ पढ़ो छुटकारा ए[1]। टेक।

इक अलफों दो तिन चार होए, फिर लख करोड़ हजार होए[2]।
फिर ओथों बाझ शुमार होए, हिक अलफ़ दा नुकता प्यारा ए[3]।
क्यों पढ़ना ए गड किताबां दी, सिर चाना ए पंड अज़ाबां[4] दी।
हुन होइउ शकल जलादां दी, अग्गे पैंडा मुशकल भारा ए[5]।
बन हाफ़ज़ हिफ़ज़ कुरान करें, पढ़ पढ़ के साफ़ ज़बान करें[6]।
फिर निअमत विच ध्यान करें, मन फिरदा ज्यों हलकारा ए[7]।
बुल्ला बी बुहड़ दा बोया सी, ओह बिरछा वड्डा जां होया सी।
जद बिरछ ओह फ़ानी होया सी, फिर रहि गया बी अकारा ए[8]।
इक अलिफ़ पढ़ो छुटाकारा ए। (फ़कीर मुहम्मद : **'कुल्लियात'**, 11)

1-3. अलिफ़ से अभिप्राय एक अल्लाह या परमात्मा से है। अरबी या फ़ारसी वर्णमाला में अल्लाह शब्द लिखने लगें तो पहला अक्षर अलिफ़ आता है। अलिफ़ का रुख ऊपर की ओर को है और इसकी शक्ल एक से मिलती है। हज़रत अनवर अली रोहतकी 'कानूने-इश्क' के पृ. 204 पर लिखते हैं कि अलिफ़ पढ़ने से छुटकारा है, वह तख़्ती पर सबसे पहले लिखा जाने वाला अक्षर नहीं। वह वजूदे मुतलिक (निराकार व निर्लिप्त प्रभु) है।

एक अलिफ़ (परमात्मा) से ही सारी अनेकता पैदा हुई। शिव शक्ति या माया और ब्रह्म, तीन गुण, जलवायु, पृथ्वी, अग्नि और आकाश पाँच तत्व और इनसे पैदा होने वाली अनेक सूरतों का उदय एक निरंकार से ही हुआ है।

4. अजाबां=मुसीबतें; एक अलिफ़ का मिलन सच्चे ज्ञान और सच्चे आनन्द का स्रोत है, धर्म-ग्रन्थों का रूहानी प्राप्ति का कोरा ज्ञान दुःखों की गठरी के समान है।

5. तू यहाँ लोगों पर अत्याचार करता है, यह नहीं सोचता कि मौत के बाद कठिन घाटी से गुजरना पड़ेगा।

6. हिफ़ज़=मौखिक याद करना; हाफ़िज=कुरान शरीफ़ को मौखिक याद करने वाले को हाफ़िज कहते हैं।

7. कुरान शरीफ़ को बड़ी साफ़ जिह्वा से तीव्र गति में पढ़ता है परन्तु मन वश में नहीं। यह संसार के पदार्थों में जाता है और सन्देश-वाहक के समान बाहर दौड़ता रहता है।

8. अकारा=आकार रहित ; निराकार; जब संसार रूपी बड़ का वृक्ष नष्ट हो जाता है तो इसका बीज वह निराकार परमात्मा फिर भी विद्यमान रहता है। इसी प्रकार शरीर के नष्ट होने पर आत्मा नष्ट नहीं होती।

इक टूना अचंभा गावांगी

इस छोटी-सी काफ़ी में प्रेमिका कहती है कि चाहे मुझे कोई भी साधन क्यों न अपनाना पड़े, मैं हर हालत में अपने रूठे हुए प्रियतम को मनाने का प्रयत्न करूँगी। मैं अद्‌भुत टोना करूँगी जिसकी अग्नि सूर्य को जला सकेगी। मैं हृदय के अन्दर प्रेम की ऐसी प्रबल लहर उठाऊँगी जिसमें सात सागरों की अथाह शक्ति हो। मैं बादल की भाँति बरसूँगी और चाँद का अपना कफ़न बनाऊँगी। काफ़ी के अन्त में प्रेमिका कहती है कि मैं ला-मकान (सचखण्ड) की पटरी पर बैठ कर अनहद नाद बजाऊँगी जिससे मेरा प्रियतम मेरे वश में हो जाये। इससे संकेत मिलता है कि अनहद शब्द या नाम ही प्रियतम को वश में करने का वास्तविक अद्‌भुत टोना या जादू है :

इक टूना अचंभा गावांगी, मैं रूठा यार मनावांगी।
इह टूना मैं पढ़ पढ़ फूकां, सूरज अगन जलावांगी।
अख्खीं काजल काले बादल, भवां से आंधी लिआवांगी।
सत समुंर दिल दे अंदर, दिल से लहिर उठवांगी।
बिजली होकर चमक डरावां, बादल हो गिर जावांगी।
इश्क अंगीठी हरमल[1] तारे, चाँद से कफ़न बनावांगी।
ला मकान की पटड़ी ऊपर, बहि के नाद बजावांगी।
लाए सो आन मैं शहु गल अपने, तद मैं नार कहावांगी।
इक टूना अचंभा गावांगी। (नज़ीर अहमद : 'कलाम बुल्लेशाह', 10)

इक नुकता यार पढ़ाया ए

फ़ारसी या उर्दू की वर्णमाला में ऐन और ग़ैन दोनों वर्ण समान दिखाई देते हैं। अन्तर केवल इतना है कि ऐन पर एक विन्दु लगने पर ग़ैन बन जाता है। इस काफ़ी में इस तथ्य की सहायता से साईं बुल्लेशाह यह बात समझाने का प्रयत्न करते हैं कि ऐन अर्थात् प्रभु और ग़ैन अर्थात् संसार या आत्मा दोनों का मूल एक है। इससे यह भी अभिप्राय है कि मुर्शिद और

---

1. एक बूटी ; इश्क की अंगीठी में तारों रूपी हरमल को जलाऊँगी।

रब का एक रूप हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मुझे सतगुरु की कृपा से इस नुक्ते का ज्ञान हो गया है। आप यह भी संकेत करते हैं कि प्रभु रूपी होत ही आत्मा रूपी सस्सी का मन मोहने के लिये पुन्नूं अर्थात् सतगुरु का रूप धारण करके संसार में आता है :

इक नुकता यार पढ़ाया ए।
इक नुकता यार पढ़ाया ए। टेक।
ऐन ग़ैन दी इक्का सूरत, इक नुकते शोर मचाया ए।
इक नुकता यार पढ़ाया ए।
सस्सी दा दिल लुट्टण कारण, होत पुन्नू बन आया ए[1]।
इक नुकता यार पढ़ाया ए।
बुल्ला शौह दी जात न काई, मैं शौह अनाइत पाया ए[2]।
इक नुकता यार पढ़ाया ए। (फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 10)

इक नुकते विच गल मुकदी ए

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि अगर एक छोटी-सी बात का मर्म समझ लिया जाये तो मनुष्य के अनेक संकट दूर हो सकते हैं। वह बात क्या है ? आप काफ़ी की अन्तिम तीन पंक्तियों में स्पष्ट करते हैं कि वास्तविक रहस्य वाली बात यह है कि सतगुरु की शरण लेने से भक्त (आबद) परमात्मा के साथ मिल जाता है। इससे उसे मस्ती और बेपरवाही वाली अद्भुत अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह तृष्णाओं से मुक्त हो जाता है, उसका हृदय निर्मल हो जाता है और उसे किसी बात की चिन्ता नहीं रहती। काफ़ी के शेष भाग में इस बात पर ज़ोर दिया है कि जो लोग इस मूल तथ्य को छोड़ कर अन्य-अन्य बातों में भटकते रहते हैं, उनके दुःखों की कभी समाप्ति नहीं होती। आप कहते हैं कि धरती पर सिर-माथा रगड़ने से, लम्बे लेट कर मेहराब (मक्के की मसजिद में बनी एक डाट

---

1. सस्सी (आत्मा) का दिल जीतने के लिये होत (परमात्मा), पुन्नू (मुर्शिद, सतगुरु) बन कर आ गया है।

2. वह प्यारा प्रियतम राष्ट्र, धर्म, देश, जाति, नस्ल आदि से परे है। वह अयोनि, अजन्मा और अजाति है। वह मुझे अनायत शाह का रूप धारण करके मिला है।

जिसमें खड़े होकर मुल्ला बाँग देता है) को देखने, विना सोचे-समझे कलमा पढ़ते जाने से कोई लाभ नहीं। आप कहते हैं कि हाजी लोग मक्के की यात्रा के लिये जाते हैं परन्तु वे अपने हज का पुण्य बेच कर लोगों से धन बटोर लेते हैं। क्या इस प्रकार भी कभी प्रभु प्रसन्न हो सकता है ? कुछ लोग घर-बार को त्याग कर जंगलों में चले जाते हैं, वे प्रतिदिन अन्न का एक दाना खाकर गुजारा करते हैं। कई लोग चिल्हे करते हैं। ऐसे हठ कर्म में उलझे हुए अज्ञानी लोग अपने शरीर को व्यर्थ कष्ट देते हैं। इन सबको यह समझ लेना चाहिये कि सतगुरु की शरण में जाकर ही मन निर्मल होता है, प्रभु से मिलन होता है और सच्चे आनन्द की प्राप्ति होती है :

इक नुकते विच गल मुकदी ए। टेक।
फड़ नुकता छोड़ हिसाबां नूं, कर दूर कुफ़र दिआं बाबां नूं[1]।
लाह दोजख गोर अज़ाबां नूं, कर साफ दिले दिआं खवाबां नूं[2]।
गल एसे घर विच ढुकदी ए, इक नुकते विच गल मुकदी ए[3]।
ऐवें मत्था जिमीं घसाईदा, लंमा पा महिराब दिखाईदा[4]।
पढ़ कलमा लोक हसाई दा, दिल अंदर समझ न लिआईदा[5]।
कदी बात सच्ची वी लुकदी ए, इक नुकते विच गल मुकदी ए।
कई हाजी बन बन आए जी, गल नीले जामे पाए जी[6]।
हज बेच टके लै खाए जी, भला एह गल कीहनूं भाए जी[7]।
कदी बात सच्ची वी लुकदी ए, इक नुकते विच गल मुकदी ए।

---

1. इस नुकते को पकड़ लें, शेष जो कुछ है उसको कुफ्र समझ कर त्याग दें।

2. दोज़ख=नरक; गौर=कबर ; मृत्यु और नरकों का भय छोड़ दें और मन से हर प्रकार के संकल्प-विकल्प निकाल दें।

3. ढुकदी=सही बात हृदय रूपी घर को साफ़ करने की है।

4. महिराब=मसजिद की डाट; धरती पर माथा टेकना, लेट कर मेहराब को नमस्कार करने से क्या लाभ है ? (यदि हृदय साफ़ नहीं है)

5. बाहर से कलमा पढ़ते हैं परन्तु अन्दर न उसकी समझ आती है और न हृदय पर उसका प्रभाव होता है। इस प्रकार लोगों की हँसी के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता।

6-7. लोग हज करते हैं फिर हज का पुण्य बेच कर धन कमा लेते हैं।

इक जंगल बहिरीं जांदे नीं, इक दाना रोज लै खांदे नी[1]।
बेसमझ वजूद थकांदे नी, घर आवण हो के मांदे नी[2]।
ऐवें चिल्हियां विच जिंद सुकदी ए[3], इक नुकते विच गल मुकदी ए।
फड़ मुरशद आबद[4] खुदाई हो, विच मस्ती बेपरवाही हो।
बेखाहश बेनवाई[5] हो, विच दिल दे खूब सफ़ाई हो।
बुल्ला बात सच्ची कदों रुकदी ए, एक नुकते विच गल मुकदी ए।

(फ़कीर मुहम्मह : 'कुल्लियात', 12)

इक रांझा मैनूं लोड़ीदा

प्रस्तुत काफ़ी में साईं बुल्लेशाह जी कहते हैं कि आत्मा का परमात्मा के साथ आदिकाल से प्रेम है। कुरान शरीफ़ की एक आयत में आता है 'कुन फ़यीकून'। कुन का अर्थ है, 'हो जा।' फ़यीकून का अर्थ है, 'हो गया।' इसका भाव है कि प्रभु ने रचना को प्रकट होने का हुक्म दिया और रचना हो गई। साईं जी कहते हैं कि मेरा प्रभु के साथ प्रभु द्वारा 'कुन फ़यीकून' कहे जाने से भी पहले का प्रेम है। इस प्रेम के कारण ही वह प्रभु रांझा (सतगुरु) बन कर संसार में आया है। फ़ारसी में 'अहिद' शब्द में मीम की मड़ोड़ी लगा दी जाये तो अहमद बन जाता है। आप कहते हैं कि अहद (परमात्मा) और अहमद (सतगुरु) में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर केवल मीम की मड़ोड़ी का है। कहने का भाव है कि सतगुरु देह-स्वरूप प्रभु है :

इक रांझा मैंनूं लोड़ीदा[6]।
कुन फयकूनों अग्गे दीआं लगीआं, नेहुं न लगड़ा चोरी दा।
आप छिड़ जांदा नाल मज्झीं दे, सानूं क्यों बेलिउं मोड़ीदा[7]।

1-3. बहिरीं=समुद्र; वजूद=शरीर ; मांदे=कमज़ोर; चिल्हे=श्मशान आदि में चिल्हे काटने, कुछ लोग वनों और समुद्रों में जाते हैं, कुछ प्रतिदिन एक दाने पर गुजर करते हैं, वे अज्ञानी शरीर को दुःख देते हैं। वे शिथिल होकर घर लौटते हैं और चिल्हों में व्यर्थ ही जीवन बरबाद करते हैं। 4. आबद=भक्त 5. बेनवाई=फ़कीरी।

6. आत्मा रूपी हीर सतगुरु रूपी रांझा के लिये व्याकुल है।

7. हीर शिकायत करती है कि रांझा मुझे अपने से दूर क्यों रखता है। वह स्वयं खेतों में भैंसें चराने चला जाता है परन्तु मुझे साथ नहीं ले जाता। भाव, वह प्रभु स्वयं दूसरे शिष्यों की ओर चला जाता है पर मेरी ओर ध्यान नहीं देता।

इक रांझा मैंनूं लोड़ीदा।
रांझे जिहा मैनूं होर न कोई, मिनतां कर कर मोड़ीदा।
मान वालियां दे नैन सलोने, सूहा दुपट्टा गोरी दा[1]।
इक रांझा मैनूं लोड़ीदा।
अहिद अहिमद विच फरक न बुल्लिआ, इक रत्ती भेत मरोड़ी दा।
इक रांझा मैंनूं लोड़ीदा।

(फ़कीर मुहम्मह : 'कुल्लियात', 9)

इल्मों बस करीं ओ यार

बहुत-सी अन्य काफ़ियों की भाँति इस काफ़ी में भी यह विचार प्रकट करते हैं कि आत्मा को धर्म-ग्रन्थों के अनन्त पठन-पाठों की आवश्यकता नहीं है। उसे ग्रन्थों और शास्त्रों के लम्बे-चौड़े बाहरमुखी ज्ञान के स्थान पर प्रभु के अन्तरमुख प्रेम का एक अक्षर पढ़ने की आवश्यकता है। यदि यह अक्षर पढ़ लिया है तो आत्मा सच्चे अर्थों में ज्ञानी है। यदि प्रभु-प्रेम का अक्षर नहीं पढ़ा गया और संसार के सभी धर्म-ग्रन्थ पढ़ लिये हैं तो वह अज्ञानी है। बाहर के वाचक ज्ञान से अन्तर में आत्मिक प्रकाश प्रकट नहीं होता। बाहरमुखी ज्ञान से न आशा-तृष्णा की अग्नि शान्त होती है, न ही संशय और भ्रम दूर होते हैं और न ही मन निर्मल होता है। अधिक विद्या प्राप्त करने से आत्मा का आध्यात्मिक सफ़र तय नहीं हो पाता बल्कि मार्ग में कई बाधाएँ खड़ी हो जाती हैं। इसके विपरीत जो साधक प्रभु के प्रेम का अक्षर पढ़ लेता है, वह द्वैत से पूर्ण अद्वैत में पहुँच जाता है। उसे सहज ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। सतगुरु की सहायता से वह सहज ही भवसागर से पार हो जाता है जबकि विद्वान मँझधार में ही गोते खाता रहता है। अधिक व्याख्या के लिये पुस्तक का अध्याय 'विद्या और आध्यात्मिकता' देखिये :

इल्मों बस करीं ओ यार। टेक।
इल्म न आवे विच शमार, इक्को अलफ़ तेरे दरकार।

---

1. सलोने=सुन्दर; अभिमान करने वाली प्रेमिका के नेत्रों में ज़बरदस्त आकर्षण है और गुणवन्ती प्रेमिका ने गुणों की लाल चुनरियाँ पहन रखी है।

जांदी उमर नहीं इतबार, इल्मों बस करीं ओ यार।
पढ़ पढ़ इल्म लगावें ढेर, कुरान किताबां चार चुफेर।
गिरदे चानण विच अनेर, बाझों रहबर ख़बर न सार[1]।
पढ़ पढ़ शेख मशाइख[2] होया, भर भर पेट नींदर भर सोया।
जांदी वारी नैन भर रोया, डुब्बा विच उरार न पार[3]।
पढ़ पढ़ इल्म होया बौराना[4], बे इल्मां नूं लुट लुट खाना।
एह की कीता यार बहाना, करें नाहीं कदे इनकार।
पढ़ पढ़ नफ़ल नमाज़ गुज़ारें, उच्चियां बांगां चांघां मारें[5]।
मंबर चढ़ के वाअज़ पुकारें[6], तेनूं कीता हिरस खुआर।
पढ़ पढ़ मुल्लां होइ क़ाज़ी[7], अल्लाह इल्मां बाझों राज़ी।
होवे हिरस दिनों दिन ताज़ी, नफ़ा नीअत विच गुजार।
पढ़ पढ़ मसले रोज सुनावें, खाना शक शुबह दा खावें[8]।
दस्सें होर ते होर कमावें, अंदर खोट बाहर सच्चिआर।
पढ़ पढ़ इल्म नजूम विचारें, गिनदा रासां बुरज सतारे[9]।
पढ़े अज़ीमतां मंतर झाड़े, अबजद गिने ताअवीज़ शुमार[10]।
इल्मों पए कज़ीए होर, अख्खीं वाले अन्ने कोर[11]।
फड़े साध ते छड्डे चोर, दोहीं जहानीं होया खुआर।

---

1. मुर्शिद के बिना सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता 2. मशाइख=शेख का बहुवचन 3. वह न इधर का रहा और न उधर का रहा। मँझधार में ही डूब गया।

4. बौराना=मूर्ख, जिसकी मति मारी जाये 5. नफ़ल=बन्दगी ; चांघां=चीखें; आप ऊँची बाँगों को ऊँची चीखें कहते हैं 6. मसजिद में कथा या उपदेश (वाअज़) करने वाले स्थान को 'मंबर' कहते हैं 7. देखिये पृष्ठ 157 और 160.

8. शक शुबह=संशय, भ्रम; मुल्ला या काज़ी धर्म-ग्रन्थों की सहायता से किसी बात के ठीक या गलत होने का निर्णय देते हैं परन्तु वे स्वयं भ्रमों में फँसे हुए हैं जिसको बुल्लेशाह भ्रमों (शक, शुबह) का भोजन खाना कहते हैं।

9. ज्योतिषी तारों की अनेक प्रकार की गिनती करते हैं 10. अज़ीमत=सांसारिक सुखों के लिये भक्ति करना; अबजद=वर्णमाला के वर्ण अलिफ़, बे, पे के हिसाब से ज्योतिष लगाना; ताअवीज़=तवीत; आप अनेक प्रकार के जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, ज्योतिष आदि की ओर संकेत करके कहते हैं कि यह परमात्मा की प्राप्ति का साधन नहीं है 11. देखिये : पृ. 160.

इल्मों पए हज़ारां फस्ते, राही अटक रहे विच रस्ते[1]।
मारया हिजर होए दिल खस्ते, पिआ विछोडे दा सिर भार।
इलमों मीआं जी कहावें, तंबा चुक चुक मण्डी जावें।
धेला लै के छुरी चलावें[2], नाल कसाईयां बहुत प्यार।
बहुता इल्म अज़ाज़ील ने पढ़िआ, झुग्गा झाहा ओसे दा सड़िआ[3]।
गल विच तौक लाअनत दा पढ़िआ, आखिर गया ओह बाजी हार।
जद मैं सबक इश्क दा पढ़िआ, दरिआ वेख वहदत दा वड़िआ[4]।
घुंमण घेरां दे विच अड़िआ, शाह अनाइत लाया पार।
बुल्ला न राफ़ज़ी है न सुंनी, आलम फ़ाजल न आलम जुंनी[5]।
इक्को चढ़िआ इल्म लदूंनी, वाहद अलिफ़ मीम दरकार।

(अनवर अली रोहतकी : 'कानूने इश्क', 212)

इश्क असां नाल केही कीती

इस काफ़ी में प्रियतम की बेपरवाही और विरह की पीड़ा का ज़बरदस्त वर्णन किया गया है। आप कहते हैं कि प्रेम ने हमारा जीना दूभर कर दिया है। लोग ताने देते हैं परन्तु कोई भी हृदय की पीड़ा जानने का प्रयत्न नहीं करता। प्रेम करना ऊँचे पर्वत पर चढ़ने के समान है। जो इस कठिन घाटी पर चढ़ता है वही इसकी वास्तविकता को समझ सकता है। प्रियतम के वियोग से हृदय में अग्नि प्रचण्ड हो जाती है जिसकी तपन को केवल प्रेमी समझ सकता है।

आपने यहाँ दो बहुत भावपूर्ण संकेत किये हैं। आप कहते हैं कि 'जिस नूं चाट अमर दी होवे, सोई अमर पछाने।' अमर का अर्थ हुक्म, शब्द या नाम है। आपके कहने का भाव है कि नाम का केवल कोई ज्ञाता या रसिया ही नाम की वास्तविक महिमा जान सकता है। दूसरे स्थान पर कहते हैं कि मैं प्रियतम के वियोग में पगली हो गई हूँ और मैं 'सुमुन बुकमुन उमयुन' होकर अपना समय व्यतीत करती हूँ। 'सुमुन बुकमुन उमयुन' का अर्थ है मुँह, कान और

---

1. विद्या के बखेड़ों में पड़ कर कई साधकों का रूहानी सफ़र बन्द हो गया 2. मौलवी धन लेकर बकरा काटने की आज्ञा देता था 3. देखिये : पृ. 162 4. देखिये : पृ. 164 5. देखिये : पृ. 162.

आँखें बन्द करके गूँगे, बहरे और अँधे हो जाना। आपका संकेत रूहानी अभ्यास द्वारा समाधि या जीते-जी मरने की अवस्था में पहुँचने की ओर है। इस प्रकार यह पता चलता है कि आप नाम या शब्द की आराधना द्वारा समाधि की अवस्था में पहुँचने को ही विरह से छुटकारा पाने और प्रियतम से मिलाप करने का वास्तविक साधन मानते हैं :

इश्क असां नाल केही कीती, लोक मरेंदे ताअने। टेक।
दिल दी वेदन[1] कोई न जाने, अन्दर देस बगाने।
जिस नूं चाट अमर[2] दी होवे, सोई अमर पछाने।
इस इश्क दी औखी घाटी, जो चढ़िया सो जाने।
आतश इश्क फराक तेरे ने, पल विच साड़ विखाइयां[3]।
एस इश्क दे साड़े कीलों, जग विच दिआं दुहाईआं।
जिस तन लग्गे सो तन जाने, दूजा कोई न जाने।
मैं अनजानी नेहुं की जानां, जाने सुघ्घड़ सिआनी।
एस माही दे सदके जावां, जिस दा कोई न सानी[4]।
रूप सरूप अनूप है उसदा, शाला जवानी माने[5]।
हिजर तेरे ने झल्ली करके, कमली नाम धराया।
सुमुन बुकमुन उमयुन होके, आपना वकत लंघाया[6]।
कर हुन नज़र करम दी साईआं, न कर जोर धगाने।
हस बुलाउना तेरा जानी, याद करां हर वेले।
पल पल दे विच हिजर दी पीड़ों, इश्क मरेंदा धेले।
रो रो याद करां दिन रातीं, पिछले वकत विहाने।
इश्क तेरा दरकार असानूं, हर वेले हर हीले।
पाक रसूल मुहम्मद सरवर, मरे ख़ास वसीले।
बुल्लेशाह जे मिले प्यारा, लख करां शुकराने।
इश्क असां नाल केही कीती, लोक मरेंदे ताने।

(अब्दुल मजीद भट्टी : 'काफ़ियाँ बुल्लेशाह', 158)

---

1. 'वेदन=पीड़ा 2. अमर=हुक्म 3. आतश=अग्नि, फ़राक=वियोग 4. जिसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता 5. उसका अद्‌भुत रूप है, शाला=परमात्मा करे 6. देखिये पृ. 99.

इश्क दी नवीउं नवीं बहार

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि प्रेम का ढंग निराला होता है। जिसे प्रेम का रहस्य ज्ञात हो जाता है, वह धर्मों और जातियों के बन्धनों से ऊपर उठ जाता है। आप कहते हैं कि जब मैंने प्रेम का पाठ पढ़ लिया तो मेरा मन ईंटों और पत्थरों की मसजिदों और मन्दिरों से मुड़ कर शरीर रूपी सच्चे ठाकुरद्वारे में प्रविष्ट हो गया जहाँ इसे अनहद शब्द के हज़ारों नाद सुनाई देने लगे। प्रेम का यह पाठ पढ़ने से मैं-मेरी और तू-तेरी (मैना-तोता) दूर हो गई, हृदय निर्मल हो गया और हर ओर उस प्रभु का प्रकाश अनुभव होने लगा। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का मिलन हो गया। आत्मा को ज्ञात हो गया कि जिस प्रियतम को मैं बाहर जंगलों और पर्वतों में ढूँढती फिरती थी, वह सदा मेरे ही साथ था। आप कहते हैं कि अन्दर बस रहे प्रियतम को बाहर मन्दिरों, मसजिदों और वेद, कुरान आदि धर्म-ग्रन्थों में ढूँढना व्यर्थ है। वह प्रभु जिसे मिला है, प्रकाशमय रूप में अपने अन्दर मिला है। आप कहते हैं कि माला (तसबी), भिक्षा-पात्र (कासा), डंडा (सोटा), लोटा और नमाज पढ़ने वाला बिछावन (मुसल्ला) आदि बाहरमुखी साधनों को त्याग कर अन्तर में प्रभु को ढूँढना चाहिये। यदि जीवन भर मसजिद में रहते हैं, परन्तु हृदय अपवित्र है और अद्वैत (तौहीद) की नमाज नहीं पढ़ता तो कोई लाभ नहीं है :

इश्क दी नवीउं नवीं बहार।
जां मैं सबक इश्क दा पढ़िया, मसजद कोलों जीउड़ा डरिया[1]।
डेरे जा ठाकर दे वड़िया, जित्थे वजदे नाद हज़ार[2]।
जां मैं रमज़ इश्क दी पाई, मैना तोता मार गवाई।
अंदर बाहर होई सफ़ाई, जित वल वेखां यारो यार।
हीर रांझे दे हो गए मेले, भुल्ली हीर ढूंडेंदी बेले[3]।
रांझा यार बुक्कल विच खेले, मैंनूं सुध रही न सार।

1-2. देखिये पृ. 79-80.

3. आत्मा पहले प्रियतम की खोज में बाहर परेशान हो रही थी, अब उसे अन्दर ही प्रियतम मिल गया।

बेद कुरानां पढ़ पढ़ थक्के, सजदे करदियां घस गए मत्थे।
न रब्ब तीरथ न रब्ब मक्के, जिस पाया तिस नूर अनवार[1]।
फूक मुसल्ला भंन सुट लोटा, न फड़ तसबी कासा सोटा।
आशिक कहिंदे दे दे होका, तरक हलालों खाह मुरदार[2]।
उमर गवाई विच मसीती, अन्दर भरिया नाल पलीती[3]।
कदे नमाज तौहीद न कीती, हुन की करनां एं शोर पुकार।
इश्क भुलाया सजदा तेरा, हुन क्यों ऐवें पावें झेड़ा[4]।
बुल्ला हुंदा चुप बथेरा, इश्क करेंदा मारो मार[5]।
इश्क दी नवीउं नवीं बहार।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 76)

इह अचरज साधो कौन लखावे

अपनी बहुत-सी काफ़ियों की तरह साईं बुल्लेशाह ने इस काफ़ी में भी यह विचार प्रकट किया गया है कि वह एक प्रभु अनेक रूप धारण करके प्रकट होता है। मक्का में हज़रत मुहम्मद बन कर आने वाला और लंका में राम बन कर जाने वाला वह प्रभु एक ही है। हिन्दू और मुसलमान, काफ़िर और मोमन का झगड़ा व्यर्थ है। इसी प्रकार बाँग और नाद में कोई अन्तर नहीं है। दोनों शब्द नाम के लिये प्रयुक्त होने वाले पद हैं, परन्तु संसार में व्याप्त पूर्ण अद्वैत का ज्ञान केवल उस प्रभु के साथ मिलाप करने से ही होता है। जब अन्तर में उससे मिलाप कर लेते हैं तो हर जगह और हर रंग में वह प्रभु समाया हुआ दिखाई देता है :

इह अचरज साधो कौन लखावे, छिन छिन रूप किते बन आवे।
मक्का लंका सहिदेव के, भेत दोऊ को एक बतावे।

---

1. अनवर=नूर का बहुवचन, अर्थात् वह परम चेतन, प्रकाश रूप परमात्मा जिसको भी मिलता है, अपने अन्तर में मिलता है।

2. हलाल=जिसको शरीयत सही कहती है, मुरदार=जिसको शरीयत सही नहीं मानती, अर्थात् तू शरहा का त्याग करके प्रेम का मार्ग पकड़ ले 3. पलीती=गन्दगी, 4. सजदा=दण्डवत, प्रणाम; झेड़ा=झगड़ा 5. मैं चुप करने का प्रयत्न करता हूँ परन्तु प्रेम मुझे चुप नहीं रहने देता।

जब जोगी तुम वसल करोगे, बांग कहे भावें नाद वजावे[1]।
भगती भगत नतारो नाहीं, भगत सोई जिहड़ा मन भावे[2]।
हर परगट परगट ही देखो, क्या पंडत फिर बेद सुनावे[3]।
ध्यान धरो इह काफ़र नाहीं, क्या हिंदू क्या तुरक कहावे[4]।
जब देखूं तब ओही ओही, बुल्ला शौह हर रंग समावे।
इह अचरज साधो कौन कहावे, छिन छिन रूप किते बन आवे।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 22)

इह दुख जा कहूं किस आगे

इस काफ़ी में प्रेम और विरह का हृदय-विदारक वर्णन किया गया है। आप कहते हैं कि प्रेम के कारण ऐसे घाव लग गये हैं जिनका दुःख किसी को नहीं बताया जा सकता। प्रेम का आरम्भ तो हँसी में हुआ था पर अब यह गले की फाँसी बन गया है। दिन-रात तड़पते हुए व्यतीत होते हैं। जीवन-मरण समान है और संसार के ताने मिल रहे हैं। प्रियतम परदेश से लौटते नहीं और दुःखों का अन्त नहीं होता। काफ़ी के अन्त में विरहिणी आत्मा प्रियतम से विनती करती है कि मुझे अपना मुखड़ा दिखाओ ताकि मुझे पल भर के लिये शान्ति मिल सके :

इह दुख जा कहूं किस आगे, रुम रुम घा[5] प्रेम के लागे। टेक।
सिकत सिकत[6] है रैन विहानी, हमरे पिया ने पीड़ न जानी।
बिलकत बिलकत[6] रैन विहासी, हासे दी गल पै गई फासी।
इक मरना दूजा जग दी हांसी, करत फिरत नित मोही रे मोही।

---

1. जब अन्तर में उससे मिलाप हो जायेगा तो पता लग जायेगा कि उस अनहद शब्द को ही मुसलमान बाँग और हिन्दू नाद कहते हैं।

2. भक्ति और भक्त की पहचान करने की आवश्यकता नहीं। सच्चा भक्त वह है जो प्रभु को अच्छा लगता है।

3. जब वह हरि सब जगह व्याप्त है तो फिर पण्डित वेदों से क्या पढ़ कर सुना रहा है ?

4. ध्यान से देखो कोई भी व्यक्ति काफ़िर नहीं है, चाहे उसको हिन्दू कह कर बुलाया जाये या मुसलमान।

5. घा=घाव 6. तड़प-पड़प कर, बिलख-बिलख कर।

कौन करे मोहे से दिलजोई[1], शाम पिया मैं देती तूं धरोई[2]।
दुख जग के मोहे पूछन आए, जिन के पिया परदेस सिधाए।
न पिया आए न पिया आए, इह दुख जा कहूं किस जाए।
बुल्ला शाह घर आ प्यारिया, इक घड़ी के करन गुजारिया।
इह दुख जा कहूं किस आगे, रुम रुम घा प्रेम के लागे।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 23)

उठ जाग घुराड़े मार नहीं

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह अचेत जीव को सावधान करते हैं कि तू संसार की असलियत को और अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझने की कोशिश कर। संसार में जीवन थोड़े समय के लिये है। संसार के सभी पदार्थ और मनुष्य नश्वर हैं। प्रभु के नाम के बिना यहाँ से कोई वस्तु चलते समय साथ नहीं जाती। अन्त समय साथ देने वाली और परलोक में काम आने वाली एक ही वस्तु परमात्मा का कलमा या नाम है। इसलिये आलस्य और अज्ञान को त्याग कर सदैव नाम की ओर ध्यान देना चाहिये। अधिक विस्तार के लिये पुस्तक का पृष्ठ 38 देखिये :

उठ जाग घुराड़े मार नहीं, इह सौन तेरे दरकार नहीं।
इक रोज़ जहानो जाना ए[3], जा कबर विच समाना ए।
तेरा ग़ोशत कीड़िआं खाना ए, कर चेता मरग विसार नहीं[4]।
तेरा साहा[5] नेड़े आया ए, कुझ चोली दाज रंगाया ए।
क्यों अपना आप वंजाया[6] ए, ऐ गाफ़ल तैनूं सार नहीं।
तू सुतिया उमर वंजाई ए, तूं चरखे तंद न पाई ए[7]।
की करसैं दाज तैयार नहीं, उठ जाग घुराड़े मार नहीं।
तू जिस दिन जोबन मत्ती सैं[8], तू नाल सईआं[9] दे रत्ती[10] सैं।

---

1. धैर्य देना 2. दुहाई।

3. एक दिन इस संसार को छोड़ कर कब्र में स्थान लेना होगा।

4. हे मनुष्य, मौत को मत भुला 5. साहा=मौत का दिन 6. वंजाया=गँवाना 7. 'चरखे तंद न पाई ए' का भाव परमात्मा की भक्ति न करने से है 8. जोबन मती, सैं=यौवन में मस्त थी 9. सहेलियों 10. रंगी हुई, लीन।

हो गाफ़ल गल्लीं वत्ती[1] सैं, इह भोरा तैनूं सार नहीं[2]।
तूं मुद्ढो[3] बहुत कुचज्जी सैं, निरलज्जियां दी निरलज्जी सैं।
तू खा खा खाने रज्जी सैं, हुन ताईं तेरा बार नहीं।
अज कल तेरा मुकलावा ए, क्यों सुत्ती कर कर दावा ए।
अनडिठियां नाल मिलावा ए, इह भलके गरम बाज़ार नहीं[4]।
तू एस जहानों जाएंगी, फिर कदम न एथे पाएंगी।
इह जोबन रूप वंजाएंगी, तैं रहना विच संसार नहीं।
मंज़ल तेरी दूर दुराडी, तूं पौणां[5] विच्चों जंगल वादी[6]।
औखा पहुँचन पैर पिआदी, दिसदी तूँ असवार नहीं[7]।
इक इकल्ली तनहा[8] चलसें, जंगल बरबर दे विच रुलसें[9]।
लै लै तोशा एथों घलसैं[10], ओथे लैन उधार नहीं।
ओह खाली ए सुंझी हवेली, तू विच रहिसें इक इकेली[11]।
ओथे होसी होर न बेली, साथ किसे दा बार नहीं।
जिहड़े सन देसां दे राजे, नाल जिन्हां दे वजदे वाजे।
गए हो के बे-तखते ताजे, कोई दुनिया दा इतबार नहीं।
कित्थे है सुलतान सिकन्दर, मौत न छड्डे पीर पैगंबर।
सभे छड्ड छड्ड गए अडंबर, कोई एथे पाइदार[12] नहीं।
कित्थे यूसुफ माहि-कुनिआनी[13], लई जुलेखा फेर जवानी[14]।

---

1. व्यस्त 2. रत्ती भर भी तुझे परवाह नहीं थी 3. आरम्भ से ही 4. दोबारा दुनिया के बाज़ार में नहीं आना होगा 5. पड़ेगी 6. घाटी 7. पैदल पहुँचना कठिन है और तेरे पास कोई सवारी भी नहीं है अर्थात् न तूने सतगुरु का पल्ला पकड़ा है और न ही परमात्मा की भक्ति की है, जो तेरी सहायता करे।

8. अकेली 9. भटकेगी 10. तोशा=सफ़र में काम आने वाले भोजन का सामान; परमात्मा का नाम ही मार्ग में काम आने वाला तोशा है जो जीते-जी इकट्ठा किया जा सकता है। गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं :

संत जनहु मिलि भाईहो सचा नामु समालि।
तोसा बंधहु जीअ का ऐथे ओथे नालि। (आदि ग्रन्थ, पृ. 49)

11. कब्र रूपी हवेली में अकेले रहना पड़ेगा 12. स्थायी, पक्का, सदा रहने वाला 13. माहि-कुनिआनी=कुनिआन का चन्द्रमा मिस्र के क्षेत्र का नाम है अर्थात् चाँद जैसा सुन्दर यूसुफ़ न रहा 14. जुलेखा को दोबारा मिली जवानी भी समाप्त हो गई।

कीती मौत ने ओड़क फ़ानी[1], फेर ओह हार शिंगार नहीं।
कित्थे तखत सुलेमान वाला, विच हवा उडदा सी बाला[2]।
ओह भी कादर आप संभाला, कोई जिंदगी दा इतबार नहीं।
कित्थे मीर मलक सुल्ताना, सम्भे छड्ड छड्ड गए ठिकाना[3]।
कोई मार न बैठे ठाना, लशकर दा जिन्हां शुमार नहीं।
फुल्लां फुल चंमेली लाला, सोसन सिंबल सरू निराला।
बादि-खिज़ा कीता बुरा हाला, नरगस नित खुमार नहीं[4]।
जो कुझ करसैं सो कुझ पासें, नहीं ते ओड़क पछोतासें।
सुंझी कूंज वांग कुरलासें, खभां बाझ उडार नहीं[5]।
डेरा करसें ओहनी जाईं[6], जित्थे शेर पलंग बलाईं[7]।
ख़ाली रहिसन महिल सराईं, फिर तूं विरसेदार[8] नहीं।
असीं आजज़ विच कोट इल्म दे, ओसे आंदे विच कलम दे[9]।
बिन कलमे दे नाहीं कम दे, बाझों कलमे यार नहीं।
बुल्ला शहु बिन कोई नाहीं, एथे ओथे दोहीं सराईं।
संभल सँभल के कदम टिकाईं, फिर आवन दूजी वार नहीं।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**' 6)

उलटे होर ज़माने आए

इस काफ़ी में कवि अपने समय में हुए राजनीतिक एवं सदाचारिक परिवर्तनों की ओर संकेत करता है। वह कहता है कि समय की सारी चाल

---

1. अन्ततः (ओड़क) मौत ने उसका नाश कर दिया 2. सुलेमान बहुत बुद्धिमान बादशाह था। कहते हैं कि उसका तख़्त हवा में उड़ सकता था, बाला=ऊपर आकाश में।

3. बड़े-बड़े राजा, महाराजा और सुल्तान भी नहीं रहे। सब इस संसार के ठिकाने छोड़ गये 4. पतझड़ की हवा (मौत) ने सब फूलों और बहार को नष्ट कर दिया।

5. खभां बाझ=पंख के बिना; परमात्मा के भक्ति रूपी पंख के बिना उड़ नहीं सकेगा 6. स्थानों पर 7. तुझे उन स्थानों पर डेरा बनाना पड़ेगा जहाँ जंगली जानवर— शेर, चीते आदि मार्ग रोकेंगे; मृत्यु के बाद के मार्ग के संकटों का वर्णन किया गया है 8. मालिक 9. व्याख्या के लिये पुस्तक का पृ. 109 देखिये।

उलटी हो गई है। कौए और चिड़ियाँ बाज़ों को मार रहे हैं। घोड़े गन्दगी के ढेरों पर पहुँच गये हैं और गधे हरे-भरे खेत चर रहे हैं। पिता और पुत्र, माता और पुत्री और अन्य सम्बन्धियों में आपस का प्रेम नहीं रहा। सच्चे लोगों को धक्के मिल रहे हैं और झूठे लोग आगे पहुँच रहे हैं। मुखिया कंगाल हो गये हैं जबकि पिछड़े हुए लोग मुखिया बन गये हैं। निर्धन राजा बन गये हैं और राजा भिखारी बन चुके हैं। यह सब उस प्रभु के हुक्म से हो रहा है जो अटल है। कवि हर प्रकार के उतार-चढ़ाव को प्रभु की इच्छा समझता है। गुरु नानक साहिब ने अपने एक शब्द में एक ओर लोगों पर हो रहे अत्याचार की तस्वीर खींचते हुए प्रभु से शिकायत की है : 'एती मार पई कुरलाणे तैं की दरदु ना आइआ' और दूसरी ओर समय के परिवर्तन को मालिक की इच्छा से जोड़ा है, 'आपे जोड़ि विछोड़े आपे वेखु तेरी वडिआई' (आदि ग्रन्थ, पृ. 360)। साईं बुल्लेशाह की इस काफ़ी में भी ये दोनों रंग झलक रहे हैं :

उलटे होर ज़माने आए, तां मैं भेद सज्जन दे पाए। टेक।
कां लगड़ां[1] नूं मारन लग्गे, चिड़ियां जुर[2] ढाए।
घोड़े चुगन अरूड़ीआं ते, गद्दों[3] खवेद[4] पवाए।
अपनियां विच उलफ़त[5] नाहीं, क्या चाचे क्या ताए।
पिउ पुत्तरां इतफ़ाक[6] न लाई, धीआं नाल न माए।
सचियां नूं पए मिलदे धक्के, झूठे कोल बहाए।
अगले हो कंगाले बैठे, पिछलियाँ फरश विछाए[7]।
भूरीआं वाले[8] राजे कीते, राजेयां भीख मंगाए।
बुल्लिआ हुकम हज़ूरों आया, तिस नूँ कौन हटाए।
उलटे होर ज़माने आए, तां मैं भेद सज्जन दे पाए।

(नज़ीर अहमद : 'कलाम बुल्लेशाह', 14)

---

1. लगड़ां=बाज 2. जुर=बाज 3. गद्दों=गधों 4. खवेद=हरे-भरे खेत 5. न्यार 6. एकता, मेल-मिलाप 7. जो आगे थे वे कंगाल हो गये और जो पिछड़े हुए थे, वे शान से रह रहे हैं 8. भूरीआं वाले=चादर या लोई ओढ़ने वाले; भाव यह है कि गरीब राजा बन गये और राजा भिक्षुक बन गये।

ऐसा जगिया ज्ञान पलीता

इस काफ़ी में साईं जी कहते हैं कि सच्चे प्रेम से वह ज्ञान पैदा होता है जिसके प्रकाश से अँधकार दूर हो ज़ाता है। हिन्दू और मुसलमान का भेद-भाव समाप्त हो जाता है और केवल प्रेम का ही महत्व रह जाता है। आप कहते हैं कि मुल्ला, काज़ी और पण्डित ठग हैं। उन्होंने ऐसे कर्मकाण्ड जारी कर दिये हैं जो आवागमन का कारण बनते हैं :

ऐसा जगिआ ज्ञान पलीता। टेक।
न हम हिंदू न तुरक[1] जरूरी,
नाम इश्क दी है मनजूरी[2]।
आशिक ने हरि जीता,
ऐसा जगिआ ज्ञान पलीता।
वेखो ठग्गां शोर मचाया,
जंमना मरना चा बनाया।
मूरख भुल्ले रौला पाया,
जिस नूं आशिक ज़ाहर[3] कीता।
ऐसा जगिआ ज्ञान पलीता।
बुल्ला आशिक दी बात न्यारी,
प्रेम वालियां बडी करारी।
मूरख दी मत ऐवें मारी,
वाक सुखन[4] चुप कीता।
ऐसा जागिआ ज्ञान पलीता।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 21)

कत्त कुड़े न वत्त कुड़े

इस काफ़ी में स्त्रियों के सूत कातने के उदाहरण द्वारा प्रभु-भक्ति करने का उपदेश दिया गया है। आत्मा को स्त्री, संसार को माया का घर, परमात्मा की भक्ति और शुभ गुणों को कातना और दहेज कहा गया है। 'छल्ली लाह के भड़ोले विच पाउना' भजन-सुमिरन का भण्डार जमा करना है। बूँद-बूँद

---

1. मुसलमान 2. केवल प्रभु का नाम ही मान्य है 3. प्रकट 4, बातचीत।

से तालाब भर जाता है। सुमिरन में लगाया पल-पल लेखे में लगता है और अन्त समय भक्ति का काफ़ी भण्डार जमा हो जाता है जो परलोक (ससुराल) में काम आता है। जो आत्मा भक्ति रूपी दहेज के बिना परलोक में जाती है, उसे वहाँ कोई पसन्द नहीं करता और न ही वह अपने प्रियतम को भाती है :

कत्त कुड़े न वत्त कुड़े[1], छल्ली लाह भड़ोले घत कुड़े। टेक।
जे पूनी पूनी कत्तेंगी, तां नंगी मूल न वत्तेगी।
सौहरिआं दे जे कत्तेंगी, तां काग मारेगा झुट कुड़े[2]।
विच गफ़लत जे तैं दिन जाले, कत्त के कुझ न लिउ संभाले[3]।
बाझों गुण शहु अपने नाले, तेरी क्यों कर होसी गत्त कुड़े[4]।
मां पिओ तेरे गंढीं पाइआं[5], अजे ना तैनूं सुरतां आइआं।
दिन थोड़े ते चाअ मुकाईआं, न आसें पेके वत्त कुड़े[6]।
जे दाज विहूणी जावेंगी, तां किसे भली न भावेंगी।
ओथे शहु नूं किवें रीझावेंगी, कुझ लै फकरां दी मत्त कुड़े।
तेरे नाल दीआं दाज रंगाए नी, ओहनां सूहे सालू पाए नी।
तूं पैर उलटे क्यों चाए नी, जा ओथे लगी तत्त कुड़े[7]।
बुल्ला शहु घर अपने आवे, चूड़ा बीड़ा सभ सुहावे।
गुण होसी तां गल लगावे, नहीं रोसें नैनीं रत्त कुड़े[8]।

(फ़कीर मुहम्मद : **'कुल्लियात'**, 81)

---

1. न वत्त कुड़े=व्यर्थ खाली न जा।

2. यदि तू यह सोचे कि परलोक में जाकर भक्ति कर लूँगी तो तू काल का भोजन बन जायेगी और तुझसे कुछ भी न हो सकेगा।

3-4. जाले=गुज़ारे, बिताए; गत्त=गति कैसे होगी अर्थात् तेरा पार-उतारा कैसे होगा ?

5. गंढीं पाइआं=मां-बाप (काल और माया) ने तेरे विवाह (मौत) का समय निश्चित कर दिया है।

6. जो थोड़ा समय पास था तूने खुशी के रागों में व्यय कर दिया। कातने (भक्ति) की ओर ध्यान नहीं दिया।

7. तू उल्टे काम क्यों करती है। तुझे वहाँ तपना पड़ेगा।

8. यदि गुणों का दहेज इकट्ठा न करेंगी तो प्रियतम तुझे अंग नहीं लगायेगा और तू खून के आँसू बहायेगी। उस समय पछताने का कुछ लाभ न होगा।

कदी आ मिल बिरहों सताई नूं

इस काफ़ी में प्रेमिका अपने प्रियतम से प्रार्थना करती है कि मैं तेरे वियोग में व्याकुल हूँ। मैं प्रेम से उत्पन्न दुःखों और कष्टों की नदी के भँवर में फँसी हुई हूँ। मुझे अपनी, सखी-सहेलियों और माता-पिता की सुध-बुध भूल गई है। तू ही मेरे विरह के दुःख को दूर कर सकता है। विरहिणी प्रियतम को ताना देती है कि तुझे पराई पीड़ा का आभास नहीं है। यदि तुझे भी प्रेम का रोग लग जाये तो तू भी हाय-हाय कर उठेगा। जो कोई प्रेम करता है, उसे प्रियतम पर अपना सिर न्योछावर करना पड़ता है। विरहिणी प्रार्थना करती है कि हे प्रभु रूपी प्रियतम, अन्य आत्माएँ तो अपनी भक्ति या शुभ गुणों के बलबूते भवसागर से पार होने का प्रयत्न कर रही हैं परन्तु मेरी लाज तो केवल तुम्हारे हाथों में है। मैं तेरी दया से ही किनारे लग सकती हूँ :

कदी[1] आ मिल बिरहों सताई नूं[2]। टेक।
इश्क लग्गे तां है है कूकें,
तूं की जाने पीड़ पराई नूं[3]।
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।
जे कोई इश्क विहाजिया लोड़े,
सिर देवे पहिले साईं नूं[4]।
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।
अमलां वालियां लंघ लंघ गईआं,
साडियां लज्जां माही नूं[5]।

---

1. कदी=कभी 2. बिरहों सताई नूं=बिरह की सताई हुई को।

3. तुझे भी प्यार हो जाये तो तू भी हाय-हाय करने लगेगी। फिर तुझे मेरे प्यार की पीड़ा का अनुभव होगा।

4. जो कोई प्रेम खरीदना (विहाजिया) चाहता है तो पहले सिर देकर इसका मूल्य चुकाये।

5. नम्रता के भाव में कहते है कि भजन-सुमिरन वाली गुणवन्ती (स्त्रियाँ) पार हो गई हैं। मुझ बेचारी की लाज तो प्रियतम के हाथ में है। वह चाहे तो बेड़ा पार कर दे।

कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।
गम दे वहिण सितम दीआं कांगां,
किसे कहिर कप्पर विच पाई नूं[1]।
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।
मां पिओ छड सईआं मैं भुल्ली आं,
बलिहारी राम दुहाई नूं[2]।
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', ८३)

कदी आ मिल यार प्यारिया

प्रस्तुत काफ़ी में प्रेमिका प्रियतम से विनय करती है कि तू आकर मुझे अपने दर्शन दे। मैं स्वयं को तेरी राहों में न्योछावर करती हूँ। हे मेरे सलोने श्याम ! तेरे आने पर ही मेरे विरह की अग्नि शान्त होगी :

कदी आ मिल यार प्यारिया,
तेरियां वाटां[3] तों सिर वारिया[4]। टेक।
चढ़ बार्गी[5] कोयल कूकदी,
नित सोज़-अलम[6] दे फूकदी।
मैनूं ततड़ी[7] को शाम[8] विसारिया[9],
कदी आ मिल यार पियारिया।
बुल्ला शहु कदी घर आवसी[10],
मेरी बलदी भा[11] बुझावसी।
ओहदी[3] वाटां तो सिर वारिया,
कदी आ मिल यार प्यारिया।

---

1. सितम=अत्याचार; कांगां=लहरें; कहिर कप्पर=भयानक अँधेरी।

2. मां पिओ=माता-पिता; सईआं=साईं, प्रियतम।

3. वाटां=रास्ते 4. वारिया=कुर्बान किया 5. बार्गी=बाग में 6. सोज=दुःख, अलम=ग़म 7. बेचारी 8. कान्ह, श्याम अर्थात् प्रियतम 9. भुला दिया।

10. आयेगा 11. आग 12. ओहदी=उसकी।

तेरियां वाटां तों सिर वारिया,
कदी आ मिल यार प्यारिया।

(फ़क़ीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', ८३)

क्यों ओहले बहि बहि झाकीदा

अन्य काफ़ियों की भाँति यहाँ भी यह भाव प्रकट किया गया है कि रचना के रंग-बिरंगे आकारों के पीछे उस एक प्रभु का प्रकाश विद्यमान है। साईं बुल्लेशाह बहुत सुन्दर ढंग से कहते हैं कि जैसे एक नवयुवती घूँघट में मुख छिपाये होती है, उसी तरह उस प्रभु ने माया के आवरण के पीछे अपने आपको छिपा रखा है और वह परदे के पीछे से रचना को देख रहा है।

बहुत-से सूफ़ी दरवेशों ने यह विचार व्यक्त किया है कि सृष्टि की रचना का मूल कारण प्रेम है। वह प्रभु अपने आपको प्रेम करना चाहता था, इसलिये उसने स्वयं को एक से अनेक बना कर और आत्माओं का रूप धारण करके अपने आपको प्यार करने लगा। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि प्रभु को आत्मा से प्रेम है। इसलिये वह सतगुरु का रूप धारण करके संसार में आ जाता है। साईं जी ने दो छोटे-छोटे वाक्यांशों में ये दोनों भाव दर्शाये हैं :

1. कारन पीत मीत बन आया।
2. तुसी आप असां नूँ धाए जी,
   तुसीं शाह अनायत बन आए जी।

सृष्टि की अनेकता के पीछे विद्यमान एकता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रूमी और शामी, सेवक और स्वामी सबमें एक प्रभु का निवास है। इसलिये किसी को बुरा या भला कहना व्यर्थ है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रेम द्वारा प्रभु को प्राप्त कर लिया जाये :

क्यों ओहले बहि बहि झाकीदा, इह परदा किस तो राखीदा[1]।
कारन पीत मीत बन आया, मीम दा घूँघट मुख पर पाया[2]।

---

1. रचना की अनेकता के परदे के पीछे एक ही रचनाकार छिपा हुआ है।

2. अपने आपको प्रीति करने के लिये प्रियतम बन कर आ गया है और मुख पर माया का घूँघट डाल लिया है।

अहिद ते अहिमद नाम धराया, सिर छतर झुल्ले लौलाकी दा[1]।
तुसीं आपे आप ही सारे हो, क्यों कहिंदे तुसीं न्यारे हो[2]।
आए अपने आप नज़ारे हो, विच बरज़ख रखिआ ख़ाकी दा[3]।
तुझ बाझों दूसरा किहड़ा है, क्यों पाया उलटा झेड़ा[4] है।
इह डिठा बड़ा अंधेरा है, हुन आप नूं आपे आखीं[5] दा।
किते रूमी[6] हो किते शामी[7] हो, किते साहिब किते गुलामी[8] हो।
तुसीं आपे आप तमामी[9] हो, कहुँ खोटा खरा सो लाखी दा।
जिस तन विच इश्क दा सोज़[10] होया, ओह बेखुद बेहोश होया।
ओह क्यों कर रहे खामोश होया, जिस प्याला पीता साकी दा[11]।
तुसीं आप असां नूं धाए जी, कद रहिंदे छपे छपाए जी।
तुसीं शाह 'अनाइत' बन आए जी, हुन ला ला नैन झमाकी दा[12]।
बुल्ला शाह तन भा दी भट्ठी कर, अग बाल हड्डां तन माटी कर।
इह शौक मुहब्बत बाकी कर, इह मधुवा इस बिध चाखीदा[13]।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 95)

कर कत्तण वल ध्यान कुड़े

इस काफ़ी में स्त्रियों के सूत कातने के उदाहरण द्वारा प्रभु-भक्ति का उपदेश दिया गया है। मनुष्य-शरीर की उस बहुमूल्य चरखे से तुलना की गई है जो प्रभु-भक्ति का सूत कातने के लिये मिला है। आत्मा वह नादान युवती है जो इसकी परवाह नहीं करती। कवि सावधान करता है कि तू संसार रूपी मायके में सदा नहीं रह सकती। यदि तू इस समय भक्ति का

---

1. अहिद=खुदा, अहिमद=सतगुरु, लौलाकी=लौलाक अर्थात् खण्ड-ब्रह्माण्ड।

2-3. सर्व-व्यापक होकर निर्लिप्त क्यों कहलाते हो ? बरजख = परदा, आवरण, खाकी दा=मिट्टी का।

4. अनेकता का झगड़ा व्यर्थ क्यों खड़ा किया है 5. आखी=आखना, कहना 6. रोम का रहने वाला, 7. स्याम (देश) का रहने वाला 8. दास 9. सबकुछ 10. पीड़ा 11. प्रेम-प्याला पीने वाला चुप नहीं रह सकता 12. आँखें झपक-झपक कर देखते हो 13. प्रियतम को प्रीति से स्थिर कर ले यही प्रेम का शहद प्याला (मधुआ) पीने का ढंग है।

सूत नहीं कातेगी तो तुझे परलोक रूपी ससुराल में जाकर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। तेरा इस संसार में अल्प समय के लिये विश्राम है। तू यौवन और सौन्दर्य का मान त्याग कर भक्ति का दहेज तैयार कर।

काफ़ी की अन्तिम दो पंक्तियों में संकेत किया गया है कि मृत्यु के समय तुझे अकथनीय पीड़ा का सामना करना पड़ेगा। कोई मित्र या सम्बन्धी उस समय तेरी सहायता नहीं कर पायेगा। केवल सतगुरु ही उस समय सहायता करके भवसागर से पार ले जा सकते हैं। विस्तृत व्याख्या के लिये पृष्ठ 40 से 51 तक देखिये :

कर कत्तण वल ध्यान कुड़े। टेक।
नित मत्ती[1] देंदी मां धीआ, क्यों फिरनी एं ऐवें आ धीआ।
नी शरम हया न गवा धीआ, तूं कदी तां समझ नदान[2] कुड़े।
*नहीउं कदर मिहनत दा पाया, जद होया कंम असान कुड़े।
चरखा मुफ़त तेरे हत्थ आया, पल्लिउं नहींउं कुछ गवाया।
चरखा बनिआ खातर तेरी, खेडन दी कर हिरस थुरेड़ी।
होना नहींउं होर वडेरी, मत कर कोई अज्ञान कुड़े।
चरखा तेरा रंग रंगीला, रीस करेंदा सभ कबीला।

---

1. मत्ती=शिक्षा, 2. बेचारी, नासमझ।

*आगे की छः तुकों में मनुष्य-शरीर की चर्खे से तुलना की गई है जिस पर प्रभु-भक्ति का सूत काता जा सकता है (व्याख्या के लिये देखिये पृ. 44-45) 'नहीउं कदर मिहनत दा पाया'=यह चर्खा पूर्व जन्मों के बहुत श्रेष्ठ कर्मों के कारण मिला है। 'जद होया कंम आसान कुड़े'=नीचे की योनियों में भक्ति कर सकना असम्भव था। 'इस चरखे दी कीमत भारी'=मनुष्य-जन्म अमूल्य अवसर है। कबीर साहिब कहते हैं कि मनुष्य-जन्म सतगुरु के उपदेश के अनुसार भक्ति करने के लिये मिला है। इस देही को देवता भी तरसते हैं क्योंकि केवल इस देही में ही परमात्मा की भक्ति द्वारा सच्ची मुक्ति प्राप्त की जा सकती है :

गुर सेवा ते भगति कमाई। तब इह मानस देही पाई।
इस देही कउ सिमरहि देव। सो देही भजु हरि की सेव।
भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु। मानसु जनम का एही लाहु।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1159)

चलदे चारे कर लै हीला, हो घर दे विच अवादान[1] कुड़े।
इस चरखे दी कीमत भारी, तूं की जानें कदर गवारी।
उच्ची नजर फिरें हंकारी, विच अपनी शान गुमान कुड़े।
मैं कूकां कर खलीआं बाहीं, न हो ग़ाफ़ल समझ कदाई[2]।
ऐसा चरखा घड़ना नाहीं, फेर किसे तरखाण[3] कुड़े।
इह चरखा तूं क्यों गँवाया, क्यों तूं खेह[4] दे विच रुलाया।
जद दा हत्थ तेरे इह आया, तूं कदे न डाहिआ आन कुड़े।
नित मर्त्ती दिआं वलल्ली[5] नूं, इस भोली कमली झल्ली नूं।
जद पवेगा वखत इकल्ली नूं, तद हाय हाय करसी जान कुड़े।
मद्ढों दी तूं रिजक विहूणी, गोहड़िओं न तूं कत्ती पूणी[6]।
हुन क्यों फिरनी एं निंमोझूणी[7], किस दा करें गुमान कुड़े।
न तकला रास करावें तूं, न बाइड़[8] माल्ह पवावें तूं।
घड़ी मुड़ी क्यों चरखा चावें तूं, करनी एं अपनी ज़िआन[9] कुड़े।
डिंगा तकला रास करा लै, नाल शताबी बाइड़ पवा लै।
जिउं कर वगे तिवें वगा लै, मत कर कोई अज्ञान कुड़े।
अज घर विच नवीं कपाह कुड़े, तूं झंब झंब वेलना डाह कुड़े।
रूं वल पंजावन जाह कुड़े, मुड़ कल न तेरा जान कुड़े।
जद रूं पंजा लिआवेंगी, सइआं विच पूनीआं पावेंगी।
मुड़ आपे ही पई भावेंगी, विच सारे जग जहान कुड़े।
तेरे नाल दीआं सभ सईआं नी, कत पूनीआं सभनां लईआं नी।
तैनूँ बैठी नूं पिच्छे पईआं नी, क्यों बैठी हुन हैरान कुड़े।

---

1. अवादान = आबाद।

2. मैं बाँहें खड़ी करके शोर मचाती हूँ, तू कभी कभार तो समझ से काम ले और बेपरवाही न कर 3. बढ़ई 4. मिट्टी 5. जिसको कोई ढंग या तरीका न आता हो 6. गोहड़िओ=पूनियों की टोकरी में से तूने कभी भी भक्ति का धन (रिज़क) इकट्ठा नहीं किया 7. परेशान, शर्मिन्दा।

8. बाइड़=चर्खे के तख़्तों को जोड़ने वाली रस्सी, जिस पर माल (रस्सी) चलती है 9. नुकसान, हानि।

दीवा अपने पास जगावीं, कत्त कत्त सूत भड़ोली पावीं[1]।
अखखीं विच्चों रात लंघावीं, औखी करके जान कुड़े[2]।
राज पेका दिन चार कुड़ें, न खेडो खेड गुजार कुड़े।
न हो विहली कर कार[3] कुड़े, घर बार न कर वीरान कुड़े।
तूं सुत्तिआं रैण गुजार नहीं, मुड़ आना दूजी वार नहीं।
फिर बहिना एस भंडार[4] नहीं, विच इको जेडे हाण कुड़े।
तूं सदा न पेके रहिना एं, न पास अंबड़ी[5] दे बहिना ए।
भा अंत बिछोड़ा सहिना ए, वस पएंगी सस ननाण कुड़े।
कत्त लै नी कुझ कता लै नी, हुन ताणी तंद उणा लै नी।
तूं अपना दाज रंगा लै नी, तूं तद होवें परधान कुड़े।
जद घर बेगाने जावेंगी, मुड़ वत्त न ओथों आवेंगी।
ओथे जा के पछोतावेंगी, कुझ अगदों कर समिआन कुड़े[6]।
अजे ऐडा तेरा कंम कुड़े, क्यों होई एं बे-गम कुड़े।
की कर लैना उस दम कुड़े, जद घर आए महिमान कुड़े[7]।
जद सभ सईआं टुर जाणगीआं, फिर ओथों मूल न आणगीआं।
आ चरखे मूल न डाहुणगीआं, तेरा त्रिंझण पिआ वीरान कुड़े।
कर मान न हुसन जवानी दा, परदेस न रहिन सीलानी दा[8]।
कोई दुनिया झूठी फानी[9] दा, न रहिसी नाम निशान कुड़े।
इक औखा वेला आवेगा, सभ साक सैण भज जावेगा[10]।
कर मदद पार लंघावेगा, ओह बुल्ले दा सुल्तान कुड़े।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 87)

1-2. देखिये पृ. 50।

3. काम 4. भंडार=त्रिंझण जहाँ सखियाँ मिल कर कातती हैं 5. माता।

6. वहाँ का सामान तैयार कर ले। अगदों=आगे, पहले से। समिआन=सामान
7. जब मौत के दूत आ जायेंगे, उस समय कुछ न हो सकेगा।

8. सीलानी (सैलानी)=यात्री; यह देश आत्मा का वास्तविक देश नहीं है। यहाँ यात्री या व्यापारी की भाँति परमात्मा की भक्ति का व्यापार करने के लिये आई है
9. नाशवान 10. देखिये पृ. 139.

की करदा नी की करदा नी

इस काफ़ी में आश्चर्य प्रकट करते हैं कि उस प्रभु के खेल न्यारे हैं। वह शरीर में आत्मा के साथ रहता हुआ भी छिपा रहता है और एक होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होता रहता है :

की करदा नी की करदा नी, कोई पुच्छो खां दिलबर की करदा[1]।
इकसे घर विच वसदियां रसदियां, नहीं हुंदा विच परदा[2]।
विच मसीत नमाज गुजारे, बुत्तखाने जा वड़दा[3]।
कोई पुच्छो खां दिलबर की करदा।
आप इक्को कई लख घरां दे, मालक सब घर घर दा।
जित वल वेखां उत्त वल ओहो, हर दी संगत करदा।
कोई पुच्छो खां दिलबर की करदा।
मूसा ते फ़रऔन बना के, दो हो के क्यों लड़दा[4]।
हाजर नाजर ओही हर थां, चूचक किस नूं खड़दा[5]।
कोई पुच्छो खां दिलबर की करदा।
ऐसी नाजुक बात क्यों कहिंदा, न कहि सकदा न जरदा[6]।
बुल्ला शहु दा इश्क बघेला, रत्त पींदा गोशत चरदा[7]।
कोई पुच्छो खां दिलबर की करदा।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 93)

की जाना मैं कोई वे अड़िआ

इस काफ़ी में बहुत-से छोटे-छोटे भाव प्रकट किये गए हैं। आप कहते हैं कि आत्मा की अपनी कोई जाति नहीं है। जो इसके अन्दर बैठे परमात्मा की जाति है, वही इसकी जाति है और वह जाति प्रेम है। जो भी

---

1. वह प्रियतम अनेक तमाशे करता है 2. अन्दर रहता हुआ परदे के पीछे रहता है जो सही नहीं 3. मसजिद में नमाज पढ़ने के बाद मन्दिर में चला जाता है।

4. हज़रत मूसा में भी वही था और उसके साथ लड़ने वाले अहंकारी बादशाह फ़रओन में भी वही था 5. खड़दा=ले जाना; हीर का पिता (चूचक) हीर को विष देने के लिये ले गया 6. प्रेम की नाजुक बात न कही जाती है और न सहन की जाती है 7. उस प्रियतम का प्रेम बाघ की भाँति रक्त पीने वाला और मांस खाने वाला है।

प्रेम करता है वह प्रेम का और प्रभु का रूप ही हो जाता है। इसलिये सांसारिक रहनी की सफेद ओढ़नी उतार कर प्रभु के भक्तों वाली लोई ओढ़ लेनी चाहिये ताकि आत्मा पर माया का दाग न लगे। जिसने प्रभु (अलिफ़) को पहचान लिया, संसार (बे) को पहचान लिया, उसे सच्चा ज्ञान (तलावत) मिल गया जिससे वह सन्तोषी और प्रभु का शुक्र करने वाला (सादक, साबर) बन गया। इसके विपरीत जिसने अहम् का राग अलापा, वह मारा गया : 'कू कू अन्दर मोई।' प्रियतम वह कसाई है जो अहम् की बकरी का गला काट देता है। आप कहते हैं कि मेरे मुर्शिद अनायत शाह ने मुझ पर दया करके मुझे प्रभु-प्रेम की मदिरा पिलाई है। इससे मेरे अन्दर ही प्रभु से मिलाप हो गया है और मुझे दूर जा कर उसे ढूँढने की विपदा नहीं उठानी पड़ी :

की जाना मैं कोई वे अड़िआ, की जानां मैं कोई। टेक।
जो कोई अंदर बोले चाले, जात असाडी सोई[1]।
जिस दे नाल मैं नेहुं लगाया, ओहो जिही होई[2]।
चिट्टी चादर लाह सूट कुड़ीए, पहिन फ़कीरां दी लोई[3]।
चिट्टी चादर नूँ दाग़ लगेगा, लोई नूं दाग़ न कोई[4]।
अलिफ़ पछाता बे पछाती, तै तलावत होई[5]।
सीन पछाता शीन पछाता, सादक साबर होई[6]।
कू कू करदी कुमरी आही, गल विच तौक पिओई[7]।
बस न करदी कू कू कोलों, कू कू अंदर मोई[8]।
जो कुझ करसी अल्ला भाणा, क्यों कुझ करसी कोई[9]।
जो कुझ लेख मत्थे दा लिखिया, मैं उस ते शाकर होई।

---

1. परमात्मा की भाँति आत्मा की कोई जाति नहीं।

2. आत्मा परमात्मा से प्रेम करके उसका रूप हो गई।

3. सांसारिक रहन-सहन छोड़ कर प्रेमियों वाला रहन-सहन अपना ले।

4. सांसारिक मनुष्य माया की मार के नीचे होता है। फ़कीर इससे स्वतन्त्र होता है।

5-6. अलिफ़=परमात्मा; बे=संसार; तलावत=ज्ञान; सादक=सिदक वाला; साबर=सन्तोषी।

7-9. कुमरी=घुग्गी जैसा पक्षी ; तौक=ज़ंजीर, अर्थात् अहम् या प्रदर्शन करने वाले दुःख पाते हैं। मोई=मारी गई; शाकर=शुक्र करने वाला।

आशिक बकरी माशूक कसाई, मैं मैं करदी कोही।
ज्यों ज्यों मैं मैं बहुता करदी, त्यों त्यों मोई मोई।
बुल्ला शाह अनाइत करके, शौक शराब दित्तोई[1]।
भला होया असीं दूरों छुट्टे, नेड़े आन लधोई[2]।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 98)

की बेदरदां संग यारी

इस काफ़ी में प्रियतम को ऐसा बेदर्दी कहा गया है जो प्रीति लगा कर प्रेमिका को विरह की अग्नि में जलने के लिये अकेली छोड़ जाता है। यह तो चिड़ियों की मृत्यु पर गँवारों की हँसी जैसी बात है। यह अपने हाथों विष का प्याल पीने के समान है। यह ऐसा व्यापार है जिसमें दुःखों की गठरी के बिना और कुछ प्राप्त नहीं होता :

की बेदरदां संग यारी, रोवन अख्खियां ज़ारो ज़ारी।
सानूं गए बेदरदी छड्ड के, हिजरे सांग सीने विच गड के[3]।
जिस्मों जिंद नूँ लै गए कढ के, इह गल कर गए हैं सिआरी[4]।
बेदरदां दा की भरवासा, खौफ़ नहीं दिल अंदर मासा।
चिड़ियां मौत गवारां हासा, मगरों हस हस ताड़ी मारी।
आवन कहि गए फेर न आए, आवन ते सभ कौल[5] भुलाए।
मैं भुल्ली भुल्ल नैन लगाए, केहे मिले सानूं ठग बपारी।
बुल्ले शाह इक सौदा कीता, कीता ज़हिर प्याला पीता।
न कुझ नफ़ा न टोटा लीता, दरद दुख्खां दी गठड़ी भारी।
की बेदरदां संग यारी, रोवन अख्खियां ज़ारो ज़ारी।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 96)

कीहनूं ला-मकानी दसदे हो

इस काफ़ी में यह भाव प्रकट किया गया है कि स्वयं को निराकार और निर्लिप्त कहलाने वाला और सचखण्ड का वासी कहलाने वाला प्रभु

1-2. अनाइत=दया-मेहर; शौक शराब दित्तोई=प्रेम की शराब पीने को दी; लधोई=ढूँढ़ लिया है।

3. हिजर (वियोग) की बरछी 4. निर्दयी 5. वचन।

वास्तव में सर्वव्यापक है। उसने स्वयं ही सृष्टि की रचना का हुक्म दिया और स्वयं ही सृष्टि के कण-कण में समा गया। उसने स्वयं प्रेम द्वारा रचना रची और स्वयं ही प्रेमी बन कर इसमें समा गया। वह स्वयं ही आदम बना और स्वयं ही स्वर्ग लोक से निकल कर मृत्यु लोक में आ गया। सुनने वाला और सुनाने वाला, गाने वाला और बजाने वाला और मूर्ख की भाँति संगीत से दूर दौड़ जाने वाला अज्ञानी भी वह स्वयं है। वह स्वयं मंसूर बन कर 'मैं सत्य हूँ' का नारा लगाता है, स्वयं ही सूली पर चढ़ जाता है और स्वयं ही पास खड़े होकर हँसता है। नौशाबां की खोज में निकलने वाला सिकन्दर भी वह है, जुलैखा को सपने में दर्शन देकर उसका मन मोहने वाला भी वह है और पैगम्बर बन कर धर्म-ग्रन्थ लिखने वाला भी वह स्वयं है। रोमी भी वह है, हब्शी भी वह है, टोपी पहनने वाला फिरंगी भी वह है, मधुशाला में मदमस्त होने वाला भी वह है तथा स्त्री और पुरुष का रूप धारण करके आने वाला भी वही है।

काफ़ी के अन्त में अपने सतगुरु की उपमा करते हुए साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि वह सच्चा ब्रह्मज्ञानी है, वह मेरे हृदय का स्वामी है। मैं लोहा हूँ और वह पारस है। वह मेरे साथ स्पर्श करता है ताकि मैं भी लोहे से सोना और आत्मा से परमात्मा बन जाऊँ :

कीहनूं ला-मकानी दसदे हो, तुसीं हर रंग दे विच वसदे हो[1]।
कुनफ़यीकून[2] तैं आप कहाया, तैं बाझों होर किहड़ा आया।
इश्कों सभ ज़हूर[3] बनाया, आशिक हो के वसदे हो।
पुच्छो आदम किस ने आंदा ए, किथों आया कित्थे जांदा ए।
ओथे किस दा तैनूँ लांहजा[4] ए, ओत्थे खा दाना उठ नसदे हो[5]।
आपे सुनें ते आप सुनावें, आपे गावें आप बजावें।

---

1. निराकार और निर्लिप्त परमात्मा ही सर्वव्यापक कर्तापुरुष है।

2. हो जा और हो गया 3. दृश्यमान रचना 4. लांहजा=शर्म 5. परमात्मा ने आदम को हुक्म दिया हुआ था कि स्वर्ग के बाग के सब प्रकार के मेवा खाना परन्तु गेहूँ मत खाना। आदम और हव्वा ने शैतान के उकसाने पर गेहूँ खा लिया। इस आज्ञा का उल्लंघन करने के लिये उसे स्वर्ग से निकाल दिया गया।

हत्थों कौल सरोद सुनावें, किते जाहल हो के नसदे हो[1]।
तेरी वहदत तूएं पुचावें, अनलहक दी तार हिलावें[2]।
सूली ते मनसूर चढ़ावें, ओथे कोल खलो के हसदे हो।
जिवें सिकंदर तरफ़ नौशाबां, हो रसूल लै आया किताबां[3]।
यूसफ़ हो के अंदर खुआबां, जुलेखा दा दिल खसदे हो।
किते रूमी हो किते जंगी हो, किते टोपी-पोश फ़िरंगी हो[4]।
किते मैंखाने विच भंगी हो, किते मिहर महिरी बन वसदे हो[5]।
बुल्ला शहु 'अनाइत' आरफ़[6] है, ओह दिल मेरे दा वारस[7] है।
मैं लोहा ते ओह पारस है, तुसीं ओसे दे संग घसदे[8] हो।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 90)

केहे लारे देना एं सानूं

इस काफ़ी में कहते हैं कि प्रियतम मिलने के 'लारे' तो लगाता है परन्तु मिलता नहीं है। वह निकट में होते हुए भी छिपा रहता है। सतगुरु बन कर झाँकता है परन्तु पकड़ने की कोशिश करने पर छिप जाता है। प्रेमिका सन्देशवाहक द्वारा सन्देश भेजती है कि हे प्रियतम, तेरी जुदाई दिन-रात मेरे हृदय को खा रही है। तू मुझे अपना मुख दिखाने के लिये और अधिक न तड़पा :

केहे लारे देना एं सानूं, दो घड़िआं मिल जाईं। टेक।
नेड़े वस्सें थां न दस्सें, ढूंडां कित वल जाहीं[1]।

---

1. तू ही सरोद पर गाने वाला है और तू ही उस संगीत से दूर दौड़ने वाला है

2. अद्वैत में तू स्वयं पहुँचाता है। स्वयं मंसूर से 'मैं खुदा हूँ' का नारा लगवाता है और स्वयं ही उसे सूली पर चढ़ाता है।

3. सिकन्दर मलका नौशवां को लेने गया। जुलेखा स्वप्न में यूसुफ़ पर मोहित हो गई थी।

4-5. जंगी=हब्शी; टोपी-पोश फिरंगी=हैट पहनने वाला यूरोपियन; मैखाने= मधुशाला; मिहर=पुरुष; महिरी=स्त्री 6. ब्रह्मज्ञानी 7. स्वामी 8. स्पर्श 9. कहाँ जाकर तुझे खोजूँ ?

आपे झाती पाई अहिमद, वेखां तां मुड़ नाहीं[1]।
आख गिओं मुड़ आइओं नाहीं, सीने दे विच भड़कन भाईं[2]।
इकसे घर विच वसदियां रसदियां, कित वल कूक सुनाईं[3]।
पांधी जा मेरा देह सुनेहा, दिल दे ओहले लुकदा केहा।
नाम अल्ला दे न हो वैरी[4], मुख वेखन नूं न तरसाईं।
बुल्ला शहु की लाइआ मैनूं, रात अध्धी है तेरी महिमा[5]।
औझड़ बेले सभ कोई डरदा, सो ढूंडां मैं चाईं चाईं[6]।
केहे लारे देना एं सानूं, दो घड़िआं मिल जाईं।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 91)

गुर जो चाहे सो करदा ए

इस काफ़ी में यह भाव प्रकट किया गया है कि गुरु वास्तव में प्रभु का रूप है। इसलिये वह सर्वशक्तिमान है। गुरु के बिना जीव का अज्ञान दूर नहीं हो सकता। सतगुरु से मिलने पर पता चलता है कि वह प्रभु जो पहले गुप्त था, वही अपनी रचना में प्रकट हो गया। आत्मा परमात्मा का अंश है बल्कि परमात्मा स्वयं मनुष्य का वेश धारण करके संसार में आ जाता है। वह कहीं भक्त बन जाता है, कहीं शिष्य बन जाता है और कहीं गुरु और पैगम्बर बन जाता है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि वह बहुरूपिया प्रभु जिसने संसार से अपना भेद छिपा रखा है मुझे अपने हृदय में ही मिल गया है। सच्ची बात तो यह है कि वह स्वयं ही मेरे अन्दर बैठ कर अपने प्रेम का पाठ पढ़ा रहा है :

1-2. अहिमद=मुर्शिद; पहले दर्शन की झलक दी और फिर अपनी शक्ल छिपा ली : भाईं=अग्नियाँ।

3. एक ही घर में रहते हुए तुम नहीं मिलते, मैं यह शिकायत किससे करूँ।

4. प्रभु के नाम का वास्ता है कि तू मेरा शत्रु न बन।

5. पता नहीं प्रियतम ने मुझे क्या कर दिया है कि मैं आधी रात को भी उसी की महिमा का वर्णन करती हूँ।

6. औझड़ बेले=जंगल-सुनसान, अर्थात् जिन स्थानों पर जाने से लोग डरते हैं, मैं चाव से तुझे वहाँ ढूँढती फिरती हूँ।

गुर जो चाहे सो करदा ए। टेक।
मेरे घर विच चोरी होई, सुत्ती रही न जागिआ कोई[1]।
मैं गुर फड़ सोझी होई, जो माल गया सो तरदा ए[2]।
पहिले मख़फी आप खज़ाना सी, ओथे हैरत हैरतखाना सी[3]।
फिर वहदत दे विच आना सी, कुल जुज़ दा मुज़मल परदा ए[4]।
कुनफ़यीकून आवाज़ा देंदा, वहदत विच्चों कसरत लैंदा[5]।
पहिन लिबास बंदा बन बहिंदा, कर बंदगी मसजद वड़दा ए[6]।
रोज़ेमीसाक अलस्सत सुनावे, कालूबला अशहद न चाहवे[7]।
फिर कुझ अपना आप छुपावे, ओह गिन-गिन वसतां धरदा ए।
गुर अल्ला आप कहेंदा ए, गुर वली नबी हो बहिंदा ए[8]।
घर हर दे दिल विच रहिंदा ए, ओह खाली भांडे भरदा ए।
बुल्ला शहु नूं घर विच पाया, जिस सांगी सांग बनाया।
लोकां कोलों भेत छुपाया, ओह दरस पिरम दा पढ़दा ए[9]।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 99)

घड़िआली दिओ निकाल नी

साईं बुल्लेशाह की अधिकतर काफ़ियों में विरह का वर्णन है। यह काफ़ी अपना उदाहरण आप है क्योंकि इसमें विरह की पीड़ा के स्थान पर मिलन के आनन्द का वर्णन किया गया है। वास्तव में यहाँ अन्तर में सतगुरु

1-2. गुरु मिला तो पता चला कि पाँच विकार मेरे अन्दर नाम का अमृत पी रहे हैं।

3-4. मखफ़ी=गुप्त; कुल=परमात्मा; जुज़=अंश अर्थात् आत्मा; मुज़मल=छोटा, मामूली।

5-6. कुनफ़यीकून=हो जा (कुन) और हो गया (फ़यीकून), वहदत=एकता; कसरत=अनेकता; लिबास=पहरावा।

7. रोज़ेमीसाक=इकरार वाला दिन, अलस्सत=कुरान शरीफ़ की आयत है; अलस्सत बरिबकुम। परमात्मा ने आत्माओं से पूछा, "क्या मैं तुम्हारा नहीं हूँ?" अशहद=साक्षी। आत्माओं ने साक्षी दी; कालूबला अर्थात् "हाँ, तू ही हमारा परमात्मा है।" 8. वली=सन्त; नबी=पैगम्बर 9. दरस=पाठ; पिरम=प्रेम।

के नूरी स्वरूप के दर्शन होने और अनहद शब्द के प्रकट होने की अद्भुत रूहानी दशा का वर्णन किया गया है। काफ़ी में 'अज पी घर आया लाल', 'हुन घर आया जानी', 'मुख वेखन दा अजब नज़ारा', और 'बुल्ला शहु दी सेज प्यारी' जैसे वर्णन इस बात का संकेत देते हैं कि साधक का हृदय में सतगुरु से मिलन हो गया है। इसी प्रकार काफ़ी में कहा गया है : 'अनहद बाजा बजे सुहाना'। आप संकेत करते हैं कि मेरे अन्दर अनहद शब्द का दैवी संगीत गूँज रहा है। इस संगीत को बहुत निपुण (सुघ्घड़) संगीतकार (मुतरिब) अर्थात् वह प्रभु स्वयं बजा रहा है।

इस आनन्दमय अवस्था की प्राप्ति के बाद अभ्यासी एक पल भी इससे दूर नहीं होना चाहता। वह यह सहन नहीं कर सकता कि इतने प्रयत्नों और इतनी प्रतीक्षा के बाद प्राप्त हुई यह अवस्था छिन जाये। वह चाहता है कि समय थम जाये ताकि उसका अपने प्रियतम से मंगलमय मिलन सदा स्थिर रहे :

घड़िआली दिओ निकाल नी, अज पी घर आया लाल नी[1]। टेक।
घड़ी घड़ी घड़िआल बजावे, रैन वसल[2] दी पीआ घटावे।
मेरे मन दी बात जे पावे, हत्थों चा सट्टे घड़िआल नी।
अनहद वाजा वज्जे सुहाना, मुतरिब सुघड़ां तान तराना।
नमाज रोज़ा भुल गया दुगाना, मध प्याला देन कलाल नी[3]।
मुख वेखन दा अजब नज़ारा, दुख दिले दा उठ गया सारा।
रैन वधे कुझ करो पसारा, दिन अग्गे धरो दीवाल नी[4]।
मैनूं अपनी खबर न काई, क्या जानां मैं कित विआही।
इह गल क्योंकर छपे छपाई, हुन होया फ़ज़ल कमाल नी।

---

1. घड़ियाल बजाने वाले को घर से निकाल दो क्योंकि वह समय के बीतने की सूचना देकर मुझे परेशान कर रहा है। आज मेरा प्रियतम (पी) घर आ गया है और मैं सदा उसके साथ रहना चाहती हूँ 2. वसल=मिलन।

3. दुगाना=शुक्राने की नमाज; कलाल=साकी अर्थात् सतगुरु; मध प्याला=शराब का प्याला। सतगुरु अनहद शब्द की अद्भुत मस्ती बाँट रहा है।

4. रात को लम्बा कर दो। दिन के आगे दीवार खड़ी कर दो, अर्थात् ऐसे प्रयत्न करो कि मिलन की रात कभी समाप्त न हो।

टूने कामन करे बथेरे, सिहरे आए वड वडेरे[1]।
हुन घर आया जानी मेरे, रहां लख वरे इहदे नाल नी।
बुल्ला शाह दी सेज प्यारी, नी मैं तारनहारे तारी।
किबें किबें हुन आई वारी, हुन विछड़न होया मुहाल नी[2]।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 104)

घर में गंगा आई संतो

यह काफ़ी जितनी छोटी है उतनी ही भावमय है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि मेरे घर (शरीर) में शब्द और नाम की गंगा बहने लगी है, मुझे अन्तर में प्रभु के दर्शन हो गये हैं और इस रहस्य की भी प्राप्ति हो गई है कि सतगुरु अनहद द्वार (सचखण्ड) का वह ग्वाला है जो योगी का रूप धारण करके आत्मा रूपी हीर से प्रीति करने के लिये संसार में आता है। आप कहते हैं कि अन्तर में अहनद का अमर फल खाने से मुझे भी अमर जीवन की प्राप्ति हो गई है :

घर में गंगा आई संतो, घर में गंगा आई[3]।
आपे मुरली आपे घनइआ[4] आपे जादू राई[5]।
आप गोबरीआ[6] आप गडरिया आपे देत दिखाई।
अनहद द्वारका आया गवरीआ कडन दसत चढ़ाई[7]।
मूंड मुंडा मोहे प्रीती को रेन कंनां में पाई।
अमृत फल खा लिओ रे गोसाईं थोड़ी करो बडाई।
घर में गंगा आई संतो, घर में गंगा आई।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 103)

---

1. मैंने अनेक जादू-टोने (टूने कामन) किये। बड़े-बड़े जादूगरों (सिहरे) को बुलाया। मैं चाहती हूँ कि बड़ी कठिनाई और बड़ी देर बाद घर आया प्रियतम लाखों वर्षों तक सदैव मेरे साथ रहे 2. मेरा उससे बिछुड़ना कठिन है।

3. यहाँ आन्तरिक अमृतसर, मानसरोवर या रूहानी तीर्थ की ओर संकेत है 4. घनश्याम, कृष्ण 5. जादू राई का अर्थ यादव वंशी अर्थात् श्री कृष्ण हो सकता है 6. गोवर्धन को उठाने वाले अर्थात श्री कृष्ण 7. देखिये पृ. 145.

घुंघट चुक ओ सज्जनां वे

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह अपने प्रियतम से कहते हैं कि तूने हमसे प्रीति लगा कर अपने मुख पर घूँघट क्यों डाल लिया है ? पहले तूने नयनों का तीर चला कर हमारे दिल को घायल कर दिया और अब अपने मुख पर आँचल डाल लिया है। तुझे चित्तचोर बनने की युक्ति किसने सिखाई ? तूने प्रीति लगा कर हमारा मन हर लिया और फिर तड़पते रहने के लिये हमें अकेला छोड़ दिया। हमारी ही मूर्खता थी कि हमने खुशी-खुशी प्रेम का ज़हर-प्याला पी लिया। साईं जी अपने सतगुरु को सम्बोधित करके कहते हैं : मेरे प्रियतम, मैं अपनी प्रीति को वाणी नहीं दे सकती। मैं हर जगह तेरे मनमोहक रूप की तलाश कर रही हूँ। मैं अपनी प्रीति में दृढ़ रही हूँ। मैंने अपना वचन पूरा किया है। अब तू भी दया करके मुझे अपना प्यारा मुख दिखा दे :

घुंघट चुक ओ सज्जना वे, हुन शरमां काहनूं रखीआं वे। टेक।
जुलफ़ कुंडल दा घेरा पाया, बिसीअर[1] हो के डंग जलाया।
वेख असां वल तरस न आया, कर के खूनी अखिखआं वे।
घुंघट चुक ओ सज्जना वे, हुन शरमां काहनूं रखीआं वे।
दो नैनां दा तीर चलाया, मैं आजज़[2] दे सीने लाया।
घायल कर के मुख छुपाया, चोरियां इह किन दस्सीआं वे।
घुंघट चुक ओ सज्जना वे, हुन शरमां काहनूं रखीआं वे।
बिरहों कटारी तूं कस के मारी, तद मैं होई बेदिल भारी।
मुड़ न लई तैं सार हमारी, पत्तियां तेरियां कच्चीआं वे[3]।
घुंघट चुक ओ सज्जना वे, हुन शरमां काहनूं रखीआं वे।
नेहुं लगा के मन हर लीता, फेर न अपना दर्शन दीता[4]।
ज़हर प्याला मैं आपे पीता, अकलों सी मैं कच्चीआं वे[5]।

---

1. जुलफ़ कुण्डल=बालों का समूह : बिसीअर=साँप।

2. गरीब, बेचारे 3. पत्तियां=पत्र, अर्थात् तेरे वायदे झूठे थे।

4-5. प्यार करके मेरा मन मोह लिया, फिर अपना दीदार न दिया। मैं अक्ल की कच्ची थी, जिसने तेरे जैसे छलिया पर विश्वास करके प्रेम का ज़हर-प्याला पी लिया।

घुंघट चुक ओ सज्जना वे, हुन शरमां काहनूं रखीआं वे।
शाह अनाइत मुखों न बोलां, सूरत तेरी हर दिल टोलां[1]।
साबत हो के फेर क्यों डोलां, अज कौलों मैं सच्चीआं वे[2]।
घुंघट चुक ओ सज्जना वे, हुन शरमां काहनूं रखीआं वे।

(अब्दुल मजीद भट्टी : 'काफ़ियाँ बुल्लेशाह', 22)

चलो देखिए उस मस्तानड़े नूं

इस काफ़ी में बुल्लेशाह अपने मुर्शिद अनायत शाह की महिमा का वर्णन करते हुए पूर्ण सतगुरु के गुणों का वर्णन करते हैं। आप कहते हैं कि परमार्थी सभाओं (त्रिंझनां) में सतगुरु के नाम की चर्चा है। सतगुरु जाति-पाँति की परवाह किये बिना अपनी शरण में आने वाले प्राणियों को द्वैत से निकाल कर अद्वैत की मदिरा (मय) में रंग देता है। सतगुरु अन्तर में सुषुम्ना या शाहरग में पहुँच कर अपने आपको पहचानने (वफ़ीआ-नफोसा-कुम) और प्रभु को पहचानने की युक्ति सिखा देता है। सतगुरु संसार और शरीर के नौ द्वारों की झूठी और नश्वर दुनिया से मन और आत्मा को निकाल कर उस अमर प्रभु के अमर धाम में पहुँचने का मार्ग दिखा देता है। जीते-जी मरने की इस अवस्था को प्राप्त करके संसार के सब झगड़े और झंझट व्यर्थ प्रतीत होने लगते हैं। कोई अपना या पराया नहीं रह जाता और हरएक के सिर पर एक ही प्रभु का हाथ दिखाई देने लगता है। आप कहते हैं कि जिनके अन्दर उस प्रभु के दर्शन की कामना जाग उठती है उन्हें अन्तर में ही उससे मिलने का मार्ग मिल जाता है :

चलो देखिए उस मस्तानड़े नूं, जिहदी त्रिंझणां दे विच पई ए धुंम[3]।
ओह ते मै वहदत विच रंगदा ए, नहीं पुछदा ज़ात दे की हो तुम।
जींहदा शोर चुफ़ेरे पैंदा ए, ओह कोल तेरे नित रहिंदा ए।

---

1. मैं हर वजूद में तेरी सूरत ढूँढ रही हूँ।

2. साबत=पक्की, कौलों=वायदे की; मैं अपने वायदे की पक्की रही हूँ, अब तू ही अपना वचन पूरा कर।

3. व्याख्या के लिये देखिये : पृ. 78.

नाले नाहन अकरब कहिंदा ए, नाले आखे वफ़ीआ-नफ़ोसा-कुम[1]।
छड्ड झूठ भरम दी बस्ती नूं, कर इश्क दी कायम मस्ती नूं[2]।
गए पहुंच सजन दी हस्ती नूं, जिहड़े हो गए सुंम-बुकमुन-उम[3]।
न तेरा ए न मेरा ए, जग फ़ानी झगड़ा झेड़ा ए।
बिना मुरशिद रहिबर किहड़ा ए, पढ़ फ़ाज़-करूनी-अज़-कुर-कुम[4]।
बुल्ले शाह इह बात इशारे दी, जिन्हां लग गई तांघ नज़ारे दी।
दस पैंदी घर वणजारे दी, है यदुउल्ला-फ़ौका-ऐदी-कुम[5]।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 55)

जिचर न इश्क-मजाज़ी लागे

साईं बुल्लेशाह ने बहुत-सी काफ़ियों में मुर्शिद की महिमा का वर्णन किया है। इस काफ़ी में आप सतगुरु के देहस्वरूप के प्रेम की सुन्दर उपमा करते हैं। सूफ़ी साहित्य में इश्क-मिजाज़ी की सहायता से इश्क-हक़ीक़ी तक पहुँचने की बात कही गई है। मिजाज़ का अर्थ 'देही' है तथा हक़ीक़त का अर्थ 'प्रभु रूपी सत्य' है। यहाँ साईं जी समझाते हैं कि प्रभु के प्रेम का भवन केवल सतगुरु के प्रेम की नींव पर ही खड़ा हो सकता है। आप कहते हैं कि देहस्वरूप सतगुरु का प्रेम वह सुई है जिसके बिना प्रभु-प्रेम का वस्त्र नहीं सिया जा सकता। देहस्वरूप सतगुरु का प्रेम ही प्रभु-प्रेम का सच्चा दाता है। वास्तव में यह प्रेम प्रभु-प्रेम का पिता और इसकी जननी है। आपका भाव है कि सतगुरु के प्रेम के बिना प्रभु का प्रेम जन्म ही नहीं ले सकता। आप यह भी समझाते हैं कि सतगुरु से प्रेम करने वाले व्यक्ति को सहज में जीते-जी मरने की युक्ति प्राप्त हो जाती है,

---

1. नाहन अकरब=कुरान शरीफ़ की आयत जिसमें परमात्मा मनुष्य को कहता है कि मैं शाहरग से तेरे निकट हूँ। वफ़ीआ-नफ़ोसा-कुम=मुझे अपने आपमें देखें।

2-3. देखिये : पृ. 99.

4. यह कुरान शरीफ़ की आयत है जिसका अर्थ है कि सारी रचना उस खुदा के हुक्म से हुई है।

5. कुरान शरीफ़ की आयत जिसका अर्थ है कि परमात्मा का हाथ सब हाथों से श्रेष्ठ है।

जिससे उस प्रभु का प्रकाश दिखाई देने लगता है। अधिक विस्तार के लिये पुस्तक के पृष्ठ 100 और 141-142 देखिये :

जिचर न इश्क-मजाज़ी लागे, सूई सीवे न बिन धागे।
इश्क मजाज़ी दाता है, जिस पिच्छे मस्त हो जाता है।
इश्क जिन्हां दी हड्डी पैंदा, सोई नर जीवत मर जांदा।
इश्क पिता ते माता ए, जिस पिच्छे मस्त हो जाता ए।
आशिक दा तन सुकदा जाए, मैं खड़ी चंद पिर के साए।
वेख माशूकां खिड़ खिड़ हासे, इश्क बेताल पढ़ाता है।
जिस ते इश्क इह आया है, ओह बेबस कर दिखलाया है।
नशा रोम रोम में आया है, इस विच न रत्ती ओहला है।
हर तरफ़ दसेंदे मौला है, बुल्ला आशिक वी हुन तरदा है।
जिस फ़िकर पिया दे घर दा है, रब्ब मिलदा वेख उधरदा है।
मन अंदर होया झाता है, जिस पिच्छे मस्त हो जाता है।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 50)

जिस तन लगिआ इश्क कमाल

इस काफ़ी में कहते हैं कि जिसके अन्दर प्रभु का सच्चा प्रेम पैदा हो जाता है, वह ऐसी आनन्दमय मस्ती को प्राप्त कर लेता है जिसमें उसे अपनी या संसार की सुध-बुध नहीं रहती। जिसे प्रभु के दरबार से सच्चे प्रेम का प्रमाण-पत्र मिल जाता है, उसके सब संशय, भ्रम और प्रश्नोत्तर समाप्त हो जाते हैं। जिसे अन्तर में प्रियतम मिल जाता है उसे हर ओर प्रियतम ही प्रियतम दिखाई देता है। ऐसे रस-मग्न व्यक्ति को किसी बाहरमुखी संगीत की आवश्यकता नहीं रहती। उसके अपने अन्तर में ही दैवी संगीत की ध्वनियाँ गूँजती रहती हैं :

जिस तन लगिआ इश्क कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल[1]। टेक।
दरदमंदां नूं कोई न छेड़े, जिसने आपे दुख सहेड़े[2]।

---

1. कमाल=पूर्ण; जिसका प्रेम पूर्णता को पहुँच गया, उसके अन्दर इलाही मस्ती पैदा हो गई 2. सच्चे आशिक स्वयं इश्क के दुःख उत्पन्न करते हैं।

जंमना जीऊनां मूल उखेड़े, बूझे अपना आप ख़याल[1]।
जिस तन लगिआ इश्क कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल।
जिस ने वेस इश्क दा कीता, धुर दरबारों फ़तवा लीता[2]।
जदों हजूरों प्याला पीता, कुझ न रहा सवाल जवाब[3]।
जिस तन लगिआ इश्क कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल।
जिसदे अंदर वसिया यार, उठिया यारो यार पुकार[4]।
न ओह चाहे राग न तार, ऐवें बैठा खेडे हाल[5]।
जिस तन लगिआ इश्क कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल।
बुल्लिया शौह नगर सच पाया, झूठा रौला सब मुकाया[6]।
सच्चियां कारन सच्च सुनाया, पाया उसदा पाक जमाल[7]।
जिस तन लगिया इश्क कमाल, नाचे बेसुर ते बेताल।

(नज़ीर अहमद : 'कलाम बुल्लेशाह', 27)

जो रंग रंगिया गूढ़ा रंगिया

प्रस्तुत काफ़ी में अन्दर प्राप्त होने वाले रूहानी अनुभव के सम्बन्ध में सूक्ष्म संकेत दिये गए हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि सतगुरु शिष्य की आत्मा प्रभु या नाम के 'गूढ़े' (पक्के) रंग में रंग देते हैं। सतगुरु के मिलने से पता चल जाता है कि अहम् को दूर करके आत्मा स्वयं परमात्मा बन सकती है। जब सतगुरु के उपदेश पर चलते हुए जीते-जी मरने की अवस्था प्राप्त हो जाती है तो अन्तर में अनहद शब्द का प्रकाश दिखाई देने

---

1. मूल=जड़; परमात्मा के सच्चे प्रेमी जन्म-मरण की जड़ उखाड़ देते हैं। वे आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाते हैं।

2-3. डॉ. नज़ीर अहमद लिखते हैं कि जिसने प्रेमी का बाना पहन लिया, उसने इश्क के शाहंशाह (कृपालु प्रभु) के हाथों प्रेम का प्याला पी लिया। वह सांसारिक तौर तरीकों से बे-निआज़ हो गया।

4-5. जब अन्तर में प्रभु के शब्द की ध्वनि गूँजने लगी तो बाहरी नाच-गाने व्यर्थ हो गये। उच्च श्रेणी के सूफ़ी बाहरी राग-रंग के विरोधी थे।

6-7. शौह-नगर=मुकामे-हक, सचखण्ड; पाक-जमाल=पवित्र नूर; प्रियतम का नूर देखा तो संसार के सब शोर झूठे लगने लगे।

लगता है और इसकी रसमय ध्वनियाँ सुनाई देने लगती हैं। इस अभ्यास द्वारा अन्तर में प्रभु साक्षात् दिखाई देने लगता है :

जो रंग रंगिया गूढ़ा रंगिया, मुरशद वाली लाली ओ यार।
अहिद विच्चों अहिमद होया, विच्चों मीम निकाली ओ यार[1]।
दूर मुआनी दी धूम मची है, नैनां तों घुंड उठाली ओ यार[2]।
'सूराह यासीन'[3] मुज़मल[4] वाला, बदलां गरज संभाली ओ यार[5]।
जुल़्फ़ सिआह दे विच यद-बेज़ा, दे चमत्कार विखाली ओ यार[6]।
मूतू कबलंता मूतू होया, मोइआं नूं फेर जवाली ओ यार[7]।
बुल्ला शौह मेरे घर आया, कर कर नाच वखाली ओ यार।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 53)

टुक बूझ कौन छप आया ए

इस काफ़ी में कई सुन्दर भाव प्रकट किये गए हैं। साईं जी कहते हैं कि जो प्रेम का दु:ख नहीं सहन कर सकता, वह प्रियतम की नगरी में भी नहीं पहुँच सकता और जिसने प्रभु से प्रेम नहीं किया, उसका जन्म लेना व्यर्थ है। आप कहते हैं कि सच्चा खज़ाना प्रभु का नाम है जो उस मालिक ने हरएक के अन्दर रखा हुआ है। जो कोई द्वैत का आवरण दूर कर लेता है, उसे न कोई हिन्दू दिखाई देता है और न कोई मुसलमान। उसे सभी में एक ही प्रभु समाया हुआ दिखाई देता है। जो लोग प्रभु और उसके नाम से प्रेम नहीं करते, वे अज्ञानी हैं और सोये हुए हैं। जब वे अन्त समय अज्ञान की निद्रा से जाग उठेंगे तो उन्हें पता चलेगा कि हमने अपना मनुष्य-जन्म व्यर्थ खो दिया :

---

1. अहिद=एक परमात्मा; अहिमद=सतगुरु; परमात्मा से रसूल पैदा हुआ। अहम् या मन-माया 'मीम' दूर करने से आत्मा स्वयं परमात्मा बन जाती है।

2. इन गम्भीर रूहानी रहस्यों की धूम मची हुई है। आँखों से परदा उठा कर आन्तरिक सत्य को देखने का प्रयत्न करो।

3. कुरान शरीफ़ की एक आयत 4. गुप्त, रहस्यमयी 5. गुप्त रूहानी भेदों को प्रकट किया गया है। अन्तर के अनहद शब्द की ओर संकेत करते हैं 6. देखिये पृ. 88. 7. देखिये पृ. 104.

टुक बूझ कौन छप आया ए, किसे भेखी भेख वटाया ए[1]। टेक।
जिस न दर्द दी बात कही, उस प्रेम नगर न झात पई[2]।
ओह डुब मोई सभ घात गई, उस क्यों चंदरी ने जाया ए[3]।
टुक बूझ कौन छप आया ए।
मानिंद पलास बनाइउ ई, मेरी सूरत चा लखाइउ ई[4]।
मुख काला कर दिखलाइउ ई, क्या सियाही रंग लखाया ए[5]।
टुक बूझ कौन छप आया ए।
इक रब्ब दा ना ख़ज़ाना ए, संग चोरां यारां दानां ए[6]।
ओह रहिमत दा खसमाना ए, संग ख़ौफ रकीब बनाया ए[7]।
टुक बूझ कौन छप आया ए।
दूई दूर करो कोई शोर नहीं, इह तुरक हिंदू कोई होर नहीं।
सब साध कहो कोई चोर नहीं, हर घट विच आप समाया ए।
टुक बूझ कौन छप आया ए।
ऐवें किस्से काहनूं घड़ना एं, ते गुलसतां बोसतां पढ़ना एं[8]।
ऐवें बेमूजब क्यों लड़ना एं, किस उलटा वेद पढ़ाया ए[9]।
टुक बूझ कौन छप आया ए।

---

1. थोड़ा पहचान करें कि यह कौन भेखी भेख धारण करके आया है ? परमात्मा के मुर्शिद रूप में प्रकट होने की ओर संकेत है।

2-3. जिसने दर्द न सहा, वह प्रेम नगर में झाँक न सका। वह जीवित मृत है, उसकी निर्दयी मां ने उसे क्यों जन्म दिया।

4-5. तूने मुझे कपड़े के तम्बू की भाँति बनाया। फिर उस तम्बू पर मेरी शक्ल गहरे काले रंग में बनाई। इससे आपकी नम्रता प्रकट होती है। बाबा फ़रीद ने भी कहा था :

फ़रीदा काले मैडे कपड़े काला मैडा वेसु।
गुनही भरिआ मैं फिरा लोकु कहै दरवेसु।

(फ़रीद—आदि ग्रन्थ, पृ. 1381)

6-7. दानां=समझदार ; रहिमत दा खसमाना=परमात्मा की दया से मिला खज़ाना; रकीब=शत्रु। परमात्मा का नाम एक सच्चा खज़ाना है। वह चोरों, यारों और समझदारों के अन्दर भी है। वह उसकी दया से मिलता है। काल या शैतान रूप शत्रु भी जीव के साथ ही लाया गया है जो जीव को इस खज़ाने से दूर रखने का प्रयत्न करता है।

8-9. गुलसतां, बोसतां=फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी की उपदेश भरी पुस्तकें; बेमूजब=व्यर्थ; उलटा वेद=पंजाबी का मुहावरा है। इसका अर्थ उलटा ज्ञान है। आप बाहरी उपदेशों और कर्मकाण्ड को थोथे किस्से और उलटा वेद कहते हैं।

शरीअत साडी दाई ए, तरीकत साडी माई ए[1]।
अग्गों हक हकीकत आई ए, अते मारफ़तों कुझ पाया ए[2]।
टुक बूझ कौन छप आया ए।
है विरली बात बतावन दी, तुसीं समझो दिल ते लावन दी[3]।
कोई गत्त दस्सो इस बावन दी, इह काहनूं भेत बनाया ए[4]।
टुक बूझ कौन छप आया ए।
इह पढ़ना इल्म ज़रूर होया, पर दसना न मंजूर होया[5]।
जिस दसिया सो मनसूर होया, उस सूली पकड़ चढ़ाया ए[6]।
टुक बूझ कौन छप आया ए।
मैं न कसब न फ़िकर तमीज़ कीता, दुख तन आरफ़ बायज़ीद कीता[7]।
किसे बे-मिहनत न पाया ए[8]।
कर जुहद किताब मजीद कीता, टुक बूझ कौन छप आया ए।
रहें सुता कद तूं जागेंगा[9]।
इस दुख से किचरक भागेंगा, किसे गफ़लत मार सुलाया ए[10]।
फेर उठदा रोवन लागेंगा, टुक बूझ कौन छप आया ए।

1-2. शरीअत=कर्मकाण्ड; तरीकत=सदाचारिक शिक्षा; मारफ़त=रूहानी अभ्यास से प्राप्त हुए आन्तरिक भेद; हकीकत=परमात्मा के मिलाप की उच्चतम रूहानी अवस्था। देखिये पृ. 171-173.

3-4. बावन की गत=कर्ता का भेद। आप बतायें कि उसने यह भेद क्यों बताया है ?

5-6. परमात्मा का भेद पाना आवश्यक है परन्तु जो इसको प्रकट करने का प्रयत्न करता है, मंसूर की भाँति सूली पर चढ़ाया जाता है।

7-8. कसब=पेशा, जाच; तमीज़=पहचान, सूझ; आरफ़=ब्रह्मज्ञानी; बायज़ीद=एक महान सूफी फ़कीर; जुहद=तप; किताब मजीद=पवित्र पुस्तक कुरान शरीफ़; मैंने न परिश्रम किया और न ही सोच और विवेक या बुद्धि से काम लिया। बायजीद को तसीहे (कष्ट) ज़रूर सहन करने पड़े परन्तु अन्त में वह ब्रह्मज्ञानी बन गया। उसका तन पवित्र पुस्तक का रूप बन गया अर्थात् उसने अपने आपको कुरान शरीफ़ के रूहानी उपदेश का रूप बना लिया। किसी को भी बिना परिश्रम के कुछ नहीं मिला।

9-10. किचरक=कितनी देर तक; तू मेहनत (भक्ति) करने से कब तक दौड़ेगा ? तू कब तक गफ़लत की नींद में सोया रहेगा ? जब होश आयेगी तो रोयेगा, पछतायेगा।

गैन ऐन दी सूरत ठहिरा, इक नुकते दा है फ़रक पड़ा[1]।
जो नुकता दिल थीं दूर करा, फिर गैन वा ऐन जताया ए[2]।
टुक बूझ कौन छप आया ए।
जिहड़ा मन विच लग्गा दूआ रे, इह कौन कहे मैं मूआ रे[3]।
तन सभ अनायत दूआ रे, फिर बुल्ला नाम धराया ए[4]।
टुक बूझ कौन छप आया ए।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', ४8)

ढिलक गई मेरे चरखे दी हत्थी

इस काफ़ी में उस साधक या अभ्यासी (आत्मा) के मन की दशा का वर्णन करते हैं जो सतगुरु का वियोग सहन नहीं कर सकता। उसको रूहानी अभ्यास रूखा लगता है : 'चमड़िया उत्ते चौपड़ नाहीं।' कई फ़कीरों ने रूहानी अभ्यास की 'अलूनी सिल' चाटने से उपमा दी है। काफ़ी में 'कत्तिया मूल न जावे' की ध्वनि गूँजती है और काते न जा सकने के अनेक कारणों का वर्णन इस ध्वनि को ऊँचा उठाता है। दूसरी ओर 'कौन लुहार लिआवे', 'तकले तों वल लाहीं लुहारा', 'मैनूं प्यारा मुख दिखलावे', 'माही छिड़ गया नाल मही दे', 'जित्त वल यार उत्ते वल अख्खियां', 'बिरहों ढोल बजावे' और 'मैनूं शहु गल लावे' की ध्वनि निरन्तर ऊँची होती जाती है। इस प्रकार सतगुरु की सहायता से प्रभु-प्रेम में पूर्णता प्राप्त करने की बात कही गई है। उदाहरण यहाँ भी चर्खा कातने से लिया गया है जिससे अभिप्राय भक्ति करने से है। आप कहते हैं कि कातने और मुढ्ढा (छल्ली) उतारने (अभ्यास में सफलता) के लिये लुहार (सतगुरु) आवश्यक है। यदि वह स्वयं आकर गले लगा ले तो कातने की क्या आवश्यकता है ? रूहानी साधना भी मुर्शिद की दया से सम्भव है और सतगुरु की दया सैकड़ों

1-2. ऐन=परमात्मा, अपना; गैन=दूसरा, पराया; परमात्मा और रचना, अपने और पराये का अन्तर, द्वैत वाली दृष्टि के कारण है। दुई दूर हो जाये तो पराया अपना बन जाये; आत्मा परमात्मा बन जाये।

3-4. जब तक मन से दुई का नाश नहीं होता, यह नहीं कह सकते कि अहम् का नाश हो गया है। जब अहम् का नाश हो गया तो तन, मन अनायत शाह (सतगुरु) का रूप बन गया।

वर्षों की भक्ति से अच्छी है। भक्ति आवश्यक है परन्तु न भक्ति और न ही प्राप्ति अपने वश में है। रूहानी उन्नति का आधार शुष्क अभ्यास नहीं, सच्चा प्रेम, सच्ची तड़प और सतगुरु की दया है। अभ्यासी नम्र होकर कहता है कि हे प्रियतम, मेरी करनी (कातना) पूरी हो जाये (सै मनां दा कत्त लिआ), यदि तू दया करके मुझे अपने अन्दर मिला ले :

ढिलक गई मेरे चरखे दी हत्थी, कत्तिआ मूल न जावे।
तकले नूं वल पै पै जांदे, कौन लुहार लिआवे।
तकले तों वल लाहीं लुहारा, तंदी टुट टुट जावे[1]।
घड़ी घड़ी इह झोले खांदा, छल्ली इक न लाहवे।
पीता नहीं जो बीड़ी बन्हां, बाइड़ हत्त न आवे।
चमड़ियां उत्ते चौपड़ नाहीं, माल्ह एई बरड़ावे[2]।
दिन चढ़िआ कद गुजरे, मैनूं प्यारा मुख दिखलावे।
माही छिड़ गया नाल महीं दे, हुन कत्तन किस नूं भावे[3]।
जित्त वल यार उते वल अख्खियां, मेरा दिल बेले वल धावे।
त्रिंजण कत्तन सद्दन सईआं, बिरहों ढोल बजावे[4]।

---

1. तंदी=सूत; सुरत का सूत या सुमिरन और ध्यान में लिव लगना; छल्ली= मुद्ढा; अन्दर रूहानी तरक्की होना; बाइड़=चर्खे के बड़े पहिए।

2. चमड़ियाँ=चमड़े के टुकड़े जिनमें से तकला निकलता है; चौपड़=तेल; हत्थी का ढिलकना; तकले नूं वल पैना=मन का अभ्यास में न लगना; चर्खे का झोले खाना, चमड़ियों का खुश्क होना और माहल का बरड़ाउणा, भजन-सुमिरन या रूहानी अभ्यास में आने वाली कठिनाइयों की ओर संकेत है। अभ्यास में आने वाली सब रुकावटें दूर करना पूर्ण सतगुरु का काम है। भजन-सुमिरन के अभ्यास के नीरस या खुश्क होने की ओर संकेत है।

3. भैंसें चराने गया चाक (पति) रात को घर लौटता है। दूसरी आत्माओं की ओर गया सतगुरु (माही छिड़ गिआ नाल महीं दे) रात को अभ्यास के अन्दर दर्शन देता है। सूफ़ी दरवेशों ने दिन के शीघ्र व्यतीत होने के लिये विनती की है क्योंकि रात को अभ्यास में सतगुरु के नूरी स्वरूप से मिलाप किया जा सकता है।

4. त्रिंजण=सत्संगियों का मिल कर अभ्यास या सत्संग करना। प्रियतम के वियोग में कातना अच्छा नहीं लगता; बार-बार ध्यान प्यारे की ओर जाता है और विरह की पीड़ा रहती है : 'बिरहों ढोल वजावे'।

अरज़ इहो मैनूं आन मिले हुन, कौन वसीला जावे।
सै मनां दा कत्त लिआ बुल्ला, मैनूं शहु गल लावे।

(नज़ीर मुहम्मद : 'कलाम बुल्लेशाह', 37)

ढोला आदमी बन आया

इस काफ़ी में साईं बुल्लेशाह ने अपना मनपसन्द विषय चुना है कि वह प्रभु ही नाना रूप धारण करके संसार में आता है। वह स्वयं ही हिरन है और स्वयं ही उसे मारने वाला चीता है, स्वयं ही सेवक है और स्वयं ही स्वामी है। वह कभी शहंशाह बन कर हाथी पर सवारी करता है और कभी खाली बर्तन लाठी पर टाँग कर द्वार-द्वार पर भीख माँगता है। कभी त्यागी का स्वाँग भरता है तो कभी गृहस्थी का। आप कहते हैं कि मैं उस मुर्शिद पर कुर्बान जाता हूँ जिसने मुझे इस रहस्य को समझने की सामर्थ्य प्रदान की है। हाबील और काबील आदम के पुत्र माने जाते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि जब आदम नहीं था अर्थात् सृष्टि की रचना नहीं हुई थी, मैं तब भी विद्यमान था। आपका कथन है कि आदम सृष्टि का वडेरा (दादा) है, परन्तु मैं आदम का भी दादा हूँ। बहुत-से सन्तों ने दावा किया है कि सृष्टि की रचना से पहले भी वह विद्यमान था। इसका भी यही भाव है कि सतगुरु प्रभु रूप होता है :

ढोला आदमी बन आया[1]। टेक।
आपे आहू आपे चीता, आपे मारन धाया।
आपे साहिब आपे बरदा, आपे मुल्ल विकाया।
ढोला आदमी बन आया।
कदी हाथी ते असवार होया, कदी ठूठा डांग भवाया।
कदी रावल जोगी भोगी हो के, सांगी सांग बनाया।
ढोला आदमी बन आया।
बाज़ीगर क्या बाज़ी खेली, मैनूं पुतली वांग नचाया।
मैं उस पड़ताली नचना हां, जिस गतमित यार लखाया।

---

1. कुछ विद्वानों ने पाठ 'मौला आदमी बन आया' दिया है। आप कहते हैं कि परमात्मा सतगुरु का रूप धारण करके आता है और अपने आपको अपनी रचना द्वारा प्रकट करता है। देखिये पृ. 68.

ढोला आदमी बन आया।
हाबील काबील आदम दे जाए, आदम किस दा जाया।
बुल्ला ओन्हां तों वी अग्गों आहा, दादा गोद खिडाया।
ढोला आदमी बन आया।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 60)

तूहीउं हैं मैं नाहीं वे सज्जनां

इस काफ़ी में उस उच्च आध्यात्मिक अवस्था का वर्णन किया गया है जिसमें अभ्यासी के अहम् का नाश हो जाता है और उसे हर ओर प्रभु ही प्रभु दिखाई देता है। साईं जी कहते हैं कि जैसे कुएँ की परछाईं कुएँ में ही रहती है, उसी प्रकार प्रभु मेरे अन्तर में समाया हुआ है। मेरे हर कार्य में वह स्वयं स्थित है। जो कुछ करता है, वह स्वयं करता है और मैं कुछ भी नहीं करता।

बहुत-से स्थानों पर पाठ 'खोले दे परछावें' दिया गया है परन्तु 'खूहे दे परछावें' अधिक उचित प्रतीत होता है :

तूहीउं हैं मैं नाहीं वे सज्जनां, तूहीउं हैं मैं नाहीं[1]।
खूहे दे परछावें वांगू, घुम रिहा मन माहीं।
जां बोलां तूं नाले बोलें, चुप्प रहवां मन माहीं[2]।
जे सौवां ते नाले सौवें, जे तुरां तूँ राहीं।
बुल्ला शौह घर आया मेरे, जिंदड़ी घोल घुमाईं।
तूहीउं हैं मैं नाहीं वे सज्जनां, तूहीउं हैं मैं नाहीं।

(नज़ीर अहमद : 'कलाम बुल्लेशाह', 25)

तेरे इश्क नचाइआं

कहा जाता है कि यह काफ़ी साईं बुल्लेशाह ने अपने रूठे हुए मुर्शिद को मनाने के लिये लिखी थी। आप मुर्शिद से कहते हैं कि तेरे वियोग ने

---

1. इस काफ़ी में फ़ना-फ़ि-अल्ला की अवस्था का सुन्दर वर्णन है। कई स्थानों पर वाणी 'तू नहीउं मैं नाहीं वे सजनां' दी गई है परन्तु डॉ. नज़ीर अहमद द्वारा दिया गया पाठ 'तूहीउं हैं मैं नाहीं वे सज्जनां' प्रमाणिक है।

2. मेरे बोलने के समय तू ही बोलता है; चुप रहूँ तो तू मन में रहता है।

मुझसे अनोखा नाच नचवाया है। तेरा प्रेम मेरे लिये एक रोग बन गया है। तू ही वह वैद्य (तबीब) है जो इसका इलाज कर सकता है। तू ही मेरा काबा है और तू ही मेरा क़िबला है। काफ़ी के अन्त में आप मुर्शिद के प्रति अपना आभार प्रकट करते हुए कहते हैं कि उस प्रभु ने स्वयं दया करके मुझे ऐसे मुर्शिद से मिलाया जिसने मुझे आध्यात्मिकता के अनूठे रंग में रंग दिया :

तेरे इश्क नचाइआ कर थइआ थइआ। टेक।
तेरे इश्क ने डेरा मेरे अंदर कीता।
भर के ज़हिर प्याला मैं तां आपे पीता।
झबदे बहुड़ीं वे तबीबा नहीं ते मैं मर गइआं[1]।
तेरे इश्क नचाइआ कर थइआ थइआ।
छुप गया वे सूरज बाहर रहि गई आ लाली।
वे मैं सदके होवां देवें मुड़ जे वखाली।
पीरा मैं भुल गइआ तेरे नाल न गइआ।
तेरे इश्क नचाइआ कर थइआ थइआ।
एस इश्के दे कोलों मैनूं हटक न माए[2]।
लाहू जांदड़े बेड़े किहड़ा मोड़ लिआवे।
मेरी अकल जो भुल्ली नाल मुहानियां दे गइआ[3]।
तेरे इश्क नचाइआ कर थइआ थइआ।
एसे इश्के दी झंगी विच मोर बुलेंदा।
सानूं किबला ते काअबा सोहना यार दखेंदा।
सानूं घायल करके फिर ख़बर न लइआ।
तेरे इश्क नचाइआ कर थइआ थइआ।

---

1. झबदे बहुड़ीं=तू जल्दी आ; तेरा वियोग मेरे लिये विष है। तेरा दर्शन मेरे रोग की दवा है।

2. हटक न=न रोक; लाहू जांदड़े=तेज चले जाते।

3. मेरी मति मारी गई जो मैंने मुहानियां (मुर्शिद) पर भरोसा करके प्यार का मार्ग पकड़ लिया। यहाँ व्यंग्यात्मक वर्णन है क्योंकि सूफ़ी मुहानियां के साथ जाने को भूल नहीं कह सकता।

बुल्ला शौह ने आंदा मैनूं, अनाइत दे बूहे[1]।
ज़िस ने मैनूं पवाए चोले सावे ते सूहे।
जां मैं मारी है अडडी मिल पिआ है वहीआ।
तेरे इश्क नचाइआ कर थइआ थइआ।

(नज़ीर अहमद : 'कलाम बुल्लेशाह', 26)

दिल लोचे माही यार नूं

इस काफ़ी में विरहिणी की प्रियतम के साथ मिलन की प्रवल इच्छा प्रकट की गई है। वह ईर्ष्या करती है कि दूसरी सखियाँ प्रियतम से हँस-हँस कर बातें करती हैं पर मेरा समय रोने-धोने में व्यतीत होता है। वह कहती है कि मैंने सब हार-शृंगार किये परन्तु प्रियतम के हृदय में कोई ऐसी गाँठ पड़ गई कि उसने मेरी ओर ध्यान ही नहीं दिया। शत्रुओं ने उसका मन मेरी ओर से मोड़ दिया है जिसके कारण मैं चारों ओर से दुःखों में घिर गई हूँ। काफ़ी के अन्त में संकेत करते हैं कि जब प्रियतम मेरे घर आ गया तो मैं उससे लिपट गई और मेरे सारे दुःखों का नाश हो गया :

दिल लोचे माही यार नूं।
इक हस हस गल्लां करदियां, इक रोंदियां धोंदियां मरदियां।
कहो फुल्लीं[2] बसंत बहार नूं, दिल लोचे माही यार नूं।
मैं नाती धोती रहि गई, इक गंढ माही दिल बहि गई।
भाह[3] लाईए हार शिंगार नूं, दिल लोचे माही यार नूं।
मैं कमली कीती दूतियां[4], दुख घेर चुफेरों लीतियां[5]।
घर आ माही दीदार नूं, दिल लोचे माही यार नूं।

---

1. मुझे परमात्मा स्वयं अनायत (मुर्शिद की दया) के दरवाज़े पर लाया। मुर्शिद ने प्रेम या रूहानियत के सुन्दर आभूषण पहना कर माही (प्रियतम) से मिला दिया। 'मिल पिआ ए वहीआ' =वहीआ का अर्थ स्पष्ट नहीं है। वहीआ का अर्थ 'वही' भी हो सकता है और वही वाला या दैवी भेद जानने वाला अर्थात् परमात्मा का रूप आरिफ़ (मुर्शिद) भी हो सकता है।

2. खिली हुई 3. आग 4. शत्रु 5. दुःखों ने चारों ओर से घेर लिया है।

बुल्ला शौह मेरे घर आया, मैं घुट रांझण गल लाया।
दुख गए समुंदर पार नूं, दिल लोचे माही यार नूं।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 59)

न जीवां महाराज

इस काफ़ी के आरम्भ में साईं बुल्लेशाह सतगुरु के वियोग की पीड़ा का और काफ़ी के अन्त में सतगुरु से मिलाप के आनन्द का वर्णन करते हैं। विरहिणी का तपता हुआ हृदय केवल प्रियतम के दर्शन से ही शान्त हो सकता है :

न जीवां महाराज, मैं तेरे बिन न जीवां[1]।
इहनां सुकिआं फुल्लां विच बास नहीं[2]।
परदेस गयां दी कोई आस नहीं।
जिहड़े साईं साजन साडे पास नहीं। न जीवां महाराज...
तूं की सुत्ता एं चादर तान के।
सिर मौत खलोती तेरे आन के।
कोई अमल न कीता जान के[3]। न जीवां महाराज...
की मैं खट्टिया[4] तेरी हो के।
दोवें नयन गवाय रो के।
तेरा नाम लइए मुख धो के। न जीवां महाराज...
बुल्ले शहु बदेसों आउंदा।
हत्थ कंगणा ते बाहीं[5] लटकाउंदा[6]।
सिर सदका तेरे नाउं दा। न जीवां महाराज...

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 138)

नी कुटीचल मेरा नां

इस काफ़ी में विद्या तथा प्रेम की तुलना की गई है। 'कुटीचल' उस ढीठ छात्र को कहते हैं जो अध्यापक द्वारा पीटे जाने पर भी पढ़ने में रुचि

---

1. हे प्रियतम ! मैं तेरे बिना जीवित नहीं रह सकती।
2. बास=सुगन्ध; विरहिणी को प्रियतम के बिना संसार की कोई वस्तु नहीं भाती
3. समझ कर 4. कमाया 5. बाँह 6. यहाँ संकेत अनायत शाह के आने की ओर है।

नहीं रखता। साईं जी कहते हैं कि मुल्ला मुझे शरीयत अथवा कर्मकाण्ड की शिक्षा देना चाहता है पर मेरी यह अवस्था है कि मुझे अलिफ़ अथवा प्रभु और प्रभु-प्रेम के एक अक्षर के बिना दूसरी कोई बात याद नहीं होती। मुल्ला मुझे कुटीचल कह कर मारता है परन्तु मैं प्रेम का पाठ छोड़ कर कोई दूसरा पाठ नहीं पढ़ सकता। मेरे माता-पिता और मित्र-सम्बन्धी भी मुझे कोसते हैं परन्तु मैंने बहुत प्रयत्नों के बाद नेहु लगाया (अखियां लाइयां) है। इसलिये मैं प्रेम का परित्याग नहीं कर सकता। मैं अजीब दुबिधा में हूँ। प्रियतम को मैं छोड़ नहीं सकता और प्रियतम मेरी ओर ध्यान नहीं देता। काफ़ी के अन्त में साईं जी प्रियतम को ताना देते हैं कि यदि तुझे भी हमारी तरह प्रेम-रोग लग जाये, तभी तू हमारे साथ न्याय कर सकेगा अर्थात् हमारी अवस्था को समझ कर हम पर तरस खायेगा :

नी कुटीचल मेरा नां। टेक।
मुल्लां मैनूं सबक पढ़ाया, अलिफ़ों अग्गे कुझ न आया।
उस दीआं जुत्तियां खांदा सां, नी कुटीचल मेरा नां।
किवें किवें दो अखियां लाइयां, रल के सइआं मारन आइयां।
नाले मारे बाबल मां, नी कुटीचल मेरा नां।
साहवरे सानूं वड़न न देंदे, नानक दादक घरों कढेंदे।
मेरा पेके नहीउं थां, नी कुटीचल मेरा नां।
पढ़न सेती सब मारन आहीं, बिन पढ़ियां हुन छड्डदा नाहीं।
नी मैं मुड़ के कित वल जां, नी कुटीचल मेरा नां।
बुल्ला शहु की लाई मैनूँ, मत कुझ लग्गे ओह ही तैनूं।
तद करेंगा तूं निआं[1], नी कुटीचल मेरा नां।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 141)

पत्तियां लिखां मैं शाम नूं

इस काफ़ी में साईं जी विरहिणी के रूप में प्रियतम के वियोग की हृदय-विदारक अवस्था का वर्णन करते हैं। विरहिणी कहती है : मुझे वह सलोना श्याम दिखाई नहीं देता। मैं उसको सन्देश भेजती हूँ परन्तु वह उत्तर

1. निआं=न्याय।

नहीं देता। यह घर-बार मुझे मुँह फाड़ कर खाने को आता है। मैंने संसार के सब विद्वानों और धर्म-ग्रन्थों की सहायता ली है परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है कि फिर भी प्रियतम से मिलन नहीं हो रहा। हे ज्योतिषी, तू मुझे सच्ची बात बता दे। यदि मेरा भाग्य मन्द है तो भी तू मुझसे न छिपा। मैं सबकुछ त्याग देना चाहती हूँ परन्तु प्रेम को नहीं त्याग सकती। मेरे गले में पड़ी प्रेम की ज़ंजीर कभी नहीं टूट सकती। नींद भी मेरी दुश्मन बन गई है कि कहीं स्वप्न में ही मुझे प्रियतम के दर्शन न हो जायें। रो-रोकर नयनों का नीर भी समाप्त हो गया है परन्तु पता नहीं किस शत्रु ने कौन-सा जादू किया है कि प्रियतम मेरी ओर ध्यान ही नहीं देता। हे प्रियतम, तू स्वयं ही बता कि बिना अश्रुओं और काँटों के छत्र से मुझे तेरी प्रीति से क्या मिला है ? अब मेरी यही प्रार्थना है कि तू मुझे उस देश में ले चल जहाँ तू स्वयं रहता है ताकि मुझे तेरे दर्शन हो सकें :

पत्तियां लिखां मैं शाम नूं, मैंनूं पिया नज़र न आवे। टेक।
आंगन बना डराउना, कित बिधि रैण विहावे।
काग़ज़ करूं लिख दामने, नैन आंसू लाऊं।
बिरहों जारी हउं जरी, दिल फूक जलाऊं।
पांधे पंडत जगत के, मैं पूछ रही आं सारे।
पोथी बेद क्या दोश है, जो उलटे भाग हमारे।
भाइआ वे जोतशिया, इक सच्ची बात भी कहिओ।
जे मैं हीणी[1] भाग दी, तुम चुप्प न रहिओ।
भज्ज सकां ते भज्ज जावां[2], सब तज के करां फ़कीरी।
पर दुलड़ी, तुलड़ी, चौलड़ी[3], है गल विच प्रेम ज़ंजीर।
नींद गई कित देश नूं, ओह भी वैरन मेरी।
मत सुपने विच मैं आन मिले[4], ओह नींदर किहड़ी।
रो रो जीउ वलाउंदीआं[5], गम करनीआं दूना।
नैनों नीर भी न चल्लन, किसे कीता टूना।

---

1. भाग्यहीन 2. दौड़ सकूँ तो दौड़ जाऊँ 3. दोहरी, तिहरी और चौहरी 4. कहीं वह स्वप्न में न मिले 5. रो-रोकर दिल को तसल्ली देती है।

साजन तुमारी प्रीत से, मुझ को हाथ की आया।
छतर सूलां सिर लाया, पर तेरा पंथ न पाया।
प्रेम नगर चल वसीए, जित्थे वस्से कंत हमारा।
बुल्लिआ शहु तों मंगनी हां, जे दए नज़ारा[1]।

(नज़ीर अहमद : '**कलाम बुल्लेशाह**', 23)

प्यारिया संभल के नेहूं ला

मीरा का कथन है :

प्रीतम जो मैं जानती, प्रीति किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीति न करियो कोय॥

इस काफ़ी में साईं जी भी प्रेम करने वालों को चेतावनी देते हैं कि प्रेम करना खाला का घर नहीं है। प्रेम में अभूतपूर्व बलिदान देना पड़ता है और अनेक कष्ट व यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। प्रेम के मार्ग में शेर जैसा बड़ा दिल रखने वाले भी डर जाते हैं। इसलिये सोच-समझ कर ही इस मार्ग पर पाँव रखने चाहिये। आप यूसुफ़, मजनूं और मंसूर के उदाहरण देते हैं जिन्हें प्रेम के मार्ग पर कई यातनाओं को सहन करना पड़ा और जान से भी हाथ धोना पड़ा। आप कहते हैं कि प्रेमियों को प्रेम की मदिरा पीते देख कर तेरा भी दिल ललचायेगा परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि तुझे प्रेम का सौदा महँगा पड़ेगा। काफ़ी के अन्त में व्यंग्य करते हैं कि यदि संसार में ऐश करना और सुख की नींद सोना चाहते हो तो शरा भाव कर्मकाण्ड का रास्ता पकड़ लो। यदि प्रभु-प्रेम के मार्ग पर चलते हुए मंसूर की तरह 'मैं सत्य हूँ' का नारा लगाओगे तो तुम्हें भी सूली पर चढ़ा दिया जायेगा :

प्यारिआ संभल के नेहुं ला, पिच्छों पछतावेंगा। टेक।
जांदा जाह न आवीं फेर, ओथे बेपरवाहियां ढेर[2]।

---

1. मैं उससे दर्शन (नज़ारा) की भिक्षा माँगती हूँ।

2. यदि प्रेम के मार्ग पर जाना चाहता है तो चला जा, परन्तु वहाँ से वापस आना नहीं होगा।

ओथे डहिल खलोंदे शेर, तूं वी फंधिआ जावेंगा[1]।
प्यारिया संभल के नेहुं ला......
खूह विच यूसफ़ पाइओ ने, फड़ विच बाज़ार विकाइओ ने[2]।
इक अट्टी मुल्ल पवाइओ ने, तूं कौडी मुल्ल पवावेंगा[3]।
प्यारिया संभल के नेहुं ला......
नेहुं ला वेख जुलैखा लए, ओथे आशिक तड़फण पए।
मजनू करदा है है है[4], तूं ओथों की लिआवेंगा।
प्यारिया संभल के नेहुं ला......
ओथे इकना दे पोसत लुहाइदे, इक आरिआं नाल चिराइदे[5]।
इक सूली पकड़ चढ़ाइदे, ओथे तूं वी सीस कटावेंगा[6]।
प्यारिया संभल के नेहुं ला......
घर कलालां[7] दा तेरे पासे, ओथे आवन मस्त प्यासे।
भर भर पीवन प्याले कासे[8], तूं वी जीअ ललचावेंगा।
प्यारिया संभल के नेहुं ला......
दिलबर हुन गिउं कित लौं[9], भलके की जाना की हो।
मस्तां दे न नाल खलो, तूं वी मस्त सतावेंगा[10]।
प्यारिया संभल के नेहुं ला......

---

1. डहिल जाना=डर जाना; शेर=सूरमे, बहादुर।

2-3. यूसुफ़ को पहले कुएँ में फेंका गया, फिर वह सूत की एक अट्टी के मूल्य बिक गया, तेरा इतना भी मूल्य नहीं

4. है है है=दुःख में कुरलाना।

5-6. पोसत=खाल; प्रेम में शम्स तबरेज की खाल उतारी गई; ज़करीए को आरे से चीर डाला गया ओर मंसूर को सूली चढ़ाया गया।

7. कलालां=शराब बेचने वाले अर्थात् परमात्मा के प्रेमी

8. कांसे=लोटे, प्याले 9. लौ=एक तरफ 10. प्रेमियों की संगति में गया तो तुझे भी प्रेमी समझ कर दुःखी करेंगे।

बल्लिआ ग़ैर शरा न हो, सुख दी नींदर भर के सौं[1]।
मूंहों न अनलहक्क बगो, चढ़ सूली ढोले गावेंगा[2]।
प्यारिया संभल के नेहुं ला.....

(फ़क़ीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 41)

प्यारे ! बिन मसल्हत उठ जाना

इस काफ़ी में अचेत मनुष्य को सचेत करते हैं कि तू संसार में विवेक से काम ले। तू यहाँ चार दिन मनमानी और लोगों पर अत्याचार कर सकता है परन्तु अन्ततः तुझे अपने बुरे कामों के लिये स्वयं दुःख उठाने पड़ेंगे। एक दिन तुझे भी कब्रिस्तान जाना पड़ेगा, जहाँ सारे संसार को जाना है। यमराज बहुत बलवान है। उससे कभी कोई नहीं बच सका। काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि मनुष्य संसार में हर ओर से शत्रुओं से घिर चुका है। वह प्रभु ही दया करे तो यमराज के भय से छुटकारा हो सकता है :

प्यारे ! बिन मसल्हत उठ जाना, तूं कदी ते हो सिआना[3]। टेक।
कर लै चावड़ चार दिहाड़े, थीसें अंत निमाना[4]।
ज़ुलम करें ते लोक सतावें, छड्ड दे लोक सताना[5]।
जिस जिस दा वी मान करें तूं, सो वी साथ न जाना।
शहिर खामोशां नूं वेख हमेशा, सारा जग जिस महिं समाना[6]।

---

1. व्यंग्य करते हैं कि संसार में मौज उड़ाना चाहते हो तो शराह की सीमा पार न करो।

2. यदि प्रेम में आकर 'मैं प्रभु हूँ' का नारा लगायेगा तो तुझे भी मंसूर की भाँति सूली पर चढ़ा देंगे।

3. मसल्हत=नेकी, भलाई; प्यारे, क्या तू नेक काम किये बिना ही चला जायेगा ? कुछ समझ से काम ले।

4. चावड़=मल आई, बुराइयाँ, ऐश्वर्य; थीसें=हो; जायेगा; निमाना=बेचारा; चार दिन मन मर्ज़ी करने के बाद शरीर जवाब दे जायेगा। अत्याचार करना और लोगों को सताना छोड़ दे।'

5. पाठान्तर इस प्रकार भी मिलता है : 'ज़ुलम करें की लोक सतावें क्यों लिआ उलट कहाणा।'

6. शहिर-खामोशी=चुप का शहर, श्मशान, देखिये पृ. 37.

भर भर पूर लंघावे डाढा, मलकुन मौत मुहाना[1]।
ऐथे हैन तनते सभ, मैं अवगुणहार निमाना[2]।
बुल्ला दुश्मन नाल बरे विच, है दुश्मन बल ढाना[3]।
महिबूब-रबानी करे रसाई, खौ़फ़ जाए मलकाना[4]।

(फ़क़ीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 40)

पाया है कुछ पाया है

इस काफ़ी में वाहदतुल-वजूद या हमाओस्त या पूर्ण अद्वैत का भाव प्रकट कर रहे हैं। आप कहते हैं कि कामिल मुर्शिद ने यह ज्ञान दिया है कि दिखाई देने वाली अनेकता के पीछे गुप्त एकता काम कर रही है। मित्र, शत्रु, प्रेमी-प्रेमिका, गुरु और शिष्य में वह स्वयं बैठा है और स्वयं अपना मार्ग दिखा रहा है, 'सभ अपना राह दिखाया है :

पाया है कुछ पाया है, सतगुरु ने अलख लखाया है। टेक।
कहूं वैर पड़ा कहूं बेली है, कहूं मजनूं है कहूं लेली है।
कहूं आप गुरु कहूं चेली है, सभ अपना राह दिखाया है।
कहूं चोर बना कहूं साह जी है, कहूं मंबर[5] ते बहि वाअज़ी[6] है।
कहूं तेग बहादुर ग़ाज़ी[7] है, कहूं अपना पंथ बताया है।
कहूं मसजद का वरतारा[8] है, कहूं बनिआ ठाकुर द्वारा है।
कहूं बैरागी जप धारा है, कहूं शेखन बन बन आया है।

---

1. डाढा=शक्तिशाली, मलकुस मौत=मौत का देवता; मुहाना=नाविक।

2. तनते=बढ़-चढ़ कर, चालाक, चतुर; अवगणहार=पापी; पाठान्तर इस प्रकार मिलता है : 'ऐथे जितने हन सभ तिनते मैं गुनाहगार पुराना।'

3. दुश्मन बल ढाना=शक्तिशाली शत्रुओं का समूह अर्थात् मन और विकारों ने बुरी तरह जीव को घेरा हुआ है।

4. महिबूब रब्बानी= प्रभु रूपी प्यारा; रसाई=पहुँच; खौफ़=भय; मलकाना=मलक का अर्थात् वह प्रियतम बहुत करे तो मौत के फ़रिश्ते का भय दूर हो जाये।

5. मंबर=मनारा; मसजिद में वाअज (उपदेश या कथा) करने वाल स्थान।

6. वाअजी=उपदेशक 7. ग़ाज़ा=धर्म के लिये प्राण न्योछावर करने वाला।

8. व्यवहार।

कहूं तुरक किताबां पढ़ते हो, कहूं भगत हिंदू जप करते हो।
कहूं घोर गुफा में पड़ते हो, हर घर घर लाड लडाया है।
बुल्ला शहु का मैं मुहताज होआ, महाराज मिले मेरा काज होआ[1]।
दरशन पिया दा मेरा इलाज होआ, लग्गा इश्क तां एह गुण गाया है[2]।

(अनवर अली रोहतकी : '**कानूने इश्क**', 58)

पिया पिया करते हमीं पिया होए

गुरु नानकदेव जी कहते हैं : 'जैसा सेवे तैसा होवे।' सन्तमत का नियम है कि जिसका मानव सुमिरन करता है, उसी का रूप हो जाता है। यहाँ पर साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि हम पिया-पिया करते हुए स्वयं पिया बन गये हैं। हम उस अद्भुत अवस्था में पहुँच गये हैं जहाँ संयोग और वियोग, प्रेमी और प्रेमिका का अन्तर समाप्त हो गया :

पिया पिया करते हमीं पिया होए, अब पिया किस नूं कहीए।
हिजर वसल[3] हम दोनों छोड़े, अब किस के हो रहीए।
मजनूं लाल दीवाने वांगू, अब लैला हो रहीए[4]।
बुल्ला शौह घर मेरे आए, अब क्यों ताअने सहीए।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 39)

बस कर जी हुन बस कर जी

कहा जाता है कि यह काफ़ी साईं जी ने मुर्शिद के वियोग में लिखी और रूठे हुए मुर्शिद को मनाने के लिये गाकर सुनाई। यहाँ कहते हैं कि अब मुझे काफ़ी सजा मिल चुकी है। तू अपना रोष छोड़ कर मुझसे प्रेम की बात कर। आप कहते हैं कि एक ओर तू जादू करके मेरे दिल को

1-2. मुहताज=चाहवान, प्रेमी; सतगुरु का दास बना तो मेरा प्रभु से मिलाप हो गया। प्रियतम के दर्शन करने से मेरे सब दुःख दूर हो गये। इस अवस्था की प्राप्ति प्रेम द्वारा ही हुई।

3. वियोग और संयोग 4. जिस प्रकार मजनू लैला का दीवाना बन कर लैला में समा गया था, हम भी प्रियतम में समा कर उसका रूप हो गये हैं।

खींचता है और दूसरी ओर मुझसे दूर भागता है। अब मैंने तुझे अपने मन में कैद कर लिया है। तुम यहाँ से कैसे भागोगे ? तुम दौड़ना तो यहाँ से भी चाहते हो परन्तु मैंने तुम्हें प्रेम के बन्धन में इस प्रकार कस लिया है कि तुम अब दौड़ नहीं पाओगे। काफ़ी के अन्त में प्रेमिका के रूप में कहते हैं : हे प्रियतम, मैं तेरी दासी हूँ। मैं तेरे दर्शन के लिये प्राण न्योछावर करती हूँ। मेरी यही प्रार्थना है कि तुम इस तरह मेरे हृदय में बैठ जाओ कि फिर कभी बाहर निकल न पाओ :

बस कर जी हुन बस कर जी, इक बात असां नाल हस्स कर जी। टेक।
तुसीं दिल मेरे विच वसदे हो, ऐवें साथों दूर क्यों नसदे हो।
नाले घत्त जादू[1] दिल खसदे हो[2], हुन कित वल जासो नस्स कर जी।
तुसीं मोइआं नूँ मार ना मुकदे सी, खिद्दो वांग खूंडीं कुट्टदे सी[3]।
गल्ल करदियां दा गल घुट्टदे सी[4], हुन तीर लगाइओ कस्स कर जी।
तुसीं छपदे हो असां पकड़े हो, असां नाल ज़ुलफ़ दे जकड़े हो[5]।
तुसीं अजे छपन नूं तकड़े हो[6], हुन जान न मिलदा नस्स कर जी[7]।
बुल्ला शौह मैं तेरी बरदी[8] हां, तेरा मुख वेखन नूं मरदी हां।
नित्त सौ सौ मिंनतां करदी हां, हुन बैठ पिंजर विच धस्स कर जी[9]।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 25)

बुल्ला की जाने ज़ात इश्क दी कौन

इश्क की कोई जाति नहीं है। परमात्मा का प्यार, कौमों, मजहबों, मुल्कों, रंगों, नस्लों, जातियों के बन्धनों से स्वतन्त्र है। प्रेमिका कहती है कि मैं बाहर से प्रियतम से शिकायत करती हूँ परन्तु मेरा हृदय उसके प्यार से भरा हुआ है। मेरा प्रियतम से झगड़ा ऊपरी और बनावटी है। हम लोगों

---

1. जादू घत्त=जादू करके 2. दिल खसदे हो=दिल को खींचते हो 3. तुम मरे हुए को मारने जाते थे और मुझे गेंद की तरह खूँटी से पीटते थे। 4. तुम हमें बात भी नहीं करने देते थे 5. हमने तुम्हें प्रेम के कुण्डल में फँसा लिया है 6. तुम अब भी छिपने के लिये बलवान हो 7. परन्तु तुम्हें भागने का मार्ग नहीं मिलता 8. बरदी=दासी 9. पिंजर=शरीर; अब मेरे अन्दर धँस कर बैठ जा ताकि दुबारा निकल न सके।

को आज़माने के लिये झगड़े का दिखावा करते हैं, परन्तु अन्दर से हम एक हैं। यह बड़ा सुन्दर वर्णन है। प्रेम के गिले-शिकवे उसके प्यार की ही निशानी होते हैं :

बुल्ला की जाने ज़ात इश्क दी कौन। टेक।
न सूहां न कंम बखेड़े, वंञे जागन सौन[1]।
रांझे नूं मैं गालियां[2] देवां, मन विच करां दुआईं।
मैं ते रांझा इक्को कोई, लोकां नूं अज़माईं।
जिस बेले विच बेले दिस्से, उस दीआं लवां बलाईं[3]।
बुल्ला शौह नूं पासे छड्ड के, जंगल वल्ल न जाईं[4]।
बुल्ला की जाने ज़ात इश्क दी कौन।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात,' 26)

बुल्ले नूं समझावन आइयां

यह काफ़ी साईं बुल्लेशाह के जीवन की एक घटना पर प्रकाश डालती है। जब बुल्लेशाह ने हज़रत अनायतशाह को अपना मुर्शिद बना लिया तो घर वालों ने शिकायत की कि तूने नबी (हज़रत मुहम्मद) की उम्मत और हज़रत अली की सन्तान होकर साधारण अराईं को गुरु धारण कर लिया है। इससे हमारी बहुत बदनामी हुई है। साईं बुल्लेशाह उत्तर देते हैं कि उस जाति पर धिक्कार है जो नरकों में जाने का कारण बनती है, जो जीव को कामिल मुर्शिद से दूर रखती है। जो मुर्शिद की जाति है, वही मेरी जाति है। कबीर साहिब कहते हैं कि शिष्य का सम्बन्ध कामिल मुर्शिद के नश्वर शरीर के अन्दर काम कर रहे दैवी प्रकाश से है :

---

1. सूहां=खबरें; वंभे=भूल जाती है; इश्क में अपनी और कामकाज की सुध-बुध भूल जाती है

2. गालियाँ=ताने, उलाहने।

3. बेले=ठिकाना; जिस स्थान पर प्रेम का निवास है मैं उस पर बलिहार जाती हूँ।

4. प्रियतम (अन्दर है) को पीठ देकर बाहर वनों, सुनसानों में उसकी खोज करना व्यर्थ है। आपने किसी अन्य काफ़ी में भी कहा है : 'प्रीतम पास ते टोलें किस नूं भुल गया सिखर दुपहिरी।'

जात न पूछो साध की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

वह सर्वव्यापक मालिक बेपरवाह है। वह स्वयं अराईं (हज़रत अनायत शाह) का रूप धारण करके संसार में आया है। इसलिये ही मैंने उसकी शरण ली है :

बुल्ले नूं समझावन आइआं, भैनां ते भरजाइआं। टेक।
"मंन लै बुल्लिआ कहिना साडा, छड्ड दे पल्ला राइआं[1]।
आल नबी औलाद अली नूं, तूं क्यों लीकां लाइआं[2]"।
"जिहड़ा सानूं सैयद सद्दे, दोज़ख मिलन सजाइआं[3]।
जो कोई सानूं राईं आखे, भिश्ती पींघां पाइआं[4]।
राईं साईं सभनी थाईं, रब्ब दीआं बेपरवाहिआं।
सोहनियां परे हटाइआं, ते कोझियां लै गल लाइआं।
जे तूं लोड़ें बाग़ बहारां, चाकर हो जा राइआं।
बुल्लेशाह दी ज़ात की पुछनै, शाकर[5] हो रज़ाइआं[6]"।

(नज़ीर अहमद : 'कलाम बुल्लेशाह', 19)

भरवासा की अशनाई दा

वे इस काफ़ी में कहते हैं कि वह प्रियतम बेपरवाह है। उससे प्रेम करके उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। आप इब्राहीम, सुलेमान, यूनिस, यूसुफ़, ज़करीया, साबर, इमाम हुसैन, यय्या आदि के उद्धरण देकर बताते हैं कि इन प्रेमियों को प्रियतम की बेपरवाही के कारण अनेक दुःख सहन करने पड़े। काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि अब मैंने उस प्रियतम को अच्छी प्रकार पहचान लिया है। वह हर स्थान में समाया हुआ है। अब मैं उसे कभी नहीं भूल सकता :

---

1. यह बात बुल्लेशाह के सम्बन्धी कहते हैं।

2. लीकां लाइआं=बदनाम करना

3-4. इन पंक्तियों में बुल्लेशाह उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे सैयद कहने वाले नरकों में और अराईं कहने वाले स्वर्गों में जायेंगे।

5. शाकर=शुक्र करने वाला, आज्ञा मानने वाला।

6. रज़ाइआं=रज़ा में प्रसन्न रहना।

भरवासा की अशनाई दा, डर लगदा बेपरवाही दा[1]। टेक।
इबराहीम चिखा विच पाइउ, सुलेमान नूं भठ्ठ झुकाइउ।
यूनस मच्छी तों निगलाइउ, फड़ यूसफ़ मिसर विकाई दा[2]।
ज़करीआ सिर कलवत्तर चलाइउ, साबर दे तन कीड़े पाइउ।
सुंनआं गल जुन्नार पवाइउ, किते उलटा पोश लुहाई दा[3]।
पैगंबर ते नूर उपाइउ, नाम इमाम हुसैन धराइउ।
झूला जबराईल झुलाइउ, फिर प्यासा गला कटाई दा[4]।
जा ज़करीआ रुख्ख छुपाया, छप्पना उस दा बुरा मनाया।
आरा सिर ते चा वगाइया, सने रुख चराई दा[5]।
यईहा उस दा यार कहाया, नाल ओसे दे नेहुं लगाया।
राह शरह दा उन्न बतलाया, सिर उस दा बाल कटाई दा[6]।
बुल्ला शौह हुन सही संञाते हैं, हर सूरत नाल पछाते हैं।
किते आते हैं किते जाते हैं, हुन मैथों भुल न जाई दा।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 30)

भावें जान न जान वे

प्रेमिका (शिष्य) कहती है कि मेरा प्यारा (सतगुरु) मेरे हृदय की वेदना समझे या न समझे पर मुझसे दूर न जाये। वह कहती है कि मेरे लिये

---

1. भरवासा=विश्वास, अशनई=प्रीति, प्रेम; बाबा फ़रीद ने भी कहा है : 'जे जाणा सहु नढड़ा थोड़ा माण करी।'

2. निगलाइउ=निगल जाना, पूरा का पूरा हड़प जाना; बहुत-से प्रेमियों का वर्णन करते हैं जिनको इश्क के कारण अनेक कष्ट सहन करने पड़े। इसी भाव से सम्बन्धित काफ़ी देखें : 'रहु रहु वे इश्का मारिआ ई।'

3. कलबत्तर=करवत, आरा; जुनार=यज्ञोपवीत; पोश=पोस्त, खाल।

4. पैगम्बर द्वारा इलाही नूर का ज़हूर किया और इमाम का नाम हुसैन रखवाया। उसको जबराइल फ़रिश्ते ने झूला झुलाया, परन्तु फिर उसी हुसैन को प्यासा रख कर उसका वध कराया।

5. पहले ज़करीए को पेड़ में छिपने की प्रेरणा दी, फिर उस पेड़ को ज़करीए सहित आरे से चिरवा दिया।

6. यय्या को प्रभु का मित्र कहा गया। उसने प्रभु से प्रेम किया। उसने कर्म-काण्ड (शरां) का मार्ग बताया परन्तु उसका सिर भी काट दिया गया।

तेरे जैसा और कोई नहीं है। इसलिये मैं हर जगह तेरी तलाश कर रही हूँ। लोग रांझा को भैंसें चराने वाला चरवाहा (चाक) कहते हैं परन्तु वह मेरा धर्म और ईमान है। मैंने अपना सबकुछ त्याग कर अपने प्रियतम से नेह लगाया है। उससे विनती है कि वह अपनी लाज रख ले :

भावें जान न जान वे, विहड़े आ वड़ मेरे।
मैं तेरे कुरबान वे, विहड़े आ वड़ मेरे।
तेरे जिहा मैनूं होर न कोई, ढूंडां जंगल बेला रोही।
ढूंडां तां सारा जहान वे, विहड़े आ वड़ मेरे।
लोकां दे भाणे चाक महीं दा, रांझा तां लोकां विच कहीदा[1]।
साडा तां दीन ईमान वे, विहड़े आ वड़ मेरे।
मापे छोड़ लग्गी लड़ तेरे, शाह अनाइत साईं मेरे।
लाइआं दी लज्ज पाल वे, विहड़े आ वड़ मेरे[2]।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 32)

भैणां मैं कतदी कतदी हुट्टी

बिना प्रेम के भजन-सुमिरन का चरखा कातते हुए जीवात्मा कई बार उकता जाती है। प्रेम-विहीन करनी से न रस मिलता है और न कोई लाभ होता है। मन में दयालु प्रभु का प्रेम पैदा करने के लिये भक्ति की जाती है। इस प्रेम के बिना भक्ति रूपी चरखे का टूट जाना भला है। परन्तु जब हृदय में प्रेम की मस्ती छा जाती है (प्रेम कटोरी मुट्ठी) तो आत्मा अपने आप प्रियतम की ओर खिंची चली जाती है। आवश्यकता रूहानी अभ्यास के त्याग की नहीं बल्कि इस अभ्यास में प्रेम, विरह व तड़प का रंग भरने की है :

भैणां मैं कतदी कतदी हुट्टी[3]।
पच्छी पड़ी पिछवाड़े रहि गई, हत्थ विच रहि रहि जुट्टी[4]।

---

1. चाक=चरवाहा, पशु चराने वाला; रांझा=हीर सियाल उच्च कुल की थी और धीदो राँझों में से था, जिनको सियालों में नीचा माना जाता है।

2. मैं अपना दीन, धर्म, वंश, परिवार छोड़ कर तेरी शरण में आई हूँ। मेरे सतगुरु अनायत शाह, तू मुझ शरण में आई की, लाज रख ले।

3. मैं भक्ति का सूत कातती हुई थक गई।

4. पच्छी=पूनियों की टोकरी; पड़ी=छोटी पिटारी; जुट्टी=पूनियों का जोड़ा।

अग्गे चरखा पिच्छे पीहड़ा, मेरे हत्थों तंद तरुट्टी।
भौंदा भौंदा ऊरा डिग्गा, चंब उलझी तंद टुट्टी[1]।
भला होया मेरा चरखा टुट्टा, मेरी जिंद अज़ाबों छुट्टी।
दाज दहेज नूं उसकी करना, जिस प्रेम कटोरी मुट्ठी[2]।
बुल्ला शौह ने नाच नचाए, धुंम पई कड़ कुट्टी[3]।

(नज़ीर अहमद : **'कलाम बुल्लेशाह'**, 20)

मन अटकिउ शाम सुंदर सों

इस काफ़ी में भी अद्वैत और प्रभु की सर्वव्यापकता का भाव प्रकट किया गया है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि जिसे सत्य का ज्ञान हो जाता है, वह द्वैत के भ्रम से सदा के लिये मुक्त हो जाता है :

मन अटकिउ शाम सुंदर सों[4]। टेक।
कहूं वेखूं बाहमण कहूं शेखा, आप आप करन सभ लेखा[5]।
क्या क्या खेलिआ हुनर सौं, मन अटकिओ शाम सुंदर सों[6]।
सूझ पड़ी तब राम दुहाई, हम तुम एक न दूजा काई[7]।
इस प्रेम नगर के घर सों, मन अटकिओ शाम सुंदर सों।
पंडित कौन कित लिख सुनाए, न कहीं जाए न कहीं आए।

---

1. ऊरा=जिस पर सूत की तंद लपेटी जाती है; चंब=तकले को सहारा देने वाली चमड़ियाँ।

2. जिसने प्रेम का प्याला हाथ (मुट्ठी) में ले लिया, उसे अन्य किसी प्रकार की करनी की आवश्यकता न रही।

3. प्रियतम ने मुझे प्रेम का नाच नचाया। मैं इस प्रकार खुल कर नाची कि हर ओर मेरे नाच की धूम मच गई।

4. मेरा मन प्रियतम (श्यामसुन्दर) के प्यार में लीन हो गया।

5. शेखा=शेख अर्थात् मुसलमान; वह प्यारा स्वयं ही हिन्दू है, स्वयं ही मुसलमान।

6. वह कला (हुनर) या चतुराई से अनेक रूपों में खेल रहा है।

7. प्रेम नगर में पहुँच कर इस सत्य का ज्ञान हुआ तो पता चला कि प्रियतम (परमात्मा) और प्रेमिका (आत्मा) भी एक हैं।

जैसे गुर का कंगण कर सों[1], मन अटकिओ शाम सुंदर सों।
बुल्ला शहु दी पैरीं पड़ीए, सीस काट कर अग्गे धरीए।
हुन मैं हरि देखा हर हर सों[2], मन अटकिओ शाम सुंदर सों।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 112)

मुंह आई बात न रहिंदी ए

इस काफ़ी में बुल्लेशाह कहते हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त सत्य को प्रकट करने के लिये विवश होते हैं परन्तु संसार इस सत्य को सहन नहीं कर पाता। आप कहते हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त अपने अन्तर में उसकी खोज करते हैं, परन्तु दुनिया के मूर्ख लोग बाहर ही भटकते रहते हैं। जो अन्दर जाते हैं उन्हें पता चल जाता है कि सारा संसार एक ही प्रभु का प्रसार है और विविध रूपों में वह प्रभु समाया हुआ है। आप कहते हैं कि यदि मैं अद्वैत के सत्य को प्रकट कर दूँ तो संसार के द्वैत के सारे झगड़े दूर हो जायें। परन्तु सम्भव है कि लोग ऐसा करने पर मुझे जान से मार दें। काफ़ी के अन्त में संकेत करते हैं कि प्रभु के बिना अन्य कुछ नहीं है परन्तु उसको देखने वाले लोग आन्तरिक नेत्र न होने के कारण उसके वियोग में दुःख उठा रहे हैं :

मुंह आई बात न रहिंदी ए[3]। टेक।
झूठ आखां ते कुझ बच्चदा ए, सच्च आखिआं भांबड़ मचदा ए[4]।
जी दोहां गल्लां तों जच्चदा ए, जच्च जच्च के जिहबा कहिंदी ए।
इक लाज़म बात अदब दी ए, सानूं बात मलूमी सभी दी ए।

---

1. कर=हाथ; जिस प्रकार गुरु का कंगन हाथ में रहता है।

2. मुझे हरएक में उस हरि का प्रकाश दिखाई देता है।

3. जिसके हृदय में प्रेम और वाहदत का जोर हो, वह हृदय की बात रोक नहीं सकता। देखिये पृ. 168.

4. झूठ कहूँ तो कुछ बात अनकही रह जाती है। सच कहूँ तो संसार में आग लगती है। दिल दोनों बातों से डरता है, परन्तु डरते-डरते भी सच मुँह से निकल रहा है। डॉ. नज़ीर अहमद ने पाठ इस प्रकार दिया है : 'झूठ आखिआं कुझ न बचदा ए'।

हर हर विच सूरत रब्ब दी ए, किते ज़ाहर किते छुपेंदी ए[1]।
जिस पाया भेत कलंदर दा, राह खोजिया अपने अंदर दा[2]।
ओह वासी है सुख मंदर दा, जित्थे चड़दी है न लहिंदी ए।
एथे दुनियां विच अन्हेरा ए, अते तिलकन बाज़ी विहड़ा ए।
वड़ अंदर वेखो किहड़ा ए, बाहर गफतन पई ढूंडेंदी ए[3]।
एथे लेखा पाउं पसारा ए, इहदा वखरा भेद न्यारा ए।
इक सुरत दा चमकारा ए, जिवें चिणग दारू विच पैंदी ए[4]।
किते नाज़-अदा दिखलाई दा, किते हो रसूल मिलाई दा[5]।
किते आशिक बन बन आई दा, किते जान जुदाईआं सहिंदी ए।
जदों जाहर होए नूर हुरी, जल गए पहाड़ कोह-तूर हुरीं।
तदों दार चढ़े मनसूर हुरीं, ओथे शेखी मैंडी न तैंडी ए[6]।
जे जाहर करां असरार ताईं, सभ भुल्ल जावण तकरार ताईं[7]।

---

1. सत्य तो यह है कि हर शरीर में उस परमात्मा की सूरत समाई हुई है, कहीं गुप्त रूप में और कहीं प्रकट रूप में।

2. कलंदर=जो बन्दर को नचाता है अर्थात् मन को वश में करने वाले फ़कीरों की रमज़ समझने वाले लोग अपने अन्दर हकीकत की तलाश करते हैं। उसको सुख-मन्दिर अर्थात् अजर, अमर, आनन्द के देश की प्राप्ति हो जाती है जो कमी-अधिक और उतार-चढ़ाव से परे हैं।

3. जो बाहर खोज करते हैं, कीचड़ में फँस जाते हैं और मंज़िल पर नहीं पहुँच सकते। वास्तविकता का ज्ञान अन्दर खोजने वालों को ही होता है। ख़फ़तण=बाहर ढूँढने वाले मूर्ख (अज्ञानवश) कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। डॉ. नज़ीर अमहद ने ख़फ़तण के स्थान पर 'खलकत' पाठ दिया है जो अधिक स्वाभाविक लगता है।

4. लेखा पाउं पसारा ए=परमात्मा ने संसार की रचना रची है। जिस प्रकार बारूद (दारू) में चिनगारी लगाई जाये तो धमाका भी होता है और आग भी निकलती है, उसी प्रकार यह जगत एक इलाही सूरत का चमत्कार है।

5. कहीं तू अपनी दया और शान (नाज़ निआज़) प्रकट करता है; फिर कहीं रसूल बन कर तू आत्मा को परमात्मा से मिलाता है, कहीं तू स्वयं अपना प्रेमी बन कर आ जाता है और स्वयं ही अपने हिज्र में तड़पता है। आप हमाओस्त का भाव प्रकट कर रहे हैं।

6. मैंडी-तैंडी=मेरी या तेरी शेखी नहीं चल सकती।

7. असरार=भेद; ज़ाहर=प्रकट; तकरार=झगड़ा, मखफी=उलझी; देखिये : पृ. 168.

फिर मारन बुल्ले यार ताईं, ऐथे मख़फ़ी गल्ल सोहेंदी ए।
असां पढ़िआ इलम तहिकीकी ए, ओथे इक्को हरफ हकीकी ए[1]।
होर झगड़ा सभ वधीकी ए, ऐवें रौला पा पा बहिंदी ए।
बुल्ला शहु असां थीं वख नहीं, बिन शहु थीं दूजा कख नहीं।
पर वेखन वाली अख्ख नहीं, ताहीं जान पई दुख सहिंदी ए।

(अनवर अली रोहतकी : 'कानूने इश्क', 70)

मुरली बाज उठी अनघातां

इस काफ़ी में अनहद शब्द की मुरली की महिमा कही गई है। आप कहते हैं कि मेरे अन्तर में अनहद शब्द की बाँसुरी अपने आप बज रही है। उसकी तान सुन कर मुझे संसार की सुध-बुध भूल गई है। अनहद शब्द के ऐसे विचित्र तीर हृदय में लगे हैं कि संसार के आडम्बर नाशवान प्रतीत होने लगे हैं। अब केवल उस प्रियतम का मुख देखने की लालसा रह गई है। मन चंचल मृग जो किसी तरह वश में नहीं आता था अब स्थिर हो गया है। आप कहते हैं कि जो व्यक्ति अनहद शब्द रूपी कलमे में लीन हो जाता है, पैगम्बर उसके अन्दर दैवी गुण भर देते हैं। काफ़ी के अन्त में वे कहते हैं कि मैं उस प्रभु (कान्ह) द्वारा बजाई जा रही अनहद शब्द की बाँसुरी सुन कर (बेचैन) हो गई हूँ (मैं बावरी बनी हुई विवश उस प्रियतम की ओर खिंची चली आ रही हूँ। विस्तार के लिये पृष्ठ 118 देखिये) :

मुरली बाज उठी अनघातां[2], सुन के भुल्ल गइआं सभ बातां। टेक।
लग्ग गए अनहद बान न्यारे, झूठी दुनिया कूड़ पसारे।
साईं मुख वेखण वणजारे[3], मैनूं भुल्ल गइआं सभ बातां।
हुन मैं चंचल मिरग फहाया, ओसे मैनूं बन्ह बहाया।
सिरफ़ दुगाना इश्क पढ़ाया, रहि गइआं त्रै चार रकातां[4]।

---

1. हरफ हकीकी=सच का कलमा या शब्द; इलमे तहिकीकी=खोज द्वारा प्राप्त किया ज्ञान। मैं केवल इस ज्ञान तक पहुँचा हूँ कि वाहदत सच है और द्वैत का झगड़ा व्यर्थ है।

2. अनघातां=अचानक 3. हम केवल प्रियतम के दर्शन करने के ग्राहक थे 4. इसने मुझे प्रेम का गीत पढ़ाया है जो मैंने सारा पढ़ लिया है, केवल थोड़ा ही शेष है : 'रहि गइआं त्रै चार रकातां।'

बूहे आन खलोता यार, बाबल पुज्ज पिआ तकरार[1]।
कलमे नाल जे रहे विहार, नबी मुहम्मद भरे सफातां[2]।
बुल्ले शाह मैं हुन बरलाई[3], जद दी मुरली काहन बजाई।
बावरी हो तुसां वल धाई, खोजीआं कित वल दसत बरातां[4]।

(फ़क़ीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 110)

मेरी बुक्कल दे विच चोर

साईं बुल्लेशाह प्रेम से उस प्रभु को 'बुक्कल का चोर' कहते हैं। वह चित्तचोर कहीं बाहर नहीं है अन्दर ही बैठा है। आप कहते हैं कि मुसलमान शव के जलाये जाने से और हिन्दू कब्र में दफनाये जाने से डरते हैं। हिन्दू स्वयं को रामदास और मुसलमान फतेह मुहम्मद कहलाते हैं परन्तु जो व्यक्ति अन्तर में उस प्रभु के दर्शन कर लेता है उसके लिये ये सब झगड़े व्यर्थ हो जाते हैं। वह हृदय के प्रकाशमय आकाश में पहुँच कर अनहद शब्द की मीठी ध्वनियाँ सुनने लगता है। उसे पता चल जाता है कि वह जो कुछ कर रहा है, वह प्यारा प्रियतम कर रहा है।

आप इस काफ़ी में यह भी संकेत करते हैं कि हमारे कादरी सम्प्रदाय का प्रथम सतगुरु पीर दस्तगीर, जिसे पीरों का पीर कहा जाता है, बगदाद का रहने वाला था परन्तु मेरा मुर्शिद अनायत शाह लाहौर का रहने वाला है। उसने स्वयं ही मेरे अन्तर में अपनी प्रीति पैदा की है और स्वयं ही मुझे अपनी ओर खींच रहा है।

मेरी बुक्कल दे विच चोर नी, मेरी बुक्कल दे विच चोर[5]। टेक।
कीहनूं कूक सुनावां नी, मेरी बुक्कल दे विच चोर।
चोरी चोरी निकल गया, जग विच पै गया शोर[1]।

---

1. तकरार=झगड़ा; अन्दर प्रियतम प्रकट हो गया है। संसार का सारा झगड़ा समाप्त हो गया है 2. सफातां=जो इस अनहद शब्द या कलमे में समाया रहता है, उसमें पैगम्बर दैवी गुण भर देते हैं 3. व्याकुल हो गई 4. दसत=हाथ; बरातां=दात, वरदान; मैं प्रियतम का वरदान भरा हाथ और खुशी भरा मार्ग खोज रही हूँ 5. वह प्रियतम मेरे अन्दर रहता है।

मुसलमान सड़ने तों डरदे, हिंदू डरदे गोर[2]।
दोवें एसे दे विच मरदे, इहो दोहां दी खोर[3]।
किते रामदास किते फतहि मुहम्मद, इहो कदीमी शोर[4]।
मिट गया दोहां दा झगड़ा, निकल पिआ कुझ होर[5]।
अरश-मनव्वर बागां मिलीआं, सुनीआं तखत लाहौर।
शाह अनाइत कुंडीयां पाईयां, लुक छुप खिचदा डोर।
जिस ढूंडिआ तिस ने पाया, न झुर झुर होया मोर[6]।
पीर-पीरां बग़दाद असाडा, मुरशद तखत लाहौर[7]।
इहो तुसी वी आखो सारे, आप गुड्डी आप डोर।
मैं दसनां तुसीं पकड़ लिआओ, बुल्ले शाह दा चोर।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 118)

मेरे घर आया पिया हमरा

इस काफ़ी में वे कहते हैं कि वह प्रियतम मेरे हृदय में प्रकट हो गया है। वहाँ से उसके अनहद शब्द की ध्वनि गूँजने लगी हैं। आप यह कहते हैं कि मेरे अन्दर लाहौर का तख़्त प्रकट हो गया है। आपका संकेत अन्तर में मुर्शिद के नूरी स्वरूप के प्रकट होने की ओर है। आप कहते हैं कि इससे मेरे मन की मलिनता का नाश हो गया है, हृदय को प्रेम की सच्ची

---

1. वह प्यारा जगत में अनेक रंग धारण कर लेता है, जिससे कई झगड़े शुरू हो जाते हैं।

2-3. गोर=कब्र; खोर=शत्रुता। हिन्दू और मुसलमान इस बात के लिये लड़ते-झगड़ते हैं कि मुर्दे को जलाना चाहिये या कि दफ़नाना।

4. कदीमी शोर=पुराना झगड़ा; कोई हिन्दुओं वाला नाम रखता है, कोई मुसलमानों वाला। यह मतभेद सदा से चल रहा है।

5. जब असलियत का पता चला अर्थात् उस परमात्मा को दोनों में बिराजमान देखा तो द्वैत का झगड़ा व्यर्थ बन गया।

6. 'झुर झुर होया मोर'=मोर की तरह आग्रह; जिसने प्रियतम की खोज की उसको प्राप्ति हो गई। उसको पश्चाताप में मोर की भाँति झुरना न पड़ा।

7. वाणी के पाठ के अधिक विस्तार के लिये देखिये पृ. 16.

चोट लगी है और मुझे प्रभु का सहारा मिला है। मेरे अहम् का नाश हो गया है, मुझे अपनी सुध-बुध भूल गई है और अद्भुत मस्ती का प्याला हाथ लग गया है। सच्ची बात तो यह है कि मुझे सारे संसार में उस प्रियतम का जलवा दिखाई देने लगता है और मेरी सब कामनाएँ पूरी हो गई हैं :

मेरे घर आया पिया हमरा। टेक।
वाह वाह वाहदत कीना शोर, अनहद बांसरी दी घंघोर[1]।
असां हुन पाया तखत लाहौर, मेरे घर आया पिया हमरा[2]।
जल गए मेरे खोट निखोट, लग गई प्रेम सच्चे दी चोट[3]।
हुन सानूं ओस खसम दी ओट, मेरे घर आया पिया हमरा।
हुन क्या कंने साल वसाल, लग गया मस्त प्याला हाथ[4]।
हुन मेरी भुल गई ज़ात सफात, मेरे घर आया पिया हमरा।
हुन क्या कीने बीस पचास, प्रीतम पाई असां वल झात[5]।
हुन सानूं सभ जग दिसदा लाल, मेरे घर आया पिया हमरा।
हुन सानूं आस दी फास, बुल्ला शहु आया हमरे पास।
साईं पुजाई साडी आस, मेरे घर आया पिया हमरा[6]।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 116)

---

1. मेरे अन्दर अनहद शब्द की बाँसुरी की ध्वनि सुनाई दे रही है। यह ध्वनि परमात्मा का डंका बजा रही है। यह ध्वनि सबमें समाई हुई है।

2. बुल्लेशाह के सतगुरु हज़रत अनायत शाह लाहौर के रहने वाले थे। यहाँ संकेत सतगुरु के अन्दर प्रकट होने की ओर है। अनहद शब्द के अन्दर प्रकट होने के बाद सतगुरु का नूरी स्वरूप प्रकट हो जाता है।

3. मेरे कर्मों का नाश हो गया। अन्दर सच्चा प्रेम जाग उठा और सच्चे प्रियतम का सहारा (ओट) मिल गया।

4. मुझे (शब्द की) मस्ती का प्याला मिल गया है। मिलाप के लिये प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं रही। मेरा पृथक अस्तित्व और पृथक गुण (ज़ात, सिफ़ात) समाप्त हो गये हैं और मैं प्रियतम में समा कर उसका रूप हो गई हूँ।

5. विरह की सब गिनतियाँ समाप्त हो गई हैं। सारा संसार उस प्रियतम (लाल) का ही रूप दिखाई देने लगा है।

6. मालिक ने मेरी आशा व मुराद पूरी कर दी है।

मैं उडीकां कर रही

इस काफ़ी में सतगुरु की प्रतीक्षा का भावमय वर्णन किया गया है। कवि विरहिणी बन कर कहता है : मेरे प्रियतम, मैंने तेरे मार्ग में अपने नयन बिछा लिये हैं और हृदय को शैय्या बना लिया है। तू आकर मुझे अपने दर्शन से कृतार्थ कर। मैं तेरी दासी हूँ। तेरे बिना मेरा कोई नहीं है। तू मेरा दिल न तोड़। मैं स्थान-स्थान पर तुझे ढूँढ रही हूँ। मुझे वह सन्देशवाहक नहीं मिल रहा जो तुझ तक मेरा सन्देश पहुँचा दे। जब से मैं प्रेम की डोली में चढ़ी हूँ मेरा दिल धड़क रहा है। मैं तुमसे मिलने के लिये व्याकुल हूँ। हाजी लोग मक्के के हज के लिये जाते हैं परन्तु मेरे हृदय में तेरे सलोने मुख को देखने की अभिलाषा है। क्या तेरा दिल पत्थर का हो चुका है कि उस पर मेरी आहों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। तेरे योगी के रूप ने मुझे घायल कर दिया है और दुःखों के काँटों ने चारों ओर से मुझे घेर लिया है। प्रेम का पथ कठिन है। इसका फासला तय नहीं हो पा रहा और मैं निरन्तर प्रियतम की प्रतीक्षा में खड़ी हूँ :

मै उडीकां कर रही, कदी आ कर फेरा। टेक।
मैं जो तेनूं आखिया, कोई घल सुनेहुड़ा।
चशमां सेज विछाईआं दिल कीता डेरा[1]।
लटक चलंदा आंवदा शाह अनाइत मेरा।
ओह अजिहा कौण है जा आखे जिहड़ा।
मैं विच की तकसीर है मैं बरदा तेरा[2]।
तैं बाझों मेरा कौन है दिल ढाह न मेरा।
ढूंढ शहिर सभ भालिआ कासद घल्लां किहड़ा[3]।
चढ़िआं डोली प्रेम दी दिल धड़के मेरा।
आओ अनाइत कादरी जी चाहे मेरा।

---

1. तेरे लिये आँखों (चशमा) की सेज बिछाई है 2. तकसीर=भूल, गलती; बरदा=गुलाम 3. कासद=सन्देश ले जाने वाला मण्डलों से।

पहिली पउड़ी प्रेम दी पुल-सराते डेरा[1]।
हाजी मक्के हज करन, मैं मुख वेखां तेरा[2]।
आ अनाइत कादरी हत्थ पकड़ीं मेरा[3]।
जल बल आहीं मारीआं दिल पत्थर तेरा।
पा के कुंडी प्रेम दी दिल खिचिओ मेरा।
मैं विच कोई न आ पीआ विच परदा तेरा[4]।
दसत कंगण बाहीं चूड़ीयां गल नौरंग चोला[5]।
रांझन मैनूं कर गया कोई रावल-रौला[6]।
आन नवें दुख पै गए कोई सूलां दा घेरा[7]।
मैं जाता दुख मैनूं आहा दुख पए घर सईआं।
सिर सिर भांबड़ भड़किआ सभ तपदीआं गईआं[8]।
हुन आन बनी सिर सभ चुक गया झेड़ा[9]।
जिहड़ीआं साहवरे मंनीआं सोई पेके होवन[10]।
शहु जिन्हां ते माइल ए चढ़ सेजे सोवन[11]।

---

1. पुल-सराते=मुसलमानों का विश्वास है कि अन्दर ऊपर के रूहानी मार्ग में पहले एक सुक्ष्म पुल है जिसके नीचे भयानक अग्नि जल रही है। यह पुल बाल से भी बारीक है। परमात्मा की भक्ति करने वाले नेक लोग बिजली की तेजी से इस पुल को पार कर जाते हैं, परन्तु पापी जीवों का पैर फिसल जाता है और वे नरक की आग में गिर जाते हैं। बाबा फ़रीद ने भी लिखा है कि जिस पुल से जीव को गुजरना पड़ता है, वह बाल से भी बारीक है : 'वालहु निकी पुरसलात कंनी ना सुणीआहि।' (आदि ग्रन्थ, पृ. 1377)। पुल-सराते=पुल सरात। साईं बुल्लेशाह समझाते हैं कि परमात्मा के सच्चे प्रेमी की पहली रूहानी मंज़िल पुल-सरात को पार करके आती है।

2. आत्मा के नौ द्वारों से सिमट कर अन्दर दसवीं गली में जाने को हज कह रहे हैं। देखिये पृ. 100-101.

3. साधक आन्तरिक रूहानी सफ़र सतगुरु की बांह पकड़ कर पार करता है।

4. तुम्हारे द्वारा ताने गये परदे के बिना मुझे तुझसे दूर रखने वाली कोई वस्तु नहीं 5. परमात्मा के सतगुरु रूप धारण करके देह-स्वरूप में प्रकट होने की ओर संकेत कर रहे हैं 6. रांझा ने मुझ भरमा लिया 7. नवें=अधिक, सूलां=दुःख। 8-11. तपदीआं=जलती हुई अर्थात् दुखी; झेड़ा=झगड़ा, मंनीआं=परवान; माइल=दयाल, प्रसन्न।

जिस घर कौंत न बोलिया सोई खाली वेढ़ा[1]।
बुल्ला शहु दे वासते दिल भड़कन भाहीं[2]।
औखा पैंडा प्रेम दा सो घटता नाहीं।
दिल विच धक्के झेड़दे सिर धाईं बेड़ा।
मैं उडीकां कर रही कदी आ कर फेरा।

(अनवर अली रोहतकी : 'कानूने इस्क', 16)

मैं क्योंकर जावां काअबे नूं

इस काफ़ी में बुल्लेशाह बाहर के तीर्थ-स्थानों पर प्रभु की खोज करने को व्यर्थ बताते हैं। आप कहते हैं कि मैं काअबे को नहीं, तख़्त हज़ारे को जाना चाहता हूँ। तख़्त हज़ारे से आपका अभिप्राय प्रभु के निज-धाम की ओर भी समझा जा सकता है और मुर्शिद अनायत शाह की संगति की ओर भी। आप कहते हैं कि लोग काबा में जाकर सिजदा करते हैं पर मैं मुर्शिद की हुज़ूरी में सिजदा करना चाहता हूँ।

आप प्रभु को याद दिलाते हैं कि तूने हमें सृष्टि में भेजते समय वचन दिया था कि मैं तुम्हें वापस धुरधाम लाने के लिये स्वयं जगत में आऊँगा। अब तू मेरे अवगुणों की ओर मत देख बल्कि अपने वचन का पालन कर। मुझे तैरना नहीं आता। यदि मैं भवसागर में डूब जाऊँ तो लज्जा तुझे आयेगी। मैंने सारा संसार ढूँढ कर देखा है। तेरे जैसा और कोई नहीं है। तू भी अनोखा है और तेरी प्रीति भी अनोखी है। तू ही मुझ जैसे पापी को भवसागर से पार कर सकता है :

मैं क्योंकर जावां काअबे नूं, दिल लोचे तखत हज़ारे नूं[3]। टेक।
लोकी सजदा काअबे नूं करदे, साडा सजदा यार प्यारे नूं[4]।
अवगुण वेख न भुल्ला मीआं रांझा, याद करीं उस कारे नूं।
मैं अनतारू तरन न जानां, शरम पई तुध तारे नूं[5]।

1-2. कौंत=कन्त, भाहीं=अग्नियाँ 3-4. काअबा=मक्का में मुस्लमानों का पूजा-स्थल, तख़त हज़ारा=रांझा का गाँव। आत्मा रूपी हीर कहती है कि मैं बाहरी पूजा स्थलों पर जाने के स्थान पर अन्दर प्रियतम के निज देश जाने और अन्दर इसके आगे सजदा (प्रणाम) करने के लिये व्याकुल हूँ 5. यदि मैं भवसागर में डूब गई तो तुझे लाज आयेगी।

तेरा सानी कोई नहीं मिलिआ, ढूंढ लिआ जग सारे नूं[1]।
बुल्ला शहु दी प्रीति अनोखी तारे अवगुणहारे नूं[2]।
(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 125)

मैं कुसुंबड़ा चुन-चुन हारी

इस काफ़ी में मायावी जगत को 'कुसुंबड़े का बाग' कहा गया है। कुसुंवड़े के फूल देखने में सुन्दर प्रतीत होते हैं परन्तु इनका रंग कच्चा होता है और इनके काँटे जलन पैदा करने वाले होते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि समझदार लोग कुसुंबड़े की कुछ 'फुहियाँ' चुनते हैं परन्तु मैं ऐसा अज्ञानी हूँ जिसने इसका बहुत बड़ा ढेर इकट्ठा कर लिया है। आपका भाव यह है कि जितना अधिक जीव मायावी पदार्थों में लिप्त होता है उतनी ही उसके दु:खों की गठरी भारी होती जाती है। आप काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि मैं तो कमीनी, कुरूप और अवगुणों से भरी थी। मैं किसी तरह भी प्रियतम से मिलने के योग्य नहीं थी परन्तु मेरे सतगुरु अनायत शाह ने मुझ पर दया करके मुझे भवसागर से पार कर दिया :

मैं कुसुंबड़ा चुन-चुन हारी[3]। टेक।
एस कुसुंबे दे कंडे भलेरे अड़ अड़ चुनड़ी पाड़ी[4]।
एस कुसुंबे दा हाकम करड़ा ज़ालम ए पटवारी।
एस कुसुंबे दे चार मुकद्दम मुआमला मंगदे भारी[5]।
होरनां चुगिया फुहिया फुहिआ मैं भर लई पटारी[6]।
चुग चुग के मैं ढेरी कीता लत्थे आन बपारी[7]।

---

1. सानी=बराबरी करने वाला।

2. वह प्रियतम पापियों को तारने वाला है।

3-4. देखिये : पृ. 40.

5. संसार रूपी कुसुंबड़े के बाग का शासक (काल) बहुत निर्दयी है। उसका पटवारी (मन) भी बहुत निर्दयी है। चार मुकद्दम=यहाँ मन के विकारों—काम, क्रोध आदि की ओर संकेत है।

6. फुहिआ-फुहिआ=थोड़ा-थोड़ा। समझदार लोग माया में लीन न हुए, परन्तु मैं माया की ही होकर रह गई।

7. बपारी=धर्मराज के दूत। जब धर्मराज के दूतों ने लेखा माँगा तो कर्मों का भारी ऋण सिर पर निकला।

औखी घाटी मुशकल पैंडा, सिर पर गठड़ी भारी।
अमलां वालीयां सभ लंघ गईआं, रहि गई औगुणहारी[1]।
सारी उमरा खेड गवाई ओड़क बाज़ी हारी।
अलसत किहा जद अखियां लाईआं, हुन क्यों यार विसारी[2]।
इक्को घर विच वसदिआं रसदिआं, हुन क्यों रही न्यारी।
मैं कमीनी कुचज्जी, कोहजी, बेगुन कौन बिचारी।
बुल्ला शहु दे लाइक नाहीं, शाह अनाइत तारी।

(फ़कीर मुहम्मदः 'कुल्लियात', 126)

मैं गल्ल ओथे दी करदा हां

इस काफ़ी में साईं जी कहते हैं कि मैं संकोच के साथ प्रभु के देश का एक रहस्य खोलने को विवश हूँ। आप कहते हैं कि जब परमात्मा ने सृष्टि की रचना की तो आत्माओं को यह कह कर संसार में भेजा कि मैं तुम्हें वापस मुकामे हक में लाने के लिये संसार में स्वयं आऊँगा। परमात्मा यहाँ आता है तो शरीर का परदा रख लेता है, जिस कारण जीवों को उसे पहचानने में भ्रम लग जाता है।

आप कहते हैं कि परमात्मा की खोज में मेरा बलवान हाकिम से वास्ता है। यदि मीरी हो जाऊँ अर्थात् जीत जाऊँ तो भी फाड़ी, भाव हारा हुआ गिना जाता हूँ। परमात्मा द्वारा दी गई पूंजी या सम्पत्ति मेरे पास व्यर्थ पड़ी है और मैं किये हुए कर्मों का लेखा भोग रहा हूँ। पहले मैं पूँजी चोरों (विषयों-विकारों) को दे देता हूँ, फिर मूर्खों की भाँति पश्चाताप करता हूँ और चोरों की खोज करता हूँ, अर्थात् उन्हें पकड़ने का प्रयत्न करता हूँ। मेरा दुर्भाग्य है कि वह प्रियतम न मेरे साथ खुश होता है, न ही मेरी प्रार्थना मानता है। उसकी ओर मुँह करूँ तो वह मुझसे दूर भागता है। फिर भी मैं

---

1. जिन्होंने भक्ति की पूँजी इकट्ठी की, वे झटपट पार हो गये। जिन्होंने सारी आयु मायावी खेलों में गुज़ारी, वे बाजी हार गये।

2. यह विवरण कुरान शरीफ़ से है। परमात्मा को कहते हैं कि तू सृष्टि रचे जाने के समय ही हमारा महबूब बन गया था तो अब हमारी सार नहीं लेता ? अन्दर रहता हुआ भी हमें अपने से दूर क्यों रखता है ?

उसके सामने मिन्नतें करने को विवश हूँ। मुझे इस संसार में आकर कुछ भी नहीं मिला। परमात्मा और उसकी रचना बेअन्त है। इसके न इधर के किनारे का पता लगता है न उधर के भवसागर के बहाव में मेरे पाँव नहीं जमते और मैं बुरी तरह डुबकियाँ खाता हुआ बहता जा रहा हूँ :

मै गल्ल ओथे दी करदा हां, पर गल करदा वी डरदा हां। टेक।
नाल रूहां दे लारा लाया, तुसीं चलो मैं नाले आया[1]।
एथे परदा चा बनाया, मैं भरम भुलाया फिरदा हां।
नाल हाकम दे खेल असाडी, जे मैं मीरीं तां मैं फाडी।
धरी धराई पूंजी तुहाडी, मैं अगला लेखा भरदा हां।
दे पूंजी मूरख झुंजलाया, मगर चोरां दे पैड़ा लाया।
चोरां दी मैं पैड़ लिआया, हर शब धाड़े धड़दा हां[2]।
न नाल मेरे ओह रजदा ए, न मिन्नत कीती सजदा ए।
जां मुड़ बैठां तां भजदा ए, मुड़ मिन्नत ज़ारी करदा हां।
की सुख पाया मैं आन इत्थे, न मंजल न डेरे जित्थे[3]।
घंटा कूच सुनावां कित्थे, नित ऊठ कचावे कड़दा हां[4]।
बुल्लेशाह बेअंत डूंघाई, दे जग बीच न लगदी काई।
उरार पार दी खबर न काई, मैं बे सिर पैरीं तरदा हां।
मैं गल्ल ओथे दी करदा हां, पर गल्ल करदा वी डरदा हां।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 132)

मै चूढ़ेटड़ी आं

इस काफ़ी में नम्रतावश अपने आपको प्रभु के दरबार की 'चूढ़ेटड़ी' (मेहतरानी) कहते हैं। आप कहते हैं कि ध्यान की छजली और ज्ञान के

---

1. देखिये पृ. 55 2. धाड़े धड़ना=चोरों के वार रोकना, मैंने चोरों की खोज कर ली है और हर रात उनके वार रोकता हूँ।

3. यहाँ न मंज़िल है न रहने का ठिकाना। अर्थात् यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं, इसलिये मैं जब से संसार में आया हूँ मुझे कभी सच्चा सुख नहीं मिला।

4. मैं संसार से कूच करने का घण्टा कहाँ बजाऊँ ? मैं प्रतिदिन ऊँट की काठी (कचावे) की भाँति कसा रहता हूँ।

झाड़ू से विषयों-विकारों का कूड़ा-कर्कट अपने अन्तर से बाहर फेंकने की कोशिश करती हूँ। मैं बेगार से मुक्त हो गई हूँ। भाव यह है कि इन्द्रियों के भोगों और सांसारिक धन्धों में फँसा जीव मन और काल का बेगारी है। परन्तु सुमिरन और ध्यान (ज्ञान, ध्यान)में लगे जीव अपना असली काम कर रहें हैं। आप संकेत कर रहे हैं कि मैं मन और काल का काम करने के स्थान पर कुल मालिक का काम कर रही हूँ अर्थात् विषयों-विकारों को त्याग कर मालिक की बन्दगी में लग गई हूँ। तेरे बिना कोई मेरा अपना नहीं है। मैं किस के पास दया और सहायता के लिये पुकार करूँ। तू ही दया करके मुझे अपने दर्शन दे :

मैं चूढ़ेटड़ी आं सच्चे साहिब दी सरकारों। टेक।
ध्यान दी छज्जली ज्ञान का झाड़ू, काम क्रोध नित झाड़ूं[1]।
मैं चूढ़ेटड़ी आं सच्चे साहिब दी सरकारों।
काज़ी जाने हाकम जाने फ़ारग़खती बेगारों[2]।
दिने रात मैं एहो मंगदी दूर न कर दरबारों।
तुध बाझों मेरा होर न कोई, कैं वल्ल करूं पुकारों।
बुल्ला शहु अनाइत करके बखरा मिले दीदारों[3]।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 130)

मैं पुच्छा शहु दीआं वाटां नी

इस काफ़ी में कहते हैं कि प्रभु-मिलन के इच्छुक व्यक्ति को पता होना चाहिये कि वह प्रियतम स्वयं उसके अन्दर बैठा है परन्तु अहम् में फँसा हुआ जीव उसको देख नहीं सकता। जीव को उसके नाम का सुमिरन करना चाहिये और रचना के प्रेम के स्थान पर रचनाकार से प्रेम करना चाहिये। मनुष्य के संकट का सबसे बड़ा कारण यह है कि वह भक्त बनने की बजाय भगवान बन बैठा है: 'बुल्ला रब्ब बन बैठों आपे, तद दुनिया दे पए सिआपे'। अहम् का त्याग करके ही मनुष्य इस संकट से मुक्त हो सकता है :

---

1. देखिये पृ. 93. 2. काज़ी=मन; हाकम=काल, फ़ारग़खती बेगारों=मैं बेगार से छूट गई हूँ 3. बखरा=भाग, अनायत शाह की शरण में आने के कारण मुझे तेरे दर्शनों का भाग मिल जाये।

मैं पुच्छां शहु दीआं वाटां नी, कोई करे असां नाल बातां नी[1]। टेक।
भुल्ले रहे नाम न जपिया, ग़फ़लत अंदर यार है छपिया[2]।
ओह सिधु पुरखा तेरे अंदर धसिया, लग्गियां नफ़स दीआं चाटां नी।
जप लै न हो भोली भाली, मत तूं सद्दएं मुख मुकाली[3]।
उलटी प्रेम नगर दी चाल, भड़कन इश्क दीआं लाटां नी।
भोली न हो हो सिआनी, इश्क नूर दा भर लै पानी।
इस दुनिया दी छोड़ कहानी, इह यार मिलन दीआं घातां नी[4]।
बुल्ला रब्ब बन बैठों आपे, तद दुनिया दे पए सिआपे[5]।
दूती विहड़े दुश्मन मापे, सब कड़क पईआं आफ़ातां नी[6]।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 133)

मैं विच मैं न रह गई

प्रस्तुत काफ़ी में यह भाव प्रकट करते हैं कि प्रभु का प्रेम सहज में अहम् भाव का नाश कर देता है। प्रियतम से मिलन होने पर अपनी सुध-बुध खो जाती है। यह गूंगे द्वारा गुड़ खाने की अवस्था है जो इसका स्वाद नहीं बता सकता। इस अवस्था में आँखें पल-पल प्रियतम का दर्शन करना चाहती है और उसको देख कर विस्मय में डूब जाती है।

इस बात के साथ-साथ काफ़ी में दो अन्य भाव भी प्रकट किये गए हैं। पहला यह कि प्रेम का मार्ग सरल या सुगम नहीं है। इसमें लोक-लाज

1-2. वाटां=रास्ते; ग़फ़लत=लापरवाही, अज्ञानता; सिधु पुरखा=पूर्ण पुरुष प्रभु; लग्गीआं नफ़स दीआं चाटां=परन्तु खुदी और विकारों के नशे (चाटां)के कारण वह अन्दर दिखाई नहीं देता।

3. अज्ञान छोड़ कर नाम जप ले। यह न हो कि तुझे मुकाल अर्थात् निर्लज कहा जाए।

4. संसार के व्यर्थ के धन्धे छोड़ दे। यह प्रियतम से मिलाप का अवसर है।

5-6. दूती=विरोधी; विहड़े=संसार के लोग; अफ़ातां=मुसीबतें। तू अहम् में फँस गई है। इसी कारण तू मन (माया) और विषयों-विकारों (विहड़े वालिआं) के प्रभाव के नीचे हैं।

को भी छोड़ना पड़ता है और हर प्रकार का त्याग करना पड़ता है। दूसरा भाव यह प्रकट किया गया है कि जिस आत्मा रूपी राँझा का प्यार प्रबल हो जाता है उसको अपने साथ मिलाने के लिये राँझा, योगी अर्थात् सतगुरु का रूप धारण करके स्वयं संसार में आता है :

मैं विच मैं न रह गई राई, जब की पिया संग प्रीत लगाई[1]।
जद वसल वसाल बनाएगा, तद गूंगे दा गुड़ खाएगा[2]।
सिर पैर न अपना पाएगा, मैं इह होर न किसे बनाई[3]।
होए नैन नैनां दे बरदे, दर्शन सै कोहां ते करदे[4]।
पल पल दौड़न मारे डर दे, तै कोई लालच घात भरमाई[5]।
हुन असां वहदत विच घर पाया, वासा हैरत दे संग आया[6]।
जीवन जंमण मरन वंजाइआ, आपनी सुध-बुध रही न काई[7]।
मैं जाता सी इश्क सुखाला, चहुँ नदीआं दा वहिण उछाला[8]।
कदी ते अग्ग भड़के कदी पाला, नित बिरहों अग्ग लगाई।
डउं डउं इश्क नक्कारे वजदे, आशिक वेख उत्ते वल भजदे।
तड़ तड़ तिड़क गए लड़ लज्ज दे, लग गया नेहुं तां शर्म सिधाई[9]।
प्यारे बस कर बहुती होई, तेरा इश्क मेरी दिलजोई।
तैं बिन मेरा सका न कोई, अँमा बाबल बहन न भाई।
कदी जा आसमानी बहिंदे हो, कदी इस जग दा दुख सहिंदे हो।
कदी पीरे-मुग़ां बन बहिंदे हो, मैं तां इकसे नाच नचाई[10]।
तेरे हिजरे विच मेरा हुजरा ए, दुख डाढा मैं पर गुज़रा ए[11]।

---

1. प्रियतम की प्रीति ने अहम् का नाश कर दिया 2-3. प्रियतम से मिलाप की अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। इस दशा में अपनी सुध-बुध नहीं रहती 4. बरदे=नौकर 5.'मारे डर दे' के स्थान पर पाठ 'मूल ना डरदे' मिलता है। घात=पाकर 6. वाहदत=अद्वैत; भाव परमात्मा से मिलाप हो गया; हैरत=हैरानी; यह अद्भुत अवस्था है 7. आवागमन का नाश हो गया 8. प्रेम चारों नदियों के बहने की तरह प्रबल है 9. प्रेम ने लोक-लाज समाप्त कर दी 10. पीरे-मुग़ां=साकी अर्थात् सतगुरु 11. हिजरे=हिजर अर्थात् वियोग; हुजरा=मन्दिर; मेरा ठिकाना तेरे हिजर में है अर्थात् मेरे अन्दर तेरा वियोग समा गया है।

कदे हो माइल मेरा मुज़रा ए, मैं तैथों घोल घुमाई[1]।
तुध कारन मैं ऐसा होया, नौ दरवाज़े बंद कर सोया।
दर दसवें ते आन खलोया, कदे मंन मेरी अशनाई[2]।
बुल्ला शहु मैं तेरे वारे हां, मुख वेखन दे वणजारे हां[3]।
कुझ असी वी तैनूं प्यारे हां, कि मैं ऐवें घोल घुमाई हां।

(फ़कीर मुहम्मद: 'कुल्लियात', 34)

मैं वैसां जोगी दे नाल

हीर का रांझा के साथ प्रेम था परन्तु मां-बाप ने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी सैदे खेड़े के साथ कर दी। हीर ने सैदे को अंगीकार नहीं किया और रांझा को सन्देश भेजा। रांझा योगी का वेष धारण करके खेड़ों के गाँव पहुँचा और वहाँ से हीर को लेकर चम्पत हो गया। यह प्रतीकमय वर्णन है। रांझा से भाव प्रभु, योगी से सतगुरु, खेड़े से मन और हीर से आत्मा है। इस काफ़ी में हीर कहती है कि मैं माथे पर प्रेम का तिलक लगा कर योगी के साथ जाऊँगी। मैं किसी के रोकने से रुक नहीं सकती। यह योगी नहीं है। यह मेरे मन का मीत है। खेद है कि मैने पहले से प्रेम क्यों न किया। अब उसका दर्शन करके मेरी सुध-बुध खो गई है। योगी ने प्रेम की मीठी बातें सुना कर मेरा मन हर लिया है। यह योगी स्वयं प्रभु का रूप है जिसने अनहद की मुरली के जादू से हीर का मन लूट लिया है।

हीर कहती है कि यह योगी केवल आज ही नहीं आया है। मूसा के साथ तूर पर्वत पर बातें करने वाला भी यही था, प्रभु का सन्देश-वाहक (आबदा रसूल)कहलाने वाला भी यही था, सोहनी को नदी में डुबोने वाला और महिवाल बन कर उससे स्नेह करने वाला भी वही था। इसी प्रकार जब खेड़े हीर से शादी करके उसे ले जाने लगे तो अपने सिर पर ढोल रख कर बजाने वाला भी वही था। यह बहुत सुन्दर संकेत है। इससे

---

1. माईल= दयालु; मुजरा=नाच अर्थात् बिनती।
2. अशनाई=प्रेम, देखिये : पृ. 92.
3. 'मैं ऐवें घोल घुमाई' का पाठ 'कि महीउं घोल गुमाई हां' भी मिलता है।

पता चलता है कि प्रभु किसी एक समय में नहीं बल्कि समय-समय पर सतगुरु का रूप धारण करके संसार में आता रहता है। साईं बुल्लेशाह ने कहीं सतगुरु को रांझा कहा है तो कहीं पुन्नूँ, महीवाल और ढोला कहा है। इसी तरह आपने उसको राम, कान्ह, ईसा और मुहम्मद भी कहा है। इसके साथ ही उसे मंसूर, ज़करीया, याय्या, शम्स तबरेज़ आदि का रूप धारण करके आने वाला भी कहा है। यह सब अलग-अलग देशों, राष्ट्रों, कालों और जातियों में हुए हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रभु के सतगुरु का रूप धारण करके आने को किसी विशेष समय, स्थान, राष्ट्र या जाति से नहीं बाँधा जा सकता। वह प्रभु जब चाहे और जहाँ चाहे प्रेमी आत्माओं को चिताने के लिये संसार में आ सकता है :

मैं वैसां जोगी दे नाल मत्थे तिलक लगा के[1]।
मैं वैसां न रहिसां होड़े, कौन कोई मैं जांदी नू मोड़े[2]।
मैनूं मुड़ना होया मुहाल, सिर ते मिहना चा के[3]।
जोगी नहीं इह दिल दा मीता, भुल गई मैं प्यार न कीता।
मैंनूं रही न कुझ संभाल, उस दा दर्शन पा के[4]।
एस जोगी मैंनूं कहीआं, हेठ कलेजे कुंडीआं पाईआं[5]।
इश्क दा पाया जाल, मिट्ठी बात सुना के[6]।
मैं जोगी नूं खूब पछाता, लोकां मैंनूं कमली जाता।
लुट्टी हीर झंग सिआल, कंर्नीं मुंदरां पा के।
जे जोगी घर आवे मेरे, मुक जावन सब झगड़े झेड़े।
लां सीने दे नाल, लख लख शगन मना के।
माए नी इक जोगी आया, दर साड़े उस धूआं पाया[7]।
मंगदा हीर सिआल, बैठा भेस वटा के।
ताअने न दे फुफ्फी ताई, एथे जोगी नूं किसमत लिआई।
हुन होया फ़जल कमाल, आया है जोग सिधा के[8]।

1-2. वैसां=जाऊँगी; न रहिसां=नहीं रहूँगी 3-4. मुहाल=मुश्किल, चा के=उठा कर, संभाल=होश 5-6. कुँडीआं-प्यार में फँसा लिया 7-8. द्वार पर धूनी रमाई: फ़ज़ल कमाल=पूर्ण दया; जोग सिधा के =पूर्ण योगी बन कर।

माही नहीं कोई नूर इलाही, अनहद दी जिस मुरली वाही।
मुठीउ सु हीर सिआल, डाहडे कामण पा के।
लख्खां गए हज़ारां आए, उस दे भेत किसे न पाए।
गल्लां तां मूसे नाल, पर कोह तूर चढ़ा के[1]।
आबदा रसूल कहाया, विच मअराज बुराक मंगाया[2]।
जबराईल पकड़ लै आया, हूरां मंगल गा के[3]।
एस जोगी दे सुनो अखाड़े, हसन-हुसैन नबी दे प्यारे[4]।
मारिओ सु विच जद्दाल, पानी बिन तरसा के[5]।
एस जोगी दी सुनो कहानी, सोहनी डूब्बी डूंघे पानी।
फिर रलिआ महींवाल, सारा रखत लुटा के[6]।
डावां डोली लै चल्ले खेड़े, मुढ कदीमी दुश्मन जिहड़े[7]।
रांझा तां होया नाल, सिर ते टंमक बजा के[8]।
जोगी नहीं कोई जादू साइआ, भर भर प्याला ज़ोक पिलाया[9]।
मैं पी पी होई निहाल, अंग विभूत रमा के।
जोगी नाल करेंदे झेड़े, केहे पा बैठे काजी घेरे[10]।
विच कैदो पाई मुकाल, कूड़ा दोष लगा के[11]।
बुल्ला मैं जोगी नाल विआही, लोकां कमलिआं खबर न काई।
मैं जोगी दा माल, पंजे पीर मना के[12]।

(फ़कीर मुहम्मद: 'कुल्लियात', 65)

1-3. परमात्मा ने मूसा से कोहतूर पर बातें की; आबदा रसूल=परमात्मा का सन्देश लाने वाला, मअराज=ऊपर की रूहानी चढ़ाई, बुराक=घोड़ा, जिस पर हज़रत मुहम्मद ने अन्दर सवारी की। यह सारा वर्णन सांकेतिक है, जबराईल=परमात्मा का पैगाम लाने वाला फ़रिश्ता, हूरां=परियाँ; मंगल गा=गीत गा कर; संकेत रूहानी मण्डलों के शब्द की ओर है 4-5. अखाड़े=लड़ाई के मैदान ; हसन, हुसैन=हज़रत मुहम्मद के क्षेत्र, मारिओ सु=उसको मार दिया; जद्दाल=युद्ध 6-8. रखत=दौलत, कदीमी=पुराने, टंमक=ढोल 9-11. साइआ=प्रेत, ज़ोक=शौक, प्रेम, विभूत=राख, कैदो=हीर का चाचा जिसने उसके विरुद्ध चुगली की थी, मुकाल=बदनामी, कूड़ा=झूठा 12. देखिये: पृ. 93 से 145.

रहु रहु वे इश्का मारिया ई

इस काफ़ी में परमात्मा और प्रेम को एक मान कर सम्बोधित किया गया है। आपने एक अन्य स्थान पर भी लिखा है: 'इश्क अल्ला दी ज़ात लोकां दा मिहणा।' यहाँ आप परमात्मा को प्रेम और उलाहने से ताने देते हैं और उसकी बेपरवाही के गुण भी गाते हैं। आप कहते हैं कि परमात्मा प्रेम के अनेक नाटक रचता है। हर नाटक में अनोखी झलक होती है। इश्के-हकीकी का आधार वही है और इश्के-मिजाज़ी का भी। इसी प्रकार केवल ईसा, मूसा, सुलेमान, लैला-मजनूं, हीर-रांझा, सस्सी-पुन्नू, राम, कृष्ण आदि गुण सम्पन्न व्यक्तियों में ही नहीं, कौरवों, फ़रओन, नमरूद, हिरण्यकश्यप, रावण आदि गुण-विहीन व्यक्तियों में भी वही प्रभु विद्यमान है।

आप प्रभु की बेपरवाही और विचित्र लीलाओं की ओर संकेत करते हुए कहते हैं: हे प्रियतम, तूने स्वयं ही आदम को स्वर्ग लोक में गेहूँ खाने से मना किया, स्वयं ही शैतान को उसके पीछे लगा कर गेहूँ खाने के लिये प्रलोभन दिया और स्वयं ही धरती के दुःख सहने के लिये उसे देव-लोक से निकाल दिया। तूने स्वयं बिना पिता के ईसा का जन्म होने दिया, स्वयं ही हज़रत नूह को प्रलय में घेर लिया और उसका अपने पुत्र से विवाद खड़ा करा दिया। तूने स्वयं मूसा के अन्दर अपना प्रकाश देखने की आकांक्षा पैदा की और फिर स्वयं ही तूर पर्वत, जिस पर मूसा तेरा प्रकाश देखने के लिये खड़ा था, जला कर राख़ कर दिया। तूने ही स्वयं हज़रत इब्राहीम के बेटे इस्माइल का वध कर दिया और तेरी इच्छा से ही महात्मा यूनस को मछली हड़प गई।

यह तेरी ही विचित्र लीला थी कि हज़रत यकूब के सुन्दर बेटे यूसुफ़ को उसके ईर्ष्यालु भाइयों ने कुएँ में फेंक दिया। वही यूसुफ़ एक कौड़ी अथवा सूत की एक अट्टी के मूल्य बिक गया। उसी यूसुफ़ को मिस्र की प्रसिद्ध तथा अति सुन्दर रानी ज़लैखा ने स्वप्न में देखा। वह उस पर मोहित हो गई परन्तु यूसुफ़ ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। यह तेरा नाटक है।

हे प्रियतम, तूने सुलेमान जैसे गुण-सम्पन और बुद्धिमान सम्राट् को भट्ठी झोंकने पर लगा दिया, तूने यहूदियों के पितामह हज़रत इब्राहीम को

चिता पर चढ़ा दिया। तूने साबर जैसे सच्चे प्रेमी के शरीर में कीड़े पैदा कर दिये और तूने ही हज़रत मुहम्मद के दोहते और इमाम अली के सुपुत्र हसन को विष दिला कर मरवा दिया। तूने स्वयं मंसूर को सत्य का ज्ञान दिया, स्वयं उससे 'मैं सत्य हूँ' का नारा लगवाया और स्वयं ही उसे अपराधी घोषित करवा कर सूली पर चढ़वा दिया। तूने ही प्रेम में मस्त राहब का पित्ता निकलवा लिया और तूने ही ज़क्रिया के सिर पर आरा चलवा दिया।

हे अलबेले प्रियतम, तूने आरमीनिया से आकर भारत में बसे प्रसिद्ध सूफ़ी सरमद का गला कटवा दिया। तूने ही शम्स तबरेज़ के मुख से मुर्दे को यह हुक्म दिलवाया, "तू खुदा के हुक्म से खड़ा हो जा।" मुर्दा इस हुक्म से न खड़ा हुआ। फिर शम्स ने यह हुक्म दिया, "तू मेरे हुक्म से खड़ा हो जा।" इस पर मुर्दा खड़ा हो गया और शम्स तबरेज़ पर परमात्मा की बराबरी करने का दोष लगा कर उसकी खाल उतरवा दी गई। ये सब कुछ तेरी अपनी मर्ज़ी से हुआ।

आप प्रभु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तेरी विडम्बना आश्चर्यमय है। शाह शरफ़ ने बारह वर्ष तक नदी में खड़े होकर प्रेम के हठ का पालन किया। लैला और मजनू को प्रेम में क्या-क्या दुःख सहन करने पड़े। हीर-रांझा को प्रेम के काँटों भरे मार्ग पर चलना पड़ा और साहिबा के प्रेम के कारण उसके भाइयों ने उसके प्रेमी मिर्ज़ा को मार डाला। यह तेरी ही विडम्बना है कि सस्सी पुन्नूं की खोज में मरुस्थल में झुलस कर मर गई, सोहनी महिवाल के लिये कच्चे घड़े पर नदी पार करती हुई डूब गई और रोडा को जलाली से प्रेम करने के दोष में उसके कसाई पिता ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

आप फिर प्रभु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तूने करबला की लड़ाई में हसन-हुसैन नामक भाइयों को जो हज़रत अली के सुपुत्र और पैगम्बर मुहम्मद के दोहते थे, की सेना को पानी न मिलने के कारण शत्रुओं से मरवा डाला। हसन-हुसैन की पानी की मश्कों को चूहों ने कुतर दिया और पानी न मिलने के कारण उनकी सेना करबला के मैदान में कट मरी।

यह तेरी ही लीला है कि कौरवों और पांडवों में, जोकि एक ही वंश के थे, युद्ध हुआ और अठारह अक्षैहिणी सेना नष्ट हो गई। यह भी तेरी ही लीला थी कि नमरूद, फ़रऔन, रावण, हिरण्यकश्यप तथा कंस के हृदय में अहंकार उत्पन्न हो गया और उन्होंने अपने आपको प्रभु कहना शुरू कर दिया। तूने स्वयं उनमें नीच भावना उत्पन्न की और स्वयं ही नमरूद को मच्छर से मरवा दिया, फ़रऔन को नील नदी में डुबो दिया, रावण को श्री राम द्वारा, हिरण्यकश्यप को नरसिंह और कंस को श्री कृष्ण द्वारा मरवा डाला।

इसी प्रकार तूने स्वयं हसन को इमाम अर्थात् मुखिया बनवाया और स्वयं ही दमिश्क के ख़लीफ़ा से युद्ध करवा कर उसे मरवा डाला।

आप काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि यह भी उस प्रियतम की विडम्बना है कि भारत मुग़ल सम्राट नष्ट होते जा रहे हैं और उनके स्थान पर लोहिया पहनने वाले खालसा उन्नत हो रहे हैं। अपने आपको कुलीन (अशराफ़) समझने वाले दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं। आप नम्रतापूर्वक कहते हैं कि मैं उस प्रभु का तुच्छ फ़कीर हूँ परन्तु मेरा संसार में सदैव नाम जगमगाता रहेगा क्योंकि उस प्रभु ने मेरा अपने पवित्र प्रकाश से सृजन किया है :

रहु रहु वे इश्का मारिया ई, कहु किस नूं पार उतारिया ई।
आदम कनकों मनां कराया, आपे मगर शैतान दुड़ाया।
कढ बहिश्तों ज़मीन रूलाया, केड पसार पसारिया ई।
ईसा नूं बिन बाप जंमाया, नूहे पर तूफ़ान मंगाया।
नाल पिओ दे पुत्तर लड़ाया, डोब ओहनां नूं मारिया ई।
मूसा नूं कोह-तूर चढ़ाइओ, अस्माइल नूं ज़िब्हा कराइओ।
यूनस मछ्छी तों निगलाइओ, की ओहनां नूं रुतबे चाढ़िया ई।
खवाब ज़ुलैखा नूं दिखलाइओ, यूसफ़ खूह दे विच पवाइओ।
भाइआं नूं इलज़ाम दिवाइओ, तां मरातब चाढ़िया ई।
भट्ठ सुलेमान तों झुकाइओ, इब्राहिम चिखा विच पाइओ।
साबर दे तन कीड़े पाइओ, हसन ज़हिर दे मारिया ई।
मनसूर नूं चा सूली दित्ता, राहब दा कढवाइओ पित्ता।

ज़करीआ सिर कलवत्तर दित्ता, फेर ओहनां कंम की सारिया ई।
शाह सरमद दा गला कटाइओ, शमस ते जां सुखन अलाइओ।
कुम-ब-इज़नी आप कहाइओ, सिर पैरो खल्ल उतारिया ई।
एस इश्क दे बड़े अडंबर, इश्क न छुपदा बाहर अंदर।
इश्क कीता शाह शरफ़ कलंदर, बारां वरे दरिया विच ठारिया ई।
इश्क लैला दे धुंमां पाइयां, तां मजनू ने अखियां लाईंयां।
ओहनूं धारां इश्क चुंघाइया, बूहे बरस गुज़ारिया ई।
इश्क होरीं हीर वल धाए, तांहीएं रांझे कंन पड़वाए।
साहिबां नू जद विआहुण आए, सिर मिरज़े दा वारिया ई।
सस्सी थलां दे विच रुलाई, सोहणी कच्चे घड़े रुढ़ाई।
रोडे पिच्छे गल्ल गवाई, टुकड़े कर कर मारिया ई।
फ़ौजां कतल कराइयां भाइयां, मश्कां चूहियां तों कटवाइआं।
डिठ्ठी कुदरत तेरी साइआं, सिर तैथों बलिहारिया ई।
कौरों पांडों करन लड़ाइयां, अठारां खूहनीया तदों खपाइया।
मारन भाई सकिआं भाइया, की ओथे निआं नितारिया ई।
नमरुद ने वी खुदा सदाया, उस ने रब नूं तीर चलाया।
मच्छर तों नमरूद मरवाया, कारूं ज़मीं निघारिया ई।
फ़रऔन ने जदों खुदा कहाया, नील नदी दे विच आया।
ओसे नाल अशटंड जगाया, खुदीओं कर तन मारिया ई।
लंका चढ़ के नाद बजाइओ, लंका राम कोलों लुटवाइओ।
हरनाकश कित्ता बहिश्त बनाइओं, ओह विच दरवाज़े मारिया ई।
सीता दहिसर लई बेचारी, तद हनुवंत ने लंका साड़ी।
रावण दी सभ ढाह अटारी, ओड़क रावण मारिया ई।
गोपियां नाल की चज्ज कमाया, मक्खण कान्ह तों लुटवाया।
राजे कंस नूं पकड़ मंगाया, बोदीउं पकड़ पछाड़िया ई।
आपे चा इमाम बनाया, उस दे नाल यज़ीत लड़ाया।
चौधीं तबकीं शोर मचाया, सिर नेज़े ते चाढ़िया ई।
मुगलां ज़हर प्याले पीते, भूरियां वाले राजे कीते।
सभ अशराफ़ फिरन चुप्प कीते, भला ओन्हा नूं झाड़िया ई।

बुल्ला शाह फ़कीर विचारा, कर कर चलिया कूच नगारा।
रोशन जग विच नाम हमारा, नूरों सिरज उतारिया ई।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 65)

रातीं जागें करें इबादत

यह काफ़ी जितनी छोटी है उतनी भावपूर्ण है। इसमें साईं बुल्लेशाह की नम्रता और कुल मालिक की आस में रहते हुए उसकी भक्ति करने की आवश्यकता का संक्षिप्त परन्तु भावमय वर्णन मिलता है। आप स्वान या कुत्ते का उदाहरण देते हैं जो रात भर अपने मालिक की चौकीदारी करता है, रात भर मालिक के द्वार पर भोंकता रहता है और दिन में गन्दगी के ढेर पर सोया रहता है। उस बेचारे को चाहे सैंकड़ों जूते पड़ें और मालिक भी दुत्कार दे, वह मालिक का द्वार छोड़ कर नहीं जाता। आप मालिक की भक्ति, सेवा और आज्ञा में रहने की महत्ता दरशाते हैं। 'बंदगी' के शाब्दिक अर्थ आज्ञाकारितां, अधीनता और राज़ी-बर-रज़ा हैं। सूफ़ी साहित्य में एक दास और उसके स्वामी में हुए प्रश्नोत्तर का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है:

मालिक : तेरा नाम क्या है ?

सेवक : जिस नाम से तू मुझे पुकारे, मेरा नाम हो जायेगा।

मालिक : तेरा भोजन क्या है ?

सेवक : जो तू मुझे खाने के लिये दे, वही मेरा भोजन है।

मालिक : तू कैसे वस्त्र पहनेगा ?

सेवक : जैसे तू मुझे देगा।

मालिक : तू क्या काम करेगा ?

सेवक : जो काम करने के लिये तू हुक्म देगा

मालिक : तेरी क्या इच्छा है ?

सेवक : दास की कोई इच्छा नहीं होती। जो मालिक की इच्छा है, वही दास की होती है।

डॉ. इकबाल कहते हैं कि स्वामी बनने से दास बनने में अधिक शान है क्योंकि भक्ति जैसी बहुमूल्य वस्तु कोई नहीं और इसकी तड़प जैसी

बड़ी सौगात कोई नहीं :

मुकामे बंदगी दे कर ना लूं शाने खुदाबंदी।
मत आए बे-बहा है दरदे सोज़े आरज़ू मंदी।

भक्ति की यह बड़ाई कैसे मिले? साईं बुल्लेशाह कहते हैं: 'बुल्लेशाह वस्त विहाज लै नहीं तां बाज़ी लै गए कुत्ते।' व्यापार करने वाली वस्तु परमात्मा का नाम या कलमा है जिसको मनुष्य दुनिया की भक्ति से छुड़ा कर परमात्मा की भक्ति में ले आता है।

गुरु तेग बहादुर ने स्वान (कुत्ता) के उदाहरण द्वारा यही भाव इस प्रकार प्रकट किया है:

सुआमी को ग्रिहु जिउ सदा सुआन तजत नहीं नित।
नानक इह बिधि हरि भजउ इक मनि हुइ इक चिति।

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1428)

रातीं जागें करें इबादत। रातीं जागन कुत्ते, तैथों उत्ते।
भौंकनौ बंद मूल न हुंदे। जा रूड़ी ते सुत्ते, तैत्थों उत्ते।
ख़सम अपने दा दर न छड्डदे। भावे वज्जन जुत्ते, तैत्थों उत्ते।
बुल्ले शाह कोई वसत विहाज लै। नहीं ते बाज़ी लै गए कुत्ते, तैत्थों उत्ते।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 63)

वत्त न करसां मान

इस काफ़ी में भी उस अलबेले प्रियतम की बेपरवाही का वर्णन करते हैं। प्रेमिका प्रियतम से शिकायत करती है कि मैं तुम पर जान न्योछावर करती हूँ परन्तु तू मेरी ओर ध्यान नहीं देता और अपना भेद नहीं बताता। वह कहती है कि तुझ पर विश्वास नहीं किया जा सकता। तू अहंकार करने वालों को तार देता है और जो कीचड़ (पापों) में लथपथ हैं उनके साथ नाचता है। मैंने हर प्रकार का शृंगार किया है और मैं तेरे पीछे व्याकुल फिर रही हूँ परन्तु तू मेरी परवाह नहीं करता। प्रेमिका प्रार्थना करती है कि अब काफ़ी समय बीत चुका है, तू आकर मुझे अपने दर्शन दे :

वत्त न करसां मान रंझेटे यार दा वे अड़िआ। टेक।
इश्क अल्ला दी ज़ात लोकां दा मिहना।
किहनूं करां पुकार किसे नहीं रहिना।
ओसे दी गल्ल ओहो जाने।
कौन कोई दम मारदा वे अड़िया[1]।
अज अजोकड़ी रात मेरे घर रहीं खां वे अड़िआ।
दिल दीआं घुंडीआं खोल असां नाल हस्स खां वे अड़िया।
दिलबर यार इकरार कीतोई।
की इतबार सोहने यार दा वे अड़िआ।
जान करां कुरबान भेत नाहीं दस्सना एं वे अड़िआ।
ढूंडां तकीए दुआरे मैथों उठ नस्सना एं वे अड़िआ।
रल मिल सईआं पुछदीआं फिरदीआं।
होया वकत भंडार[2] दा वे अड़िआ।
हिक करदियां खुदी हंकार, ओहनां नूं तारनै वे अड़िआ[3]।
इक पिच्छे फिरन खुआर, सड़ीआं नूं साड़नैं वे अड़िआ।
मैंडे सोहने यार वे।
की इतबार तेरे प्यार दा वे अड़िआ।
चिक्कड़ भरीआं नाल नित झुंबर घत्तनां एं वे अड़िआ[4]।
लाया मैं हार शिंगार मैथों उठ नसना एं वे अड़िआ।
बुल्ला शहु घर आओ प्यारे।
होया वक्त दीदार दा वे अड़िआ।

(अनवर अली रोहतकी : 'कानूने इश्क', 154)

वेखो नी की कर गया माही

इस काफ़ी में सतगुरु के मिलन के बाद आत्मा में प्रकट होने वाले आश्चर्यजनक परिवर्तन का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। आत्मा प्रेमिका के रूप में कहती है कि यह प्रियतम मेरा दिल चुरा कर परदेश चला गया

---

1. कोई अहंकार नहीं कर सकता 2. त्रिंझण अर्थात् सत्संग का समय हो गया है 3. हिक=एक, ख़ुदी=अहंकार 4. पापियों को प्यार करता है।

है। मुझे घर-बार की सुध-बुध नहीं रही है। माता-पिता मुझे फटकारते हैं, भाई-बहनें ताने देते हैं। मैं कहती हूँ कि मैं सचमुच बुरी हूँ तो तुम मुझे प्रियतम की ओर ही धक्का दे दो। प्रियतम ने हृदय-द्वार पर अनहद का वह अद्भुत नाद बजाया है जिससे मेरी सुध-बुध खो गई है। मैंने हँसते-हँसते उससे प्रीति लगाई परन्तु अब वही प्रेम मेरे गले की फाँसी बन गया है। मंसूर ने प्रेम में आकर 'मैं सत्य हूँ' का नारा लगाया जिसके कारण उसे सूली पर चढ़ा दिया गया। मुझ पर भी प्रेम का ऐसा ही जोश चढ़ गया है। मैंने सारी लोक-लाज को त्याग दिया है। मैं प्रेम से पीछे नहीं मुड़ सकती जो होना हो, सो हो :

वेखो नी की कर गया माही, लै दे के दिल हो गया राही। टेक।
अंमां झिड़के बाबल मारे, ताने देंदे वीर प्यारे।
जे मैं बुरी बुरिआर वे लोका, मैनूं दिओ उत्ते वल त्राही[1]।
बूहे ते उस नाद बजाया, अकल फ़िकर सभ चा गवाया[2]।
अल्ला दी सहुं अल्ला जाने, हसदियां गल विच पै गई फाही।
रहु वे इश्का की करें अखाडे, मनसूर जेहे सूली ते चाढ़े[3]।
आन बनी जद नाल असाडे, बुल्ला मुंह तों लोई लाही[4]।
वेखो नी की कर गया माही, लै दे के दिल हो गया राही।

(अनवर अली रोहतकी : 'कानूने इश्क', 19)

वेखो नी शहु अनायत साईं

साईं बुल्लेशाह सतगुरु के प्रेम में मस्त हुई प्रेमिका के रूप में कहते हैं : वह प्रियतम मेरे साथ अजीब प्रकार के नखरे करता है। वह कभी आ कर दर्शन देता है तो मन प्रसन्नता से खिल जाता है, परन्तु जब वह दूर चला जाता है तो हृदय में विरह की अग्नि भड़क उठती है। मैं उससे

---

1. बुरी बुरिआर=बुरी से बुरी, त्राही=धक्का दे दो।

2. सतगुरु ने अनहद शब्द का भेद दिया और संसार की सुध-बुध समाप्त हो गई।

3-4. अखाड़े=लड़ाइयाँ, झगड़े, मुंह से लोई उतारना, भाव यह है कि लोक-लाज त्याग दी।

विनती करती हूँ कि तू मुझे अधिक न तरसा, क्योंकि मैं तेरा मुख देखने के लिये व्याकुल हूँ। पता नहीं उसने मेरे अन्दर कैसी प्रीति जगा दी है कि मैं आधी रात को नदी की ओर से दौड़ती हूँ—भाव जैसे सोहिनी महिवाल को मिलने के लिये आधी रात को नदी को पार करती थी उसी तरह मैं भी नदी को पार करके प्रियतम से मिलना चाहती हूँ। आश्चर्य की बात है कि जिन दुःखों से लोग डर कर भागते हैं, मैं खुशी-खुशी प्रेम के उन दुःखों को निमन्त्रण देती हूँ :

वेखो नी शहु अनायत साईं, मैं नाल करदा किवें अदाईं[1]।
कदी आवे कदी आवे नाहीं, त्यों त्यों मैनूं भड़कन भाहीं[2]।
नाम अल्ला पैग़ाम सुनाईं, मुख वेखन नूं न तरसाईं।
बुल्ले शहु केहीं लाई मैनूं, रात हनेरे उठ टुरदी नैं नूं[3]।
जिस औकड़[4] तों सभ कोई डरदा, सो मैं ढूंडां चाईं चाईं।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 149)

सब इक्को रंग कपाहीं दा

इस काफ़ी में अद्वैत का भाव प्रकट किया गया है। आप कहते हैं कि अनेक प्रकार के वस्त्र एक ही कपास से बनते हैं, अनेक प्रकार के आभूषण एक ही चाँदी से गढ़े जाते हैं। इसी प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न रूपों के पीछे एक ही प्रभु का प्रकाश है :

सब इक्को रंग कपाहीं दा। टेक।
ताणी ताणा पेटा नलियां, पीठ नड़ा ते छब्बां छल्लियां[5]।
आपो अपने नाम जितावन, वख्खो वख़्खी जाहीं दा[6]।
चौंसी पैंसी खद्दर धोतर, मलमल खाशा इक्का सूत्तर[7]।

---

1. आदाईं=नखरे 2-3. भाहीं=अग्नियाँ, नैं=नदी; प्रियतम ने मेरे अन्दर प्रेम की ज्वाला जला दी है जिस कारण मैं सोहनी की भाँति रात को (प्रेम की नदी) पार करने को तैयार हो जाती हूँ 4. पाठान्तर 'औकड़' के स्थान पर 'उड़क' भी हो सकता है।

5-6. ताणे, पेटे और नलकियाँ आदि सब अपने अलग-अलग नाम रखा कर अभिमान करते हैं।

7. अनेक प्रकार के कपड़े एक ही सूत से बुने जाते हैं।

पूणी विच्चों बाहर आवे, भगवा भेस गोसाईं दा[1]।
कुड़ीआं हत्थीं छापां छल्ले, आपो अपने नाम सवल्ले[2]।
सभ्भा हिक्का चांदी आखो, कण-कण चूड़ा बाहीं दम।
भेड़ा बकरियां चारन वाला, ऊंठ मझीआं दा करे संभाला[3]।
रूड़ी उत्ते गद्‌दों चारे, ओह भी वागी गाईं दा।
बुल्ला शौह दी जात की पुछनैं, शाकिर हो रज़ाई दा[4]।
जे तूं लोड़े बाग़ बहारां, चाकर रहु अराईं दा[5]।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 70)

साईं छप तमाशे नूं आया

इस काफ़ी में यह भाव प्रकट किया गया है कि प्रभु दूर नहीं है। वह शरीर के अन्दर है और शब्द अथवा नाम द्वारा अन्तर में ही उससे मिलन हो सकता है। इसलिये सदैव उस प्रभु के नाम में लीन रहना चाहिये :

साईं छप तमाशे नूं आया, तुसी रल मिल नाम धिआओं। टेक।
लटक सज्जन दी नाहीं छपदी, सारी खलकत सिकदी तपदी[6]।
तुसीं दूर न ढूंडन जाओ, तुसीं रल मिल नाम धिआओं।
रल मिल सइओ आतण पाओ, इक बंने विच जा समाओ[7]।
नाले गीत सज्जन दा गाओं, तुसीं रल मिल नाम धिआओ।
बुल्ला बात अनोखी एहा, नच्चन लगी तां घुंघट केहा[8]।
तुसीं परदा अख्खीं थीं लाहो[9], तुसीं रल मिल नाम धिआओ।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 68)

---

1. साधू का भगवे रंग का पहरावा कपास की उसी पूनी से काते गए सूत से बना है 2. अनेक प्रकार के आभूषण एक ही चाँदी से बनते हैं। 3. एक ही चरवाहा अनेक पशु चराता है। गद्‌दों=गधे 4. परमात्मा की जाति न पूछें, उसकी रज़ा में राज़ी (शाकर) रहो। शाकिर=ईश्वर का शुक्र करने वाला 5. यदि आनन्द लूटना चाहता है तो अराईं अर्थात् हज़रत अनायत शाह का दास (चाकर) बन जा 6. उस सज्जन की प्रीति नहीं छिप सकती। सारा संसार उसके लिये तड़प रहा है 7. आतण=त्रिंझण; तात्पर्य यह है कि मिल कर सत्संग करो, उसके नाम का ध्यान करो और उस प्यारो प्रियतम में समा जाओ 8. प्रीति लगा कर शर्म मत करो, खुल कर प्रेम करो 9. आन्तिरिक आँख खोलो।

साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे

प्रस्तुत काफ़ी जितनी छोटी है उतनी ही भावपूर्ण है। आप अपने प्रियतम से प्रार्थना करते हैं कि तू हमारी ओर निहार। आप कहते हैं कि वह प्रियतम स्वयं ही प्रेम का जाल फेंकता है और स्वयं ही डोर खींचता है। आपका कथन है कि जब हज़रत मुहम्मद साहिब ने गगन-मण्डल में अनहद शब्द की ध्वनि सुनी तो मक्के में उसके रहस्य को प्रकट किया। आप यह भी कहते हैं कि प्रभु से मिलाप करने वाले साधक की आत्मा अमर हो जाती है। साधारण लोग जन्म-मरण के बन्धन में बँधे हुए हैं पर प्रभु का प्रेमी इससे मुक्त हो जाता है :

साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारिया[1], साडे वल्ल मुखड़ा मोड़। टेक।
आपे पाईआं कुंडीयां तैं, ते आपे खिचदा हैं डोर।
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारियां, साडे वल्ल मुखड़ा मोड़।
अरश कुरसी ते बांगां मिलियां, मक्के पै गया शोर।
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारियां, साडे वल्ल मुखड़ा मोड़।
बुल्ला शौह असां मरना नाहीं, मर जावे कोई होर।
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे प्यारिया, साडे वल्ल मुखड़ा मोड़।

(नज़ीर अहमद: **'कलाम बुल्लेशाह'**, 5)

सानूं आ मिल यार प्यारिया

यह काफ़ी उस समय की याद दिलाती है जब साईं बुल्लेशाह का मुर्शिद उससे रूठ गया था। आप मुर्शिद को बड़े परिवार वाला (वड परवारिया) कहते हैं जिसके अनेक शिष्य हैं। आप मुर्शिद से प्रार्थना करते हैं कि तू मेरे विरह के दुःख को समझने का प्रयत्न कर और मुझे अपने दर्शन दे। केवल इस तरह ही मेरे हृदय में लगी अग्नि शान्त हो सकती है।

आप काफ़ी में बहादुर शाह दुर्रानी के आक्रमण से हुई पंजाब की दुर्दशा की ओर भी संकेत करते हैं। आप कहते हैं कि सदाचार का पतन हो चुका है। सब लोग स्वार्थी हो गये हैं। दशा यहाँ तक पहुँच गई है कि

---

1. देखिये पुस्तक का पृष्ठ 113.

बेटी माता को लूट रही है। पंजाब की दशा जलते हुए नरक के समान हो गई है :

सानूं आ मिल यार प्यारिया। टेक।
दूर दूर असाथों[1] गिओं, असलाते आ के बहि रहिउं।
की कसर कसूर विसारिया[2], सानूं आ मिल यार प्यारिआ।
मेरा इक अनोखा यार है, मेरा ओसे नाल प्यार है।
कदे समझे वड परवारिया[3], सानूं आ मिल यार प्यारिया।
जदों अपनी अपनी पै गई, धी मां नूं लुट के लै गई।
मूंह बारहवीं सदी पसारिया, सानूं आ मिल यार प्यारिया।
दर खुल्ला हशर-अज़ाब दा, बुरा हाल होया पंजाब दा[4]।
डर हावीए दोज़ख मारिया, सानूं आ मिल यार प्यारिया[5]।
बुल्ला शौह मेरे घर आवसी, मेरी बलदी भा बुझावसी[6]।
अनाइत दम दम नाल चितारिया[7], सानूं आ मिल.........।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 69)

सुनो तुम इश्क की बाज़ी

इस काफ़ी में सच्ची प्रेमिका के हृदय की वेदना और प्रियतम से मिलन की उसकी दृढ़ लगन का वर्णन किया गया है। वह कहती है कि मैं प्रियतम की खोज में संसार की मर्यादा को तिलांजलि दे चुकी हूँ: 'नच्चे हम लाह कर लोई।' विरहिणी कहती है कि मेरी आँखों से रक्त के आँसू बह रहे हैं और मैं उस शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रही हूँ, जब मैं प्रियतम से मिल

---

1. तू हमसे दूर जाकर क्यों छिप कर बैठ गया है ?

2. कसर=कमी; बिसारिया=भुलाया; हममें क्या कमी है जो तूने हमें भुला दिया है

3. मर्शिद को बड़े परिवार वाला कह रहे हैं।

4-5. दर=द्वार; हशर=कयामत का दिन; अज़ाब=दु:खों; डर हावीए दोज़ख=नरक के दु:खों का भय; ऐसी बुरी दशा जैसे कयामत के दु:खों का द्वार खुल गया हो। इस नरक के दु:खों से हृदय डरता है।

6-7. भा=आग; मेरा मुर्शिद अनायत शाह दर्शन देकर मेरे तपते हुए हृदय को ठण्डक पहुँचायेगा। मैं पल पल उनका ध्यान करती हूँ।

सकूँगी। प्रेम की तलवार ने मेरी द्वैत या अहम् भाव को काट डाला है। मैं प्रियतम में लीन होकर उसी का रूप हो गई हूँ। प्रियतम की खोज में मैंने अपना शीश न्योछावर कर दिया है, अपने हाथों अपना कफ़न सी लिया है और मैं प्रसन्नतापूर्वक कब्र में पाँव रखने के लिये तैयार हो गई हूँ :

सुनो तुम इश्क की बाज़ी, मलाइक हों कहां राज़ी[1]।
यहां बिरहों पर होगा जी, वेखां फिर कौन हारेगा[2]।
साजन की भाल हुन होई, मैं लहू नैण भर रोई[3]।
नच्चे हम लाह कर लोई, हैरत के पत्थर मारेगा[4]।
महूरत पूछ कर जाऊं, साजन को देखने पाऊं।
उसे मैं ले गले लाऊं, नहीं फिर खुद गुजारेगा।
इश्क की तेग़ से मूई, नहीं वोह ज़ात की दूई[5]।
और पिया पिया कर मूई, मोइआं फिर रूह चितारेगा।
साजन की भाल सर दीआ, लहू मध अपना पीआ।
कफ़न बाहों से सी लिया, लहद[6] में पा[7] उतारेगा।
बुल्ला शौह इश्क है तेरा, उसी ने जी लिया मेरा।
मेरे घर-बार कर फेरा, वेखां सिर कौन वारेगा।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 23)

से वणजारे आए नी माए

वणजारे (व्यापारी) नाम रूपी हीरों का व्यापार करने वाले सन्त-महात्मा और कामिल मुर्शिद हैं। उनका ढिंढोरा सुन कर जीव के मन में लालों का व्यापार करने की इच्छा पैदा हो जाती है, परन्तु जीव दिखावे के

1-2. मलाइक=मलक का बहुवचन अर्थात् फरिश्ते; हम फ़रिश्तों को कैसे प्रसन्न करेगे ? हमारा (जी) तो प्यारे पर कुर्बान है।

3-4. भाल=खोज; लहू नैण=खून के आँसू बहाये। लोई लाह के नच्चे=लोक-लाज त्याग कर प्रेम का नाच किया। हैरत के पत्थर मारेगा=लोग इस प्रेम के नाच से हैरान होकर हमें पत्थर मारेंगे।

5. प्रेम की तेग ने द्वैत का आवरण नष्ट कर दिया, देखिये पृ. 65.

6. लहद=कब्र 7. पैर, पाँव।

लिये (लोकां नूं दिखलावां) यह लाल खरीदना चाहते हैं। जब व्यापारी मूल्य बताते हैं तो लोग पीछे हट जाते हैं। मूल्य क्या है ? 'जे तू आई हैं लाल खरीदन धड़ तों सीस लुहाईं।' मूल्य शीश है। तात्पर्य यह है कि खुदी या अहम् का त्याग करना पड़ता है मन-मत को छोड़ कर मुर्शिद की आज्ञानुसार चलना पड़ता है। जिन्होंने कभी सुई की चुभन न सही हो अर्थात् प्रेम के लिये साधारण दुःख न सहे हों और मामूली सी कुर्बानी भी न की हो, वे सिर देने के लिये अर्थात् तन, मन और धन कैसे कुर्बान कर सकते हैं ? यही कारण है कि वे नाम या भक्ति के हीरे नहीं खरीद पाते :

से वणजारे आए नी माए, से वणजारे आए।
लालां दा ओह वणज[1] करेंदे, होका आख सुनाए।
लाल ने गहिने सोने साथी[2], माए नाल लै जावां।
सुनिआ होका मैं दिल गुज़री[3], मैं भी लाल लिआवां।
इक न इक कंना विच पा के, लोकां नूं दिखलावां[4]।
लोक जानण इह लालां वाली, लईआं मैं भरमाए[5]।
ओड़क[5] जा खलोती ओहनां ते, मैं मनो सधराइआं[6]।
"भाई वे लालां वालिओ मैं भी, लाल लैवन नूं आइआं"।
ओहनां भरे संदूक विखाले, मैनूं रीझां आइआं।
वेखे लाल सुहाने सारे, इक तों इक सवाए।
"भाई वे लालां वालिआ वीरा, इन्हां दा मुल दसांई"।
"जे तूं आई हैं लाल खरीदन, धड़ तों सीस लुहाईं"।
डम्म कदी सूई दा न सहिआ, सिर कित्थें दिता जाई[7]।
नदामी[8] हो के मुड़ घर आई, पुछन गवांढी आए।
तूं जु गई सैं लाल खरीदन, उच्ची अड्डी चाई नी[9]।

---

1. वणज=व्यापार 2. लाल सुन्दर साथी हैं 3. दिल गुजरी=दिल में आया, जी किया 4. लाल ला कर दिखावा करूँ 5. ओड़क=अन्ततः 6. सधराइआं=बड़े चाव से वहाँ गई 7. जिसने सुई की चुभन न सही हो, सिर कैसे कटाये ? 8. नदामी=शर्मिंदा होकर 9. उच्ची अड्डी चाई=ऐड़ी उठा कर अर्थात् शेखी और चाव से

किहड़ी मुहर उत्थों रंने तूं, लै के घर आई नी[1]।
"लाल सी भारे मैं सां हलकी खाली कंनी साई नी[2]।
भारा लाल अनमुल्ला ओथों, मैथे चुकिआ ना जाए"।
कच्ची कच्च विहाजण जाना, लाल विहाजण चल्ली[3]।
पल्ले खरच न साख न काई, हत्थों हारन चल्ली[4]।
मैं मोटी मुशटंडी दिस्सां, लाल नूं चारन चल्ली[5]।
जिस शाह ने मुल लै के देना, सो शाह मुंह न लाए[6]।
गलियां दे विच फिरें दीवानी, नी कूड़ीए मुटिआरे[7]।
लाल चुगेंदी नाज़क होई, इह गल कौन नितारे[8]।
जां मैं मुल ओन्हां नूं पुछिआ, मुल करन ओह भारे।
डम्म सुई दा कदे न खाधा, ओह आखन सिर वारे।
जिहड़ीआं गईआं लाल विहाजन ओहनां सीस लुहाए[9]।
से वणजारे आए नी माए, से वणजारे आए।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 74)

हजाब करें दरवेशी कोलों

दरवेशी का अर्थ फ़कीरों या प्रभु-भक्ति है। हजाब का अर्थ शर्म करना है। प्रस्तुत काफ़ी में आप मनुष्य को सावधान करते हैं कि तू मोह-माया में फँस कर प्रभु की भक्ति की ओर ध्यान नहीं देता। तुझे अन्त समय अपने अज्ञान के कारण लज्जित होना पड़ेगा। तू संसार में लोगों को लूटता है। तू यह समझने का प्रयत्न नहीं करता कि संसार में कर्म और फल का नियम लागू है : 'जैसी करनी वैसी भरनी, प्रेम नगर वरतारा ए।' जो लोग

---

1. मुहर=अशर्फी; भाव यह है कि हे नारी, तू वहाँ से कौन-सी विशेष वस्तु खरीद कर लाई है ? 2. लाल महँगे मूल्य के थे, मैं कम मूल्य की थी 3. सांसारिक वृत्ति वाले कच्चे लोग माया (कच्च) की तृष्णा रखते हैं 4. साख=उनका कोई विश्वास या भरोसा नहीं होता, कोई उनकी गवाही या शहादत नहीं दे सकता 5. मैं अवगुणों वाली थी, प्रियतम (लाल) को धोखा देना चाहती थी 6. जिस मुर्शिद (शाह) ने (नाम रूपी) लाल खरीद कर देना था, वह मुझसे प्रसन्न नहीं था 7. कूड़ीए=कूड़; कच्च या माया का व्यापार करने वाला जीव 8. नितारे=न्याय करे 9. लाल उनको ही मिले जिन्होंने हँस-हँस कर सिर वार दिया।

यहाँ अन्याय करते हैं और दूसरों को दुःखी करते हैं, उन्हें अपने कर्मों का लेखा देना पड़ता है। साईं जी कहते हैं कि संसार में आकर प्रभु के प्रेम का पाठ पढ़ना चाहिये और उसके नाम की आराधना करनी चाहिये। नाम के बिना यहाँ से चलते समय कोई वस्तु साथ नहीं जाती। परलोक में काम आने वाली वस्तु केवल नाम है और नाम की कमाई केवल जीते-जी हो सकती है। इस संसार में रहते हुए परलोक के लिये नाम का धन बटोर लेना चाहिये क्योंकि वहाँ पर जाकर यह वस्तु नहीं मिल सकती। सारा संसार नश्वर है परन्तु नाम की आराधना करने वाला प्रभु का सच्चा प्रेमी अमर हो जाता है।

साईं जी जीव को कहते हैं कि मैं तुम्हें यह नसीहत देता हूँ कि तू जीते-जी मरने की युक्ति सीख ले जिससे तेरा परलोक सुधर जायेगा। आप मनुष्य को विश्वास दिलाते हैं कि यदि तू हमारे (सन्तों) के उपदेशानुसार चलेगा तो हम तुम्हें उस प्रभु से मिला देंगे जिसकी सारे संसार को तलाश है। आप कहते हैं कि तूने अपनी पिछली आयु तो संसार के प्रेम में व्यर्थ खो दी है। यदि अब भी हमारे बताये हुए मार्ग पर चलेगा तो तू परमात्मा का सच्चा प्रेमी कहलायेगा। तू दुबिधा में पड़ कर अपना समय व्यर्थ न खो, क्योंकि जब प्रभु के दरबार से तुम्हारा संसार से जाने का हुक्म आ जायेगा तो तू उस समय कुछ नहीं कर पायेगा :

हजाब करें दरवेशी कोलों, कद तक हुकम चलावेंगा[1]।
गल अलफ़ी सिर पा बरहना[2], भलके रूप वटावेंगा।
इस लालच नफ़सानी कोलों, ओड़क मून मनावेंगा[3]।
घाट ज़कात मंगनगे पिआदे[4], कहु की अमल विखावेंगा।
आन बनी सिर पर भारी, अग्गों की बतलावेंगा।
हक पराया जातो नाहीं, खा कर भार उठावेंगा।

---

1. हजाब=शर्म; दरवेशी=फ़कीरी; तू फ़कीरी से शर्म करता है, कब तक संसार में हुक्म चला सकेगा ? तात्पर्य है कि संसार में सदा नहीं रहना। देखिये पृ. 50.
2. अलफ़ी=फ़कीरों वाली कमीज़ अर्थात् कफ़न; सिर पार बरहना=सिर और पाँव से नंगा होगा 3. नफ़स या इन्द्रियों के भोगों के लालच में फँस कर अपना सिर मुंडा लेगा
4. घाट=दरगाह के रास्ते में; पिआदे=यमदूत; ज़कात=टैक्स।

फेर न आ कर बदला देसें, लाखी खेत लुटावेंगा।
दाअ ला के विच जग दे जूए, जित्ते दम हरावेंगा।
जैसी करनी वैसी भरनी, प्रेम नगर बरतारा ए[1]।
एथे दोज़ख कट तूं दिलबर, अग्गे खुल बहारां ए।
केसर बीज जो केसर, जंमें लसण बीच ठगावेंगा[2]।
करो कमाई मेरे भाई, इहो वकत कमावन दा।
पौं सतारां[3] पैंदे ने हुन, दाअ न बाज़ी हारन दा।
उजड़ी खेड छपणगीआं नरदां, झाड़ू कान उठावेंगा।
खावें मास चबावें बीड़े, अंग पुशाक लगाइया ई[4]।
टेडी पगड़ी आकड़ चल्लें, जुत्ती पैर अड़ाइया ई।
पलदा है तूं जम दा बकरा, अपना आप कुहावेंगा।
पल दा वासा वस्सण एथे, रहिन नूं अग्गे डेरा ए।
लै लै तोहफ़े घर नूं घल्लीं, इहो वेला तेरा ए।
ओथे हत्थ न लगदा कुझ वी, एथों ही लै जावेंगा।
पढ़ सबक मुहब्बत ओसे दा, तूं बेमूजब क्यों डुबना एं[5]।
पढ़ पढ़ किस्से मग़ज़ खपावें, क्यों खुभण विच खुभना एं[6]।
हरफ़ इश्क दा इक्को नुकता, काह को ऊठ लदावेंगा[7]।
भुख मरेंदिआं नाम अल्ला दा, इहो बात चंगेरी ए।
दोवें थोक पत्थर थीं भारे, औखी जिही इह फेरी ए।
आन बनी जद सिर पर भारी, अग्गों की बतलावेंगा।
अंमां बाबा बेटी बेटा, पुछ वेखां क्यों रोंदे नी[8]।
रंनां कंजकां भैणां भाई, वारस आन खलोंदे नी।
इह जो लुटदे तूं नहीं लुटदा, कर के आप लुटावेंगा।
इक इकल्लियां जाना ई तैं, नाल न कोई जावेगा।

1-2. देखिये पृ. 47. 3. पौं सतारां=सौभाग्यशाली दाँव 4. देखिये पृ. 47.
5-6. तू प्रेम का पाठ पढ़, शेष लम्बी-चौड़ी कथाएँ पढ़ कर दिमाग खराब करने का कोई लाभ नहीं 7. प्रेम का एक अक्षर पढ़ने की आवश्यकता है, ऊँटों के ऊँट पुस्तकें पढ़ने से कोई लाभ नहीं 8. अन्त समय रिश्तेदार रोते और चिल्लाते हैं और सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बन जाते हैं।

खवेश कबीला रोंदा पिटदा, राहों ही मुड़ आवेगा[1]।
शहिरों बाहर जंगल विच वासा, ओथे डेरा पावेंगा।
करां नसीहत वड्डी जे कोई, सुन कर दिल ते लावेंगा[2]।
मोए तां रोज़-हशर नूं उट्ठन, आशिक न मर जावेगा।
जे तूं मरें मरन तों अग्गे, मरने दा मुल पावेंगा।
जां राह शरा दा पकडेंगा, तां ओट मुहम्मदी होवेगी[3]।
कहिंदी है पर करदी नाहीं, इहो ख़लकत रोवेगी[4]।
हुन सुत्तिआं तैनूं कौन जगाए, जागदियां पछतावेंगा।
जे तूं साडे आखे लग्गें, तैनूं तख़त बहावेंगा[5]।
जिस नूं सारा आलम ढूंडे, तैनूं आन मिलावांगे।
ज़ुहदीं[6] हो के ज़ुहद कमावें, लै पिया गल लावेंगा।
ऐवें उमर गवाइआ औगत, आकबत चा रुढ़ाइआ ई[7]।
लालच कर कर दुनिया उत्ते, मुख सफ़ैदी आइया ई[8]।
अजे वी सुन जे ताइब होवे, तां आशना सदावेंगा[9]।
बुल्ला शौह दे चलना एं तां चल, किहा चिर लाया ई।
जक्को तक्को की करने, जां वतनों दफ़तर आया ई[10]।
वाचदियां खत अकल गइओ ई, रो रो हाल वंञावेंगा।
हजाब करें दरवेशी कोलों, कद तक हुकम चलावेंगा।

(डॉ. गुरदेवसिंह : '**कलाम बुल्लेशाह**', 57)

---

1. खवेश कबीला=सम्बन्धी, रिश्तेदार : ये तेरे साथ नहीं जा सकते 2. देखिये पृ. 102. 3-4. लोग कहते हैं कि धार्मिक कानून पर अमल करोगे तो हज़रत मुहम्मद तुम्हारी रखवाली करेंगे। लोग कहने को ये बातें कह देते हैं परन्तु उनके असल उपदेश पर अमल नहीं करते। ऐसे लोगों को अन्त समय पछताना पड़ता है। गुरु नानक साहिब ने भी लिखा है; 'गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदार न खाइ।' (आदि ग्रन्थ, पृ. 141)

5. देखिये : पृ. 192. 6. ज़ुहदी=भक्ति करने वाला 7. औगत=व्यर्थ; आकबत=आगे, परमार्थ; तूने आयु व्यर्थ गँवा दी है और परलोक खराब कर लिया है 8. सांसारिक लोभ व लालच के कारण तेरे चेहरे का नूर समाप्त हो गया है और तुझे बुढ़ापे ने घेर लिया है 9. ताइब=तोबा करने वाला; आशना=आशिक या प्रेमी; यदि अब भी गुनाहों से तोबा करे तो परमात्मा का आशिक बन सकता है 10. जक्को-तक्को=बहाना, सोच-विचार; वतनों=दरगाह से, दफ़तर=बुलावा, निमन्त्रण।

हाजी लोक मक्के नूं जांदे

प्रभु के सच्चे प्रेमी की चाल संसार से न्यारी होती है। सांसारिक प्राणी उसे कमला या मूर्ख समझते हैं। इस काफ़ी में साईं जी प्रेमी के रूप में कहते हैं कि मेरी चाल संसार से उलटी है। लोग मक्का हज के लिये जाते हैं, परन्तु मेरे लिये मेरा रांझा (सतगुरु) ही असल मक्का है। हज़रत सुलतान बाहू ने भी कहा है : 'मुरशद का दीदार है बाहू मैनूं लख्ख करोड़ां हज्जां हू।' आप कहते हैं कि जिस मक्के में वह सच्चा प्रियतम मिलता है वह मेरे अपने शरीर के अन्दर है। मन के अन्दर ही नीच वृति या विषय-विकार हैं : 'विच्चे चोर उचक्का।' मन के अन्दर ही इनको जीतने वाले गुण (हाजी और गाजी) है। मुकामे-हक (तख़्त हज़ारा) भी अपने अन्दर है और आशिक अपने अन्दर से ही मक्का का हज खत्म करके प्रियतम से मिलाप करते हैं। आत्मा का पाँव के तलों से सिमट कर सिर की चोटी पर पहुँचना, हज पूरा करके तख़्त हज़ारे (सचखण्ड) पहुँचना है। चाहे सब धर्म-ग्रन्थों की साक्षी ले लें कि सच्चा काबा वह है कि जहाँ वह प्रभु रहता है। प्रभु अन्दर रहता है। इसलिये सच्चा काबा अपने अन्दर है। (इन विचारों की सविस्तार व्याख्या के लिये देखिये : पृ. 77-82)

हाजी लोक मक्के नूं जांदे, मेरा रांझा माही मक्का।
नी मैं कमली हां।
मैं तां मंग रांझे दी होईआं, मेरा बाबल करदा धक्का[1]।
नी मैं कमली हां।
हाजी लोक मक्के नूं जांदे, मेरे घरा विच नौशौह मक्का।
नी मैं कमली हां।
विच्चे हाजी विच्चे गाज़ी, विच्चे चोर उचक्का।
नी मैं कमली हां।
हाजी लोक मक्के नूं जांदे, असां जाना तख़त-हज़ारे।
नी मैं कमली हां।

---

1. मेरी राँझा के साथ सगाई (मंग) हुई है जबकि लोग मुझे खेड़े के साथ भेजना चाहते हैं।

जित वल यार उते वल काअबा, भावें फोल किताबां चारे[1]।
नी में कमली हां।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 56)

हिन्दू नहीं न मुसलमान

पहली दो पंक्तियों को काफ़ी की अन्तिम दो पंक्तियों से मिला कर पढ़ने से काफ़ी का भाव स्पष्ट होगा कि जो आत्मा परमात्मा में समा कर परमात्मा का रूप हो जाती है, उसकी हर प्रकार की द्वैतता समाप्त हो जाती है। हज़रत बुल्लेशाह का संकेत उस उच्च रूहानी अवस्था की ओर है, जिसमें आत्मा मन और माया के सब परदे उतार कर अपने निर्मल रूहानी मूल में चमक उठती है। जिस प्रकार आत्मा की न कोई जात-पाँत है, न कौम, मज़हब, मुल्क या नस्ल, उसी प्रकार मन और इन्द्रियों से निर्लिप्त हुई आत्मा भी इन सब बन्धनों और मत-भेदों से ऊपर है :

हिंदू नहीं न मुसलमान,
बहीए त्रिंजण तज अभिमान[2]। टेक।
सुंनी ना नहीं हम शिया,
सुल्हा कुल का मारग लीआ[3]।
भुख्खे न नहीं हम रज्जे,
नंगे न नहीं हम कज्जे।
रोंदे न नहीं हम हसदे,
उजड़े न नहीं हम वसदे।
पापी न सुधरमी न,
पाप पुंन की राह न जां[4]।

---

1. किताबां चारे=तौरेत, ज़बूर, इंजील और कुरान—ये चार पवित्र पुस्तकें हैं।

2. त्रिंजण=जहाँ स्त्रियाँ इकट्ठी बैठ कर सूत कातती हैं। यहाँ अभिप्राय सत्संग से है। अहम् भाव को दूर करके सन्तों के सत्संग में जाना चाहिये।

3. सुन्नी और शिया मुसलमानों के दो फ़िरके हैं। सुल्हा कुल=जिनकी हरएक से सहमति है, हरएक से प्यार है।

4. पाप-पुण्य की द्वैत से ऊपर हो गया हूँ।

बुल्ले शाह जो हरि चित लागे,
हिंदू तुरक दूजन[1] त्यागे।

(नज़ीर अहमद : **'कलाम बुल्लेशाह'**, 83)

हुन किस थीं आप छुपाइदा

साईं जी कहते हैं कि मैंने अनेकता के परदे के पीछे छिपे प्रभु के प्रकाश की एकता को पहचान लिया है। मेरे सब भ्रम दूर हो गये हैं। बाहर देखने में अलग-अलग प्रतीत होने वाले रूपों के पीछे एक ही दयालु प्रभु का प्रकाश विद्यमान है। वह एक प्रभु ही मुल्ला, राम, आदम आदि रूपों में प्रकट होता है; वृन्दावन का ग्वाला कृष्ण भी तू ही है; लंका पर आक्रमण करने वाला राम भी तू ही है और मक्का में हज़रत मुहम्मद बन कर पहुँचने वाला भी तू है। आप कहते हैं कि गुरु तेग़ बहादुर के रूप में धर्म-रक्षक बन कर आने वाले भी तुम हो, यूसुफ़, यूनुस और साबर आदि प्रभु-भक्तों को दु:ख देने वाले भी तुम स्वयं हो। मंसूर में अपना प्रेम पैदा करने वाले और फिर उसे सूली पर चढ़वाने वाले भी तुम ही हो। तुम मुझे हर जगह, हर हाल में नज़र आते हो। जिस किसी पर तुम्हारी दया हो जाती है वह भी तुम्हारा ही रूप हो जाता है परन्तु जो कोई तुम्हारी खोज करना चाहता है, उसे जीते-जी मरने की युक्ति सीखनी पड़ती है। जब वह इस युक्ति द्वारा अन्तर में अपने आपकी पहचान लेता है तो हर रूप में तुम ही समाये हुए दिखाई देते हो :

हुन किस थीं आप छुपाइदा। टेक।
किते मुल्ला हो बुलेंदे हो, किते सुंनत फ़रज़ दसेंदे हो[2]।
किते राम दुहाई देंदे हो, किते मत्थे तिलक लगाइदा।
मैं मेरी है कि तेरी है, इह अंत भसम दी ढेरी है[3]।
इह ढेरी पिया ने घेरी है, ढेरी नूं नाच नचाइदा।

---

1. दूजन=द्वैत।
2. इस्लामी रहनी या संयम को सुन्नत का नाम दिया जाता है।
3. शरीर और अहम् नाशवान है परन्तु नश्वर शरीर में एक अमर तत्व है जो इस मिट्टी की ढेरी को अपने हुक्म के अनुसार नचाता है।

कितें बेसिर[1] चूड़ा पाओगे, किते जोड़ा शान हंढाओगे।
किते आदम हव्वा बन आओगे, कदी मैथों भी भुल जाइदा[2]।
बाहर ज़ाहर डेरा पाइओ, आपे डौं डौं ढोल बजाइओ।
जग ते अपना आप जताओ फर अब्दुल्ला दे घर धाइदा[3]।
जो भाल तुसाडी करदा है, मोइआं तों अग्गे मरदा है[4]।
ओह मोइआं वी तैथों डरदा है, मत मोइआं नूं मार कुहाइदा[5]।
बिंदराबन में गऊआं चरावें, लंका चढ़ के नाद वजावें।
मक्के का बन हाजी आवें, वाह वाह रंग वटाइदा।
मनसूर तुसां ते आया ए, तुसां सूली पकड़ चढ़ाया ए।
मेरा भाई बाबल जाया ए, दिओ खून तुसीं मेरे भाई दा।
तुसी सभनी भेसीं थींदे हो, आपे मध हो आपे पींदे हो[6]।
मैंनूं हर जा तुसीं दसींदे हो, आपे आप को आप चुकाइदा।
हुन पास तुसाडे वस्सांगी, न बेदिल हो के नस्सांगी[7]।
सभ भेत तुसाडे दस्सांगी, क्यों मैनूं अंग न लाइदा।
वाह जिस पर करम अवेहा है, तसदीक ओह भी तैं जेहा है।
सच सही रवाइत एहा है, तेरी नज़र मिहर तर जाइदा।
विच भांबड़ बाग़ लवाई दा, जिहड़ा विच्चों आप खवाइदा[8]।
जां अलफ़ों अहिद बनाई दा, तां बातन किआ बतलाइदा[9]।

---

1. बेसिर=जिसका सिर न हो अर्थात् गोल।

2. मैं कभी तुम्हारी पहचान नहीं भूल सकता, तुम्हें झट पहचान लूँगा।

3. अब्दुल्ला=हज़रत मुहम्मद साहिब के आदरणीय पिता का नाम अर्थात् तू स्वयं ही हज़रत मुहम्मद बन कर आ गया।

4-5. परमात्मा का सच्चा आशिक जीते-जी मरने का अभ्यास करता है। देखिये पृ. 98 से 102, कुहाइदा=छुरी से धीरे-धीरे मारना।

6. मध=शराब; शराब भी तू है और शराबी भी तू है।

7. व्याख्या के लिये देखिये पृ. 197.

8. हमारे अन्दर विषयों-विकारों की अग्नि जल रही है, परन्तु साथ ही रूहानियत के बाग़ भी खिले हुए हैं। अपने अन्दर से ही उस गुलज़ार के दर्शन होते हैं।

9. तू स्वयं ही निराकार या निर्गुन (अलिफ़) से साकार या सगुण होकर सब जगह समा गया है। अन्दर-बाहर दो परमात्मा नहीं हैं।

बेली अल्ला वाली मालक हो, तुसीं अपने आप सालक हो[1]।
आपे खलकत आपे ख़ालिक हो, आपे अमर मअरूफ़ कराइदा[2]।
किधरे चोर ते किधरे काज़ी हो, किते मंबर ते बहि वाअज़ी हो[3]।
किते तेग़ बहादर ग़ाज़ी हो, आपे अपना कटक चढ़ाइदा[4]।
आपे यूसफ़ कैद कराइओ, यूनस मछली तों निगलाओ[5]।
साबर कीड़े घत बहाइओ, फेर ओहनां तख़त चढ़ाइदा[6]।
बुल्ला शहु हुन सही संझाते हो, हर सूरत नाल पछाते हो[7]।
किते आते हो किते जाते हो, हुन मैथों भुल न जाइदा।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 154)

हुन मैनूं कौन पछाने

इस काफ़ी में कहते हैं कि सतगुरु के उपदेश पर चलने से जीव का पूर्णत: कायाकल्प हो जाता है। उसके भीतर द्वैत भाव का भ्रम नाश हो जाता है और वह पूरी तरह अद्वैत में स्थित हो जाता है। उसे वह निराकार, निर्लेप प्रभु अन्दर और बाहर हर जगह समाया हुआ दिखाई देता है। वह मनमुख (कौआ) से गुरुमुख (हंस) बन जाता है। वह माया के प्रेम से मुक्त होकर प्रभु या उसके प्रेम में लीन हो जाता है और सदा इस आनन्द में मग्न रहता है :

---

1. सालक=खोजी; अपनी खोज करने वाले यात्री भी तुम स्वयं हो।

2. आप ही रचना है और आप ही रचनाकार है। आप ही हुक्म (अमर) और आप ही सेवक हैं।

3. मंबर=मसजिद में वाअज़ (उपदेश) करने वाला स्थान, वाअज़ी=प्रचारक।

4. तेग़ बहादुर=तलवार का धनी; गुरु तेग़ बहादुर साहिब की ओर भी संकेत हो सकता है। गाज़ी=हक या सत्य के लिये लड़ने वाला। कटक=सेना; अपनी सेना चढ़ाने वाला भी तू आप है।

5-6. यूसुफ़=यूनुस और साबर को दु:ख देने वाला भी तू है और उनके सिर पर इलाही शान का ताज रखने वाला भी तू स्वयं है।

7. संझाते=पहचाने; अब मैं तुम्हें कभी नहीं भूल सकता।

हुन मैनूं कौन पछाने, हुन मैं हो गई नी कुझ होर। टेक।
हादी मैनूं सबक पढ़ाया, ओथे ग़ैर न आया जाया[1]।
मुतलक ज़ात जमाल विखाया, वहदत पाया नी शोर[2]।
हुन मैनूं कौन पछाने, हुन मैं हो गई नी कुझ होर।
अव्वल हो के लामकानी, ज़ाहर बातन दिसदा जानी[3]।
रहा न मेरा नाम निशानी, मिट गया झगड़ा शोर[4]।
हुन मैनूं कौन पछाने, हुन मैं हो गई नी कुझ होर।
प्यारा आप जमाल विखाले, मस्त कलंदर होन मतवाले[5]।
हंसां दे हुन वेख लै चाले, बुल्ला कागां दी भुल गई टोर[6]।
हुन मैनूं कौन पछाने, हुन मैं हो गई नी कुझ होर।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 155)

हुन मैं लखिया सोहना यार

इस काफ़ी में प्रभु को 'सोहना यार' और उसकी सृजन की गई रचना को उसके 'हुसन का गर्म बाज़ार' कहा गया है। साईं जी कहते हैं कि मैंने उस सुन्दर प्रियतम को पहचान लिया है जिसने ये सारी रंग-बिरंगी रचना की है। रचना करने से पूर्व उस प्रभु के बिना कुछ भी नहीं था। उस समय केवल एक प्रभु था। न उसका प्रकाश प्रकट हुआ था और न ही कोई पीर-पैगम्बर प्रकट हुआ था। वह प्रभु निर्लेप और निराकार था। उसका कोई

---

1. मुर्शिद ने मुझे अद्वैत में पहुँचा दिया, ज़हाँ कोई ग़ैर नहीं।

2. मुतलक-ज़ात=निर्लिप्त परमात्मा, परम सत्य, जब मैंने प्रभु का प्रकाश देखा तो अन्दर पूर्ण अद्वैत के नग़मे (गीत) गूँज उठे।

3. वह निर्लिप्त व निराकार प्रियतम (दिलजानी) ही अन्दर है और बाहर (ज़ाहर बातन) हर स्थान पर समाया हुआ है।

4. मेरा अहम् या अलग अस्तित्व समाप्त हो गया और मैं पूरी तरह परमात्मा में लीन हो गई।

5. वह प्यारा स्वयं फ़कीरों-कलन्दरों को दर्शन देकर उनको मस्त बना रहा है।

6. गुरुमुखों वाले गुण ग्रहण करके हंसों (गुरुमुखों) वाली गति प्राप्त हो गई और कौओं (मनमुखों) वाली वृत्ति छूट गई।

रंग-रूप न था। फिर वह स्वयं ही संसार के रंग-बिरंगे रूपों में प्रकट हो गया। उस एक प्रियतम ने अनेक वेष धारण कर लिये। उसके हुक्म से ही रचना हुई और वह स्वयं ही पीरों-पैग़म्बरों का सरदार बन कर संसार में आ गया। मनुष्य, देवता और पीरों-पैग़म्बर उसके सेवक हैं। सब उसके चरणों पर शीश झुकाते हैं क्योंकि वह सबसे बड़ी सरकार है। आप काफ़ी के अन्त में कहते हैं कि यदि कोई अपने आप उसका रहस्य पाना चाहे तो कदापि सफल नहीं हो सकता। केवल सतगुरु के द्वारा ही उसका भेद पाया जा सकता है :

हुन मैं लखिया सोहना यार,
जिस दे हुसन दा गरम बाज़ार। टेक।
जद अहिद[1] इक इकल्ला सी, न ज़ाहर[2] कोई तजल्ला[3] सी।
न रब्ब रसूल न अल्ला सी, न जब्बार[4] ते न कहार[4]।
बेचून व बेचूगूना सी, बेशबीया बेनमूना सी[5]।
न कोई रंग न नमूना सी, हुन गूनां-गूं हज़ार[6]।
प्यारा पहिन पोशाकां आया, आदम अपना नाम धराया।
अहिद ते बन अहिमद आया, नबीयां दा सरदार[7]।
कुन किहा फ़यीकून कहाया, बेचूनी से चून बनाया[8]।
अहिद दे विच मीम रलाया, तां कीता ऐड पसार[9]।
तजूं मसीत, तजूं बुतखाना, बरती रहां न रोज़ा जाना[10]।
भुल गया वुज़ू नमाज़ दुगाना[11], तैं पर जान करां बलिहार।
पीर पैग़म्बर इसदे बरदे[12], इनस मलाइक सजदे करदे[13]।

---

1. प्रभु 2. प्रकट 3. प्रकाश 4. अत्याचारी 5. बेचून=माया रहित बेशबीया, बेनमूना=जिसका कोई आकार न हो, जिस जैसा कोई दूसरा न हो 6. अब वह हज़ारों रंगों और रूपों में प्रकट हो गया है 7. वह प्रभु (अहिद) सतगुरु (अहिमद) और सब पैग़म्बरों का सरदार (नबीयां दा सरदार) बन कर आ गया।

8-9. देखिये पृष्ठ 56. 10. मैंने मसजिद और मन्दिर (बुतखाना) त्याग दिया है। मैं न रोज़ा रखता हूँ न व्रत।

11. मैंने हाथ, पाँव, मुँह धोना (वुज़ू) नमाज पढ़ना त्याग दिया है 12. सेवक 13. इनस=इनसान, मलाइक=मलक का बहुवचन है जिसका अर्थ है देवतागण।

सर कदमां दे उत्ते धरदे, सभ तों वडी ओह सरकार।
जो कोई उस नूं लखिया चाहे, बाझ वसीले[1] लखिया न जाए।
शाह अनाइत भेत बताए, तां खुल्ले सभ इसरार[2]।

(फ़कीर मुहम्मद : '**कुल्लियात**', 152)

चीना ईं छड़ींदा यार

साईं बुल्लेशाह की यह काफ़ी पुस्तक के कई संस्करण छप जाने के बाद हमें प्राप्त हुई है। यह पाकिस्तान के प्रसिद्ध कव्वाल पठाना खाँ की गाई हुई है। यह आध्यात्मिक रहस्यों से भरपूर है और विचार करने की दृष्टि से विशेष ध्यान देने के योग्य है।

इस काफ़ी की बोली और बोलने के लहज़े पर मुल्तानी भाषा का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। इसकी बोली कई स्थानों पर बुल्लेशाह की आम काफ़ियों की बोली से कुछ भिन्न है पर इसका ज़ोर और बोलने का लहज़ा बुल्लेशाह का ही है तथा इसमें वर्णन किया गया रूहानी अनुभव भी बुल्लेशाह जैसे कामिल सूफ़ी दरवेश का है। ऐसा लगता है कि समय के बीतने पर मुल्तान के कव्वालों ने काफ़ी के शब्दों और अदायगी को मुल्तानी रंग दे दिया, पर मूल कथन साईं बुल्लेशाह का ही प्रतीत होता है।

काफ़ी से प्रकट अनुभव पर ध्यान देना आवश्यक है। टेक के बाद के पहले पद्यांश में आत्मा परमात्मा से कहती है कि जब तूने अपने हुक्म से संसार की रचना की तो मैं तेरे पास थी। मेरे अन्दर जो बुराई पैदा हुई है, वह रचना में आकर मन का साथ लेने के कारण हुई है, अन्यथा तेरी जाति और लिंग में से होने के कारण मेरे अन्तर में वास्तव में कोई मैल न था। आपका अभिप्राय: है कि आत्मा परमात्मा की अंश है। यह परमात्मा की भाँति ही निर्मल, चेतन और आनन्द रूप है। मन का साथ लेने के कारण आत्मा मलिन हो चुकी है।

टेक यह भाव प्रकट करती है कि मन की मलिनता दूर करने का एकमात्र तरीका यह है कि जीव प्रभु के नाम का सुमिरन करे और मुर्शिद (सतगुरु) के स्वरूप का ध्यान करे। इस प्रकार परमात्मा की इबादत या

---

1. साधक अर्थात् सतगुरु 2. रहस्य भेद।

भक्ति का चीना (एक प्रकार का अनाज) छड़ने (साफ़ करने) से आत्मा नफ़स (मन) की मलिनता दूर करके पुनः पवित्र होकर परमात्मा से मिलने के योग्य हो जायेगी। प्रत्येक पद्यांश के बाद टेक इसी भाव पर ज़ोर दे रही है, क्योंकि इसके बिना जीव बन्धन-मुक्त नहीं हो सकता।

दूसरे पद्यांश में यह सुझाव दिया गया है कि परमात्मा की भक्ति का चीना छड़ने के लिये हृदय की ओखली को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आशा-तृष्णा आदि की मिट्टी और कंकर-पत्थर से साफ़ करना आवश्यक है। यह कार्य धैर्यपूर्वक करना है, 'छज्ज सबर दा रक्खी तिआर।'

तीसरे पद्यांश में जीवात्मा खेद प्रकट करती है कि मन रूपी कौआ भक्ति के कार्य में विघ्न डालता है। मन या नफ़स को यहाँ कौआ कहा गया है क्योंकि इसका झुकाव इन्द्रियों के भोगों की गन्दगी की ओर रहता है। यह 'हरामी' शैतान या काल का रूप है और सदा आत्मा को परमात्मा से दूर रखने के कार्य में लगा रहता है।

चौथे अंश में जीवात्मा अपनी एक अन्य मजबूरी का वर्णन करती है। चीना छड़ते समय अंगुलियों में छल्ले चुभते हैं और भारी मूसल उठाई नहीं जाती अर्थात् संसार के ऐश्वर्य या भोगों में लिप्त जीवात्मा को परमात्मा की भक्ति का चीना छड़ना बहुत कठिन लगता है। पर उसे इस बात का पता है कि अगर मैंने भक्ति का चीना न छड़ा तो जूते पड़ेंगे। 'ओ न रखदा मूल उधार' का अभिप्राय है कि धुर-दरगाह में पूरा हिसाब होता है। परमात्मा की भक्ति भुलाने वालों को सज़ा मिलती है और परमात्मा के सच्चे प्रेमियों को उससे मिलाप का आनन्द प्राप्त होता है।

पाँचवें पद्यांश में यह भाव प्रकट किया गया है कि यद्यपि सभी आत्माएँ संसार में आकर परमात्मा से दूर हो चुकी हैं पर जिन जीवों के अन्दर परमात्मा के मिलाप की सच्ची तड़प होती है, वे बाहर से परमात्मा से दूर होने के बावजूद अन्दर से परमात्मा के निकट हैं। जिसके हृदय में परमात्मा के वियोग की बरछी चुभ चुकी है और मन में उसके मिलाप की सच्ची तड़प जाग उठी है, वह हमेशा उस प्रियतम की खोज में विह्वल रहता है। वास्तव में ऐसी आत्मा उस प्रियतम से दूर नहीं है। उसे अपने

प्रिय के दीदार की दात अवश्य मिलती है और उसका उस सच्चे परमात्मा से जो नूर का अथाह स्रोत है, मिलाप अवश्य होता है। उसकी आन्तरिक आँख सदा उसका जलवा देखती है।

छठे पद्यांश में परमात्मा के सच्चे प्रेमियों के बारे में बहुत सूक्ष्म और महत्वपूर्ण संकेत किये गए हैं। परमात्मा के सच्चे प्रेमी अन्तर में ऐसी नमाज़ अदा करते हैं, जिसमें लफ़्ज़ों की ज़रूरत नहीं। यह प्रभु के भक्तों का अन्तर में शब्द या नाम की बांगे-आसमानी या नदाये-सुलतानी से जुड़े होने की ओर संकेत है जिसकी दिव्य ध्वनि बिना बजाये हरएक के अन्दर दिन-रात बज रही है। वह ध्वनि आँखों, कानों या ज़बान का विषय नहीं है। उस ध्वनि को सुन कर वह दृष्यमान संसार की अनेकता से प्रभु-एकता में पहुँच जाते हैं। फिर उनको अपनी आन्तरिक चुप में एक दिव्य दीपक (चराग सकूत) जलता दिखाई देता है। वे अन्तर में शब्द की ध्वनि को सुन कर और शब्द के प्रकाश को देख कर अन्दर ही अन्दर स्वतः सिद्ध परमात्मा का लुकवां (गुप्त) सजदा करते हैं और यही लुकवां या सोया हुआ (खुफता) खाना खाते हैं। तात्पर्य यह है कि शब्द की धुनी और शब्द का प्रकाश उनकी आत्मा की असल खुराक बन जाता है। परमात्मा के कलमे की ध्वनि और प्रकाश में लीन होकर ही उनको परमात्मा के सच्चे प्रेम की समझ आती है। तब उनको यकसूई (एकाग्रता या समाधि) की अवस्था में इस सच्चे प्रेम की सुध-बुध नहीं रहती, 'वल वल दी खबर न काई।'

काफ़ी के सातवें और अन्तिम भाग में परमात्मा के सच्चे प्रेम से परिचित हो चुकी आत्मा प्रभु की बड़ाई करती हुई कहती है : हे मेरे मालिक, तू ऊँचे से ऊँचा है, मुकामे-हक या सचखण्ड का रहने वाला है। तेरी जाति भी ऊँची है और तेरा मुकाम (रहने का स्थान) भी ऊँचा है। मैं संसार की वासी बन चुकी हूँ। मैं भी नीची हूँ और संसार रूपी घर भी नीचा है। तू बुराइयों, पापों से बिलकुल पवित्र और साफ़ है, पर मैं मोह-माया के संसार में फँसी होने के कारण अनेक प्रकार की बुराइयों व पापों (कसूरों) से लिप्त हो चुकी हूँ। मैं केवल तेरी दया-मेहर से ही इन दोषों से भरी (मन-माया की) घाटी को पार करके तेरी ऊँची, निर्मल और

बेकसूर घाटी में वापस पहुँच सकती हूँ।

स्पष्ट है कि काफ़ी में आत्मा के मूल, आत्मा और परमात्मा के रिश्ते, आत्मा और परमात्मा के मध्य नफ़स (मन) की रुकावट, आत्मा को लगी काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की मैलों, इनको दूर करने के लिये परमात्मा की सच्ची भक्ति के चीने को छड़ने (साफ़ करने) की ज़रूरत, इस भक्ति में परमात्मा के नाम के सुमिरन और मुर्शिद के ध्यान की आवश्यकता, सुमिरन और ध्यान से प्राप्त होने वाली पूर्ण एकाग्रता की अवस्था और इस अवस्था में अन्दर सुनाई देने वाली शब्द की ध्वनि और दिखाई देने वाले शब्द के प्रकाश आदि के बारे में अनेक संकेत किये गए हैं। इसमें परमात्मा को नूर का चश्मा कहा गया है और आत्मा के अन्तर में शब्द की धुनी और शब्द के प्रकाश में लीन करने को ही परमात्मा की सच्ची भक्ति या सच्चे प्रेम का दर्जा दिया गया है। निःसन्देह इस काफ़ी में न केवल साईं बुल्लेशाह के विशुद्ध आध्यात्मिक अनुभव का, बल्कि सभी पूर्ण सन्तों के आध्यात्मिक दर्शन का अति सुन्दर सार मिल जाता है :

चीना[1] ईं छड़ींदा या। चीना ईं ....
वज्जे अल्ला वाली तार। वज्जे मुरशद वाली तार।
वज्जे साईंआं वाली तार, चीना ईं ....
कुन फ़यकून फ़रमाया जदां, असां कोल तुसाडे हासे।
नफ़स पलीत पलीत कीता, असां असल पलीत न हासे।
फुरकत खैर ख़राब कीता, न तां ज़ाती हासे खासे।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ....
पहले ओखली साफ़ कराई, रोड़ा, मिट्टी, धूड़ हटाई।
फिर ओखली विच चीना पाई, छज्ज सबर दा रक्खी तिआर।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ....
कां हरामी छड्डन न दिंदा, उडदा पिछ्छा झाट मरेंदा।
कीता कम खराब करेंदा, उड जा कावां विच पलकार।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ....
उंगलियां दे विच चुभ्भन छल्ले, भारी मोहली मूल न हल्ले।

1. एक प्रकार का अनाज।

जे न छड़सें लगसन खल्ले, ओह न रखदा मूल उधार।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ....
इक हज़ूरों दूर थए, कई दूरों रहन हज़ूरे।
तांघ लग्गी दिल सांग मिसल, दिल भाले ओह नित ज़रूरे।
जो दिल भाले तिस दा माही, ओह नहीं अख्खियां तों दूरे।
सिकदे खैर कूं खैर मिलिया, फिर खुद खैर माही ओह नूरे।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ....
आशक इश्क नमाज़ हमेशा, ला हरफों करन अदाईं।
सुन्नत नफ़ल फ़रज़ वाजब, उन्नां समझ गिधी यकताई।
चराग सकूत ते सजदा खुफीआ, इहो ख़ुफता खाना चाही।
खबर इश्क दी खैर मिली, वल वल दी खबर न काई।
चीना ईं छड़ींदा यार। वज्जे ....
तुसी वी उच्चे तुहाडी जात वी उच्ची, तुसी विच उच्च देरहिंदे।
असी कसूरी साडी ज़ात कसूरी, असी विच कसूर दे रहिंदे।
*बुल्लेशाह तां सच...................

---

*जिस टेप से इस काफ़ी को लिया गया है, उस पर यह पंक्ति इतनी ही सुनी जा सकी है। इस काफ़ी का एक रूपान्तर पुस्तक के पृ. 23–24 पर दिया गया है जो हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी की प्रसिद्ध पुस्तक 'परमार्थी साखियाँ' में से लिया गया है।

बारहमाह

बारहमाह पंजाबी लोक-काव्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हिन्दी में इसका प्रचलन पहली बार मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'पदमावत' में किया था। बारहमाह से भाव वर्ष के बारह महीनों से है। विभिन्न कवियों एवं सन्तों ने इस काव्य-विधा को अपनाया है। इसमें प्रायः विरहिणी अपने प्रियतम से मिलाप के लिये वियोग के समय की विरह-व्यथा का वर्णन करती है। हर महीने की ऋतु और स्थिति के अनुसार वियोग की दशा का चित्रण करना ही कवि का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

साईं बुल्लेशाह ने भी बारहमाह की रचना की है। वे आश्विन मास से बारहमाह शुरू करते हैं। व्याकुल विरहिणी अपने प्रियतम को सन्देश भेजती है। वह बिरह-व्यथा में ग्रस्त है और प्रेम नगर की उलटी चालों को ही अपने वियोग का कारण बताती है। प्रत्येक महीने के प्रारम्भ में एक दोहा है। उसके बाद की पंक्तियाँ उसी भाव की पुष्टि के लिये उदाहरण स्वरूप दी गई हैं :

आश्विन

अस्सू लिखूं संदेसड़ा वाचे मेरा पी[1]।
गमन किया[2] तुम काहे को जो कल मल आया जी।
अस्सू असां तुसाडी आस, साडी जिंद तुसाडे पास।
जिगर[3] मुढ प्रेम दी लास, दुख्खां हड सुकाए मास,
सूलां साड़ियां।

---

1. मेरा सन्देश (संदेसड़ा) मेरा प्रियतम ही पढ़े 2. गमन किया=चले जाना 3. दिल।

सूलां साड़ी रही बेहाल, मुट्ठी[1] तदों न गइयां नाल।
उलटी प्रेम नगर दी चाल, बुल्ला शहु दी करसां भाल,
प्यारे मारिया।

कार्तिक

कहो कतक कैसी जो बणिओ कठन से भोग[2]।
सीस कप्पर हत्थ जोड़ के मांगूं भीख संजोग[3]।
कत्तक क्या तुंबण कत्तण, लग्गी चाट तां होया अत्तण[4]।
दर दर लगे धंमा घत्तन, औखी घाट पुचाए पत्तण[5],
शाम वास्ते।
हुन मैं मोई बेदरद लोका, कोई दिओ उच्ची चड़ के होका।
मेरा उन संग नेहु चरोका, बुल्ला शहु बिन जीवन औखा[6],
जांदा पास ते।

मार्गशीष

मघ्घर मैं कर रहीआं सोध के सभ ऊंचे नीचे वेख।
पढ़ पंडत पोथी भाल रहे हर हर से रहे अलेख[7]।
मघ्घर मैं घर किध्धर जांदा, राकश नेहूं हड्डां नूं खांदा[8]।
सड़ सड़ जीअ पिआ कुरलांदा, आवे लाल किसे दा आंदा,
बांदी[9] हो रहां।
जो कोई सानूं यार मिलावे, सोज़े अलम थीं सरद करावें[10]।
चिखा तों बैठी सती उठावे, बुल्लाशहु बिन नींद न आवे,
भावें सो रहां।

---

1. लूटी 2. कार्तिक में सिर पर आई मुसीबत को भोगना पड़ेगा।
3. हाथ में सिर का प्याला लेकर मिलाप की भीख माँग रही हूँ।
4. अत्तण=दुःख; विरह की सताई हुई को कातना, तुँबना अच्छा नहीं लगता।
5. प्रियतम (श्याम) से आग्रह करती हूँ कि पार उतार दे।
6. प्रियतम से धुर का प्रेम है। उसके बिना जीवन असम्भव है।
7. हरि सबसे निर्लिप्त है 8. प्रेम (नेहं) रूपी जिन्न (राक्षस) हड्डियों का खौ है 9. दासी, सेविका, 10. सोज़े अलम=चिन्ता का दुःख, सरद करावे=ठण्ड पाना, छुड़ाना।

पौष

पोह हुन पूछूं जा के तुम न्यारे क्यों मीत[1]।
किस मोहन मन मोह लिया जो पत्थर कीनो चीत।
पानी पोह पवन भट्ठ पइआं, लद्दे होत तां उघड़ गइआं[2]।
न संग मापे सज्जन सइआं, प्यारे इश्क चवाती लइआं,
दुखां रोलिआं।
कड़ कड़ कप्पड़ कड़क डराए, मारू थल विच बेड़े पाए[3]।
जिउंदी मोई नी मेरी माए, बुल्ला शहु क्यों अजे न आए,
हंझू डोहलिआं।

माघ

माघी[4] नहावन मैं चली जो तीरथ कर सामान।
गज गज बरसे मेघला[5] मैं रो रो करां स्नान।
माघ महीने गए उलांघ, नवीं मुहब्बत बहुती तांघ,
इश्क मुअज़न दित्ती बांग, नवीं निमाज़ पिया दी तांघ[6],
दुआई[7] की करां।
आखां प्यारे मैं वल आ, तेरे मुख वेखन दा चाअ।
भावें होर तत्ती नूं ताअ, बुल्ला शहु नूं आन मिला,
तेरी हो रहां।

---

1. तेरा मन किसने मोह लिया है जो तू हमारी ओर से पत्थर दिल हो गया है और कोई ध्यान नहीं देता।

2. होत=पुन्नूँ, उघड़ गइआं=वास्तविकता प्रकट हो गई है। जब पुन्नूँ को ऊँटों पर लाद कर ले गये तो प्रेम की वास्तविकता प्रकट हो गई।

3. मरुस्थल में बेड़ा अटक गया, पार उतारे का कोई साधन ही न रहा।

4. हिन्दू लोग माघ के महीने में तीर्थों, कुँओं और सरोवरों में स्नान करने को शुभ समझते हैं 5. बादल, 6. मुअज़न=बाँग देने वाला मौलवी : प्रेम रूपी मौलवी ने बाँग दी है अर्थात् अन्दर प्रेम शोर मचा रहा है 7. प्रार्थनाएँ, विनतियाँ।

फाल्गुण

फग्गन फूले खेत ज्यों वन तिन फूल शिंगार।
हर डाली फुल पत्तियां गल फूलन के हार।
होरी खेलन सइआं फग्गन, मेरे नैन झलारी[1] वग्गन।
औखे जीउंदियां दे दिन तग्गन[2], सीने बाण प्रेम दे लग्गन,
होरी हो रही।
जो कुझ रोज़े-अज़ल थीं होई, लिखी कलम न मेटे कोई[3]।
दुख्खां सूलां दित्ती ढोई, बुल्ला शहु नूं आखो कोई,
जिस नूं रो रही।

चैत्र

चेत चमन[4] विच कोयलां, नित कू कू करन पुकार।
मैं सुन सुन झुर झुर मर रही, कब घर आवे यार।
हुन की करां जो आया चेत, बन तिनन फूल रहे खेत।
देंदे अपना अन्त न भेत, साडी हार तुसाडी जेत,
हुन मैं हारियां।
हुन मैं हारिया अपना आप, तुहाडा इश्क असाडा खाप।
तेरे नेहुं दा शूकिया ताप, बुल्ला शहु की लाया पाप,
कारे हारियां।

बैशाख

बिसाखी दा दिन कठिन है जे संग मीत न हो।
मैं किस के आगे जा कहूं इक मंडी भा दो।
तां मन भावे सुख बसाख गुच्छीआं पइआं पक्की दाख[5]।
लाखी लै घर आया लाख तां मैं बात सकां आख,
काउंता[6] वालिआं।

1. धार 2. दिन कठिनाई से व्यतीत होते हैं 3. रोज़े अज़ल=जिस दिन संसार सृजा गया; कलम=लेख; अर्थात् विधाता या कर्मों का लिखा कोई मिटा नहीं सकता 4. बाग़ 5. अंगूरों के गुच्छे पक चुके हैं 6. काउंता=कन्त।

कौंतां वालिआं डाहडा ज़ोर, हुन मैं झुर झुर होईं आं मोर।
कंडे पुड़े कलेजे ज़ोर, बुल्ला शहु बिन कोई न होर,
जिन घत्त गालिआं।

ज्येष्ठ

जेठ जेही मोहे अगन है जब के बिछड़े मीत।
सुन सुन घुण घुण झुर मरों जो तुमरी ये प्रीत।
लोआं धुप्पां पैंदीआं जेठ, मजलिस बहिंदी वागां हेठ[1]।
तत्ती ठंडी वग्गे पेठ[2], दफ़्तर कढ्ढ पुराने सेठ,
महुरा खानी आं[3]।
अज्ज कल्ह सद्द होई अलबत्ता[4], हुन मैं आह कलेजा तत्ता।
न घर कौंत न दाना भत्ता, बुल्ला शहु होरां संग रत्ता,
सीने कानी आं[5]।

आषाढ़

हाढ़ सोहे मोहे झट पटे जो लग्गी प्रेम की आग।
जिस लागे तिस जल बुझे ज्यों भौर जलावे भाग[6]।
हुन की करां जो आया हाड़, तन विच इश्क तपाया भाड़[7]।
तेरे इश्क ने दित्ता साड़, रोवन अख्खियां करन पुकार,
तेरे हावड़े[8]।
हाड़े घत्तां शामी अग्गे, कासद[9], लै के पत्तर[10] वग्गे।
काले गए ते आए बग्गे[11], बुल्ला शहु बिन ज़रां न तग्गे[12],
शामी बहवड़े[13]।

श्रावण

सावण सोहे मेघला घट सोहे करतार[14]।
ठौर ठौर अनायत बस्से पपीहा करे पुकार।

---

1. लोग इकट्ठे होकर वृक्ष की छाया के नीचे बैठते हैं 2. हवा 3. विष खाती हूँ 4. दु:खी, दशा खराब हो गई है, 5. मेरे कलेजे में तीर लगते हैं 6. प्रेमी भँवरे की भाँति जल मरता है 7. भट्ठी 8. विछोड़े 9. सन्देशवाहक 10. चिट्ठी, पत्र 11. काले बालों के स्थान पर सफेद बाल आ गये हैं 12. प्यार के बिना बल नहीं है 13. प्रियतम बुढ़ापे में पहुँचे 14. देखिये पृ. 22.

सोहन मलिहारां सारे सावन, दूती दुख्ख लगे उठ जावन।
नींगर[1] खेडन कुड़ियां गावन, मैं घर रंग रंगीले आवन,
आसां पुंनीआं[2]।
मेरियां आसां रब्ब पुचाइआं, मैं तां उन संग अखियां लाइआं।
सईआं देन मुबारक आइआं, शाह अनायत आखां साइआं,
आसां पुंनीआं।

भ्राद्रपद

भादों भावे तब सखी जो पल पल होवे मिलाप।
जो घट देखूं खोल के घट घट दे विच आप।
आ हुन भादों भाग जगाया, साहिब कुदरत सेती आया।
हर हर दे विच आप समाया, शाह अनायत आप लखाया,
तां मैं लखिया।
आखर उमरे होई तसल्ला[3], पल पल मंगन नैन तजल्ला[4]।
जो कुझ होसी करसी अल्ला, बुल्ला शहु बिन कुझ न भल्ला[5],
प्रेम रस चखिया।

---

1. लड़के 2. आशाएँ पूरी हुई 3. साँत्वना, तसल्ली, सहारा 4. नूर, प्रकाश भाव दीदार 5. मैंने परमात्मा के प्यार का रस चख कर देख लिया है कि परमात्मा के बिना कुछ अच्छा (भल्ला) या मन को खुश करने वाला नहीं है।

सीहरफ़ी

सीहरफ़ी काव्य का एक रूप है। जिस प्रकार हिन्दी में बावन अक्षरी लिखने की प्रथा थी, उसी प्रकार उर्दू और फ़ारसी में तीस अक्षरों के अनुसार सीहरफ़ी लिखने का रिवाज रहा है। बाद में पंजाबी में भी यह प्रयोग प्रचलित हो गया। बुल्लेशाह ने भी सीहरफ़ी की रचना की। साईं जी की तीन सीहरफ़ियाँ मिलती हैं। काव्य की दृष्टि से इन तीनों में अन्तर पाया जाता है। सीहरफ़ी का मुख्य विषय सूफ़ीमत है। यहाँ एक सीहरफ़ी का कुछ भाग दिया गया है:

लागी रे लागी बल बल जावे[1]।
इस लागी को कौन बुझावे।

अलिफ़—अल्ला जिस दिल पर होवे, मुंह ज़रदी[2] अख्खीं लहू भर रोवे।
जीवन अपने तों हत्थ धोवे, जिस नूं बिरहों अग्ग लगावे।
लागी रे लागी बल बल जावे।

बे—बालण मैं तेरा होई, इश्क नज़ारे आन वगोई[3]।
रोंदे नैन न लैंदे ढोई, लून फट्टां ते कीकर लावे।
लागी रे लागी बल बल जावे।

ते—तेरे संग प्रीत लगाई, जीव ज़ामे दी कीती साईं[4]।
मैं बकरी तुध कोल कसाई, कट कट मास हड्डा नू खावे।
लागी रे लागी बल बल जावे।

से—साबत[5] नेहुं लाया मैनू, दूजा कूक सुनावां कीहनूं।
रात अध्धी उट्ठ ठिलदी नै नूं कूंजां वांग पई कुरलावे[6]।
इस लागी को कौन बुझावे।

---

1. प्रेम की आग लग गई 2. मुँह पीला पड़ जाता है 3. प्रेमी के दर्शन ने मेरी सुध-बुध छीन ली है 4. जीव=आत्मा, जामे=शरीर; अर्थात् प्रेम के लिये तन व मन न्योछावर करने के लिये तैयार हूँ 5. साबत=पूरा 6. नैं=नदी; अर्थात् सोहनी की भाँति प्रेम-नदी को तरने का यत्न करती है।

जीम—जहानों होई सां न्यारी, लगा नेहुं ता होए भिकारी।
नाल सरों दे बने पसारी, दूजा दे मिहने जग तावे[1]।
इस लागी को कौन बुझावे।

हे—हैरत विच शांत नाहीं, ज़ाहर बातन मारन ढाही[2]।
झात घत्तण नू लावन वाही, सीने सूल प्रेम की धावे[3]।
इस लागी को कौन बुझावे।

खे—खूबी हुन ओह न रहिया, जब की सांग[4] कलेजे सहिया।
आहीं नाल पुकारां कहिया, "तुध बिन कौन जो आन बुझावे"।
इस लागी को कौन बुझावे।

दाल—दूरों दुख्ख दूर न होवे, फ़क्कर फ़र्राकों[5] बहुता रोवे।
तन भट्ठी दिल खिल्लां धनोवे, इश्क अख्खां विच मिरचां लावे[6]।
इस लागी को कौन बुझावे।

ज़ाल—ज़ौक दुनिया ते इत न करना, खौफ़ हशर दे थीं, डरना[7]।
चलना नबी साहिब दे सरना, ओड़क जा हिसाब करावे।
इल लागी को कौन बुझावे।

रो—रोज़ हशर कोई कहे न खाली, लए हिसाब दो जग्ग दा वाली।
ज़ेर[8] ज़बर सब भुल्लन वाली, तिस दिन हज़रत आप छुड़ावे।
इस लागी को कौन बुझावे।

ज़े—ज़ुहद कमाई चंगी करीए, जेकर मरन तों अग्गे मरीए[9]।
फिर मोए भी उस तों डरीए, मत मोइयां नूं पकड़ मंगावे।
इस लागी को कौन बुझावे।

सीन—साईं बिन जा न कोई, जित्त वल वेखां ओही ओही।
होर किते वल मिले न ढोई, मुर्शिद मेरा पार लंघावे।
इस लागी को कौन बुझावे।

---

1. जलाये 2. मैं परेशान (हैरत विच) हूँ, मुझे ठण्ड नहीं लगती 3. झात=दर्शन, वाही=ज़ोर; उसका दीदार करने के लिये ज़ोर लगाते हैं 4. बरछी, कटार 5. फ़िराक=वियोग, विछोड़ा; प्रेमी (फ़कीर) को विछोड़ा दुःखी करता है 6. तन की भट्ठी में दिल के दाने भुनते हैं 7. संसार से इतना प्यार न करना, मौत से डरना 8. ज़ेर, ज़बर=छोटा-बड़ा 9. ज़ुहद=तप, भक्ति; अर्थात् नेक कमाई करते हुए भक्ति करो।

गंढाँ

प्राचीन काल में विशेष रूप से पंजाब में जब लड़की के विवाह का मुहूरत निकाला जाता था तो लड़के वाले लग्न को पक्का करने के लिये लड़की वालों के घर एक रेशमी धागे को उतनी गाँठे डाल कर भेजते थे, जितने दिन विवाह में शेष रहते थे।

वास्तव में 'गंढाँ' भी काव्य का एक प्रचलित रूप रहा है। बुल्लेशाह ने परमात्मा से मिलाप की अपनी घड़ी की लग्न विवाह के मुहूरत से तुलना की है। 'सुरती' से भाव जीवात्मा से है और 'काज' से अभिप्राय परलोक जाने की लग्न से है। ये सब वर्णन सांकेतिक हैं। यहाँ साईं बुल्लेशाह की चालिस गंढों में से कुछ उदाहरण के रूप दी गई हैं:

"कहो सुरती[1] गल्ल काज दी मैं गंढां केतीआं पाऊं?
साहे[2] ते जंज आवसी हुन चाहली गंढ घताऊं[3]"।
बाबल आखिया आन के, "तै साहवरिया घर जाना।
रीत ओथों दी और है मुड़ पैर न एथे पाना"।
गंढ पहिली नूं खोल्ह के मैं बैठी बरलावां[4]।
ओड़क जावन जावना हुन मैं दाज रंगावां।
देखूं तरफ बाजार दी सभ रस्ते लागे।
पल्ले नाहीं रोकड़ी सभ मुझ से भागे।
दूजी खोलूं क्या कहूं दिन थोड़े रहिंदे।
सूल सभ्भे रल आंवदे सीने विच बहिंदे।
झल्ल वलल्ली मैं होई तुंब कत्त न जाना।
जंज़ ऐंवें रल आवसी ज्यों चढ़दा थाना।

---

1. आत्मा 2. लग्न; विवाह का दिन 3. डालना 4. बिलखना।

तीजी खोहलूं दुख से रोंदे नैन न हटदे।
किस नूं पुछ्छां जाइ के दिन जांदे घटदे।
गुण वालियां सभ प्यारियां मैं को गुण नाहीं।
हत्थ मंले मल सिर धरां मैं रोवां ढाईं।
पंजवीं खोहलूं कूक के कर सोज पुकारां।
पहिली रात डरावनी क्यों दिलों विसारां ?
मुद्दत थोहड़ी आ रही किवें दाज बनावां ?
जा आखों घर साहवरे गंढ लाग वधावां।
याहरां गंढां खोहलियां मैं हिजरे मारी।
गइआं सइआं साहवरे हुन मेरी वारी।
बांह सरहाने दे कदी असीं मूल न साउंदे।
फट्टां उत्ते लून है फट्ट सिंमदे लाउंदे।
सोल्हां गंढीं खोहलिआं मैं होई निमानी।
एथे पेश किसे न जासी न अग्गे जानी।
एथे आवन केहा ए होया जोगी दा फेरा।
अग्गे जा के मारना विच कल्लर डेरा।
बाईं खोहलूं पहुंच के सभ मीरां मलकां[1]।
ओहना डेरा कूच है मैं खोहलां पलकां।
अपना रहिना की करां किहड़े बाग दी मूली।
खाली जग विच आइके सुपने पर भूली।
सताई खोल्ह सहेलियो सभ जतन सिधाया।
दो नैनां ने रोंदिआं मींह सावन लाया।
इक इक साइत[2] दुख्ख दी सौ जतन गुज़ारी।
अग्गे जाना दूर है सिर गठड़ी भारी।
बुल्ला पैंती खोहलदी शहु नेड़े आए।
बदले इस अज़ाब[3] दे मत मुख दिखलाए।

---

1. शासक, राजा सदा नहीं रहे 2. घड़ी 3. दुःख।

अग्गे थोड़ी पीड़ सी नेहुं कीता दीवानी।
पी गली असाड़ी आ वड़े तां होग आसानी।
सैंती गंढीं खोहलियां, मैं महिंदी लाई।
मलाइम देही मैं करां मत गले लगाई।
उहा घड़ी सुलख्खणी जा मैं वल आवे।
ता मैं गावां सोहिले जे मैनूं रावे।
अठत्ती गंढी खोहलियां किह करने लेखे।
न होवे काज सुहावना बिन तेरे वेखे।
तेरा भेत सुहाग है मैं उस किह करसां।
लैसां गले लगाके पर मूल न डरसां।
उनताली गंढी खोहलियां सभ सइआं रल के।
'अनायत'[1] सेज ते आवसी हुन मैं वल फुल के।
चूड़ा बाहीं सिर धड़ी हत्थ सोहे कंगणा।
रंगण चढी शहु वसल दी मैं तन मन रंगणा[2]।
कर बिसमिल्लाह खोहलियां मैं गंढां चाली[3]।
जिस अपना आप वंजाया सो सुरजन वाली[4]।
जंज सोहनी मैं भाउंदी लटकेंदा आवे।
जिस नूं इश्क है लाल दा सो लाल हो जावे।
अकल फिकर सभ छोड़ के शहु नाल सुधाए।
बिन कहनों गल्ल ग़ैर दी असां याद न काए।
हुन इंना-लिलाह आख के तुम करो दुआईं[5]।
पिया ही सब हो गया अब्दुल्ला नाहीं[6]।

---

1. अनायत=हज़रत इनायत शाह 2. तन व मन प्रेम और मिलाप की खुशी के रंग में रंग गया 3. परमात्मा का नाम ले कर गाँठे खोल रही हूँ, भाव विवाह के लिये तैयार हो रही हूँ 4. वंजाया=दूर किया, सुरजन=देवता; भाव तेरा प्रियतम अहम् मिटा कर सिद्ध पुरुष बन चुका है 5. इंना-लिलाह=हम परमात्मा के बंदे हैं। पाठ इंना-लिलाह के स्थान पर 'इक अलाह' भी मिलता है 6. बुल्लेशाह का असली नाम अब्दुला था, देखिये पृ. 11.

अठवारा

प्राचीनकाल में बारहमाह की भाँति 'अठवारा' भी लिखने की प्रथा थी। इसमें सप्ताह के दिनों के माध्यम से काव्य-रचना की जाती है। साईं बुल्लेशाह ने अठवारा का आरम्भ शनिवार (छनिछरवार) से किया है, जिसका अन्तिम दिन जुम्मा (शुक्रवार) है। मुसलमानों में इस दिन का विशेष महत्व है। यह एक धार्मिक पूजा का दिन माना जाता है और इस दिन नमाज़ पढ़ने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। साईं बुल्लेशाह के इस अठवारा का विषय सतगुरु के वियोग में विरहिणी के हृदय की तड़प का वर्णन है। सात दिनों को अठवारा बनाने के लिये इस रचना के अन्त में 'जुम्मा' की महिमा में एक काफ़ी 'जुम्मे दी होवे बहार' देकर साईं जी ने मिलाप के क्षणों पर प्रसन्नता प्रकट की है:

छनिछरवार उतावले[1] वेख सज्जन दी सो[2]।
असां मुड़ घर फेर न आवना जो होइ होग सो हो[3]।
वाह वाह छनिछरवार वहेले[4] दुख्ख सज्जन दे मैं वल पेले[5]।
ढूंढा औझड़[6] जंगल बेले[7], ओहड़ां रैन कवल्लड़े वेले,
बिरहों घेरीयां।
खड़ी तांघ[8] तुसाडिआं तांघां, रातीं सुतड़े शेर उलांघां[9]।
उच्ची चढ़ के कूकां चांघां[10], सीने अंदर रड़कण सांगां[11],
प्यारे तेरियां।

---

1. व्याकुल 2. समाचार, सन्देश 3. बार-बार मनुष्य-जन्म नहीं मिलता। जो कुछ करना है अब कर लेना चाहिये 4. विष भरे 5. भेजे 6. जंगल 7. सुनसान 8. प्रतीक्षा 9. गुजरती हूँ 10. चीखती है 11. हृदय में बरछी चलती हैं।

ऐतवार सुनैत[1] है जो जो कदम धरे।
ओह वी आशिक न कहो सिर देंदा उज़र[2] करे।
ऐत ऐतवार भाइत, विच्चों जाइ हिजर दी साइत[3]।
मेरे दुख दी सुने हकाइत[4], आ अनाइत करे हदाइत,
तां मैं तारियां।
तेरी यारी जही न यारी, तेरे पकड़ विछोड़े मारी।
इश्क तुसाडा कियामत सारी, तां मैं होई आं वेदन भारी,
कर कुझ कारियां।
बुल्ला रोज सोमवार दे क्या चल चल करे पुकार।
अग्गे लख्ख करोड़ सहेलियां मैं किस दी पानीहार।
मैं दुखिआरी दुख्ख सवार, रोना अख्खियां दा रुज़गार[5]।
मेरी खबर न लैंदा यार, हुन मैं जाता मुरदे मार[6],
मोइआं नूं मारदा।
मेरी ओसे नाल लड़ाई, जिसने मैनूं बरछी लाई।
सीने अन्दर भाह भड़काई,[7] कट्ट-कट्ट खाई बिरहों कसाई,
पछाइआ[8] यार दा।
मंगल मैं गल पानी आ गया, लबां[9] ते आवनहार।
मैं घुम्मन घेरां घेरियां, ओह वेखे खला किनारा[10]।
मंगल बंदीवान[11] दिलां दे, छट्टे शहु दरिआवां पांदे।
कप्पर[12] कड़क दुपहिरी खांदे, वल वल गोतियां दे मुंह आंदे,
मेरे यार दे।
कंढे वेखे खला तमाशा, साडी मरग[13] ओहना दा हासा।
दिल मेरे विच आया सू आसा, वेखां देसी कदों दिलासा,
नाल प्यार दे।

---

1. खोपड़ी 2. इनकार 3. ऐतवार अच्छा लगने लग यदि विछोड़े की घड़ी दूर हो जाये 4. कहानी। 5. खुराक अर्थात् आदत 6. मरे हुए को मारने वाला 7. आग लगा दी 8. घायल 9. होंठ 10. वह किनारे खड़ा मुझ डूबती हुई को देख रहा है 11. बन्दी 12. लहरें 13. मृत्यु।

बुध सुध रही महिबूब दी, सुध अपनी रही न होर।
मैं बलिहारी ओस दे, जो खिचदा मेरी डोर।
बुध सुध आ गया बुधवार, मेरी खबर न लए दिलदार।
सुख दुख्खां तों घत्तां वार, दुख्खां आन मिलाया यार,
प्यारे तारियां।
प्यारे चल्लन न देसां चल्लियां, लै के नाल ज़ुलफ़ दे वल्लियां।
जां ओह चल्लियां तां मैं छल्लिया, तां मैं रखसां दिल विच रलियां,
लैसां वारियां।
जुम्मेरात[1] सुहावनी दुख्ख दरद न आहा पाप।
ओह जामा साडा पहिन के आया तमाशे आप।
अग्गों आ गई जुम्मेरात, शराबों गागर मिली बरात[2]।
लग्ग गया मस्त प्याला हाथ, मैनूं भुल्ल गई ज़ात-सफ़ात[3],
दीवानी हो रही।
ऐसी ज़हिमत[4] लोक न पावन, मुल्लां घोल तवीज़ पिलावन।
पढ़ना अज़ीमत[5] जिन बुलावन, सइआं शाह मद्दार[6] खिडावन,
मैं चुप्प हो रही।
रोज़ जुम्मे[7] दे बख्शियां मैं जेहियां औउगुनुहार।
फिर ओह क्यों न बख्शसी जिहड़ी पंज-मुकीम-गुज़ार[8]।
जुम्मे दी होरो होर बहार, हुन मैं जाता सही सत्तार[9]।
बीबी बांदी बेड़ा पार, सिर ते कदम धरेंदा यार,
सुहागन हो रही।
आशिक हो ही गल्लां दस्सें, छोड़ मशूकां कैं वल्ल नस्सें।
बुल्ला शहु असाडे वस्सें, नित्त उठ्ठ खेड़े नाले हस्सें,
गल लग्ग सो रही।

---

1. बृहस्पतिवार 2. बरात=दौलत, मिली शराब की गागर=अमृत का स्रोत मिल गया 3. अपना आप और गुण 4. ज़हिमत =मुसीबत 5. मन्त्र (अज़ीमत)पढ़ कर 6. एक करामाती फ़कीर 7. शुक्रवार 8. पाँच पड़ाव पार कर चुकी 9. परदा डालने वाला।

जुम्मा

जुम्मे दी होरो होर बहार।
पीर असानूं पीड़ां लाइआं, मंगल मूल न सुरतां आइयां।
इश्क छनिछर घोल घुमाइयां, बुध सुध लैंदा नहिओं यार।
जुम्मे दी होरो होर बहार।
पीर वार रोज़े ते जावां, सभ पैगंबर पीर मनावां[1]।
जद पिया दा दरशन पावां, करदी हार शंगार।
जुम्मे दा होरो होर बहार।
मनतक मान्हे पढां न असलां, वाजब फ़रज न सुन्नत नकलां[2]।
कम किस आइयां शरहा दीआं अकलां, कुझ नहीं बाझों दीदार[3]।
जुम्मे दी होरो होर बहार।
शाह अनायत दीन असाडा, दीन दुनी मकबूल असाडा[4]।
खुथी मींडी दसत परांदा, फिरां उजाड़ उजाड़[5]।
जुम्मे दी होरो होर बहार।
भुली हीर सलेटी[6] मरदी, बेले माही माही करदी।
कोई न मिलदा दिल दा दरदी, मैं मिलसां रांझण नाल।
जुम्में दी होरो होर बहार।
बुल्ला भुल्ला नमाज दुगाना, जद दा सुनिया तान तराना[7]।
अकल कहे मैं ज़रा न मानां, इश्क कूकेंदा तारो तार[8]।
जुम्मे दी होरो होर बहार।

1. वीरवार को बृहस्पतिवार या गुरुवार भी कहते हैं। रोज़ा=मज़ार, कब्र या समाधि, सम्भव है कि आत्मा को शरीर रूपी कब्र में से समेट कर अन्दर सतगुरु के दर्शन करने की ओर संकेत कर रहे हों 2. मनतक=तर्क से रूहानी समस्या को हल करना; मान्हे=कुरान शरीफ़ का शब्दार्थ और व्याख्या, असलां=बिलकुल, वाजब=वे इस्लामी नियम जिन पर चलना आवश्यक है, फ़रज़=जिन नियमों को आवश्यकता अनुसार छोड़ा जा सकता है, सुन्नत=जिन नियमों पर हज़रत मुहम्मद स्वयं चलते थे 3. परमात्मा के दर्शन न हों तो इन सबका क्या लाभ है ? 4. सतगुरु दीन और दुनिया—दोनों को परवान चढ़ाने वाला है 5. खुले बालों से परांदा हाथ में लिये मैं राँझा के लिये पागल हुई फिरती हूँ 6. हीर को सलेटी भी कहा जाता है 7. तान तराना=अनहद शब्द, दुगाना=शुक्राने की नमाज़ 8. मैं बुद्धि का थोड़ा भी कहना नहीं मानती, मेरा रोम-रोम प्रेम ही प्रेम पुकार रहा है।

दोहे

अन्य सन्त कवियों की भाँति सूफ़ी फ़कीरों ने भी दोहे लिखे हैं। दो पंक्तियों में ही रचनाकार एक गूढ़ रहस्य छिपा देता है जिससे प्रभु-भक्त रस का आनन्द प्राप्त करते है। साईं बुल्लेशाह के दोहे कई प्रकार के हैं। कुछ में विशुद्ध आध्यात्मिकता का स्वरूप दिखाई देता है और कुछ में सूफ़ी विचारधारा की प्रत्यक्ष झलक मिलती है। इनके बहुत-से दोहे तो लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हैं। यहाँ कुछ प्रसिद्ध दोहे दिये गए है:

आई रुत्त शगूफ़ियां वाली, चिड़ियां चुगन आइआं[1]।
इकना नूं जुररिआं फड़ खाधा, इकना फाहीआं लाइआं[2]।
इकना आस मुड़न दी आहे, इक सीख कबाब चढ़ाइयां[3]।
बुल्लेशाह की वस्स ओनां, जो मार तकदीर फसाइआं[4]।
होर ने सभ्भ गल्लड़ियां, अल्लाह अल्लाह दी गल्ल।
कुझ रौला पाया आलमां, कुझ काग़जां पाया झल्ल।
बुल्लिआ मैं मिट्टी घुमिआर दी, गल्ल आख न सकदी एक।
ततड़ मेरा क्यों घड़िया, मत जाए अलेक-सलेक[5]।

---

1. यहाँ होनी या भाग्य का और संसार में हर ओर फैले मौत और काल के जाल का वर्णन किया गया है। संसार रूपी बाग़ में मनुष्य-जन्म शगूफ़ियों वाली ऋतु है। जीव (चिड़ियाँ)संसार में कार्यशील होने के लिये उतरते हैं।

2. जुररे=बाज़, कुछ चिड़ियों का बाज़ (यमदूत) खा गये, कुछ (माया और भोगों की)फाँसी में फँस गई।

3. कुछ जीवों के अन्दर निज घर वापस पहुँचने की आशा है और कुछ (किये हुए कर्मों के कारण) दुःख भोग रहे हैं।

4. जिनको (किये हुए कर्मो से उत्पन्न) तकदीर ने मार दिया, उनके कुछ भी वश में नहीं।

5. जान-पहचान।

बुल्ला कसर नाम कसूर है, ओथे मूंहों न सकन बोल।
ओथे सच्चे गरदन-मारीए, ओथे झूठे करन कलोल।
बुल्लिआ कसूर बेदस्तूर, ओथे जाना बनिया ज़रूर।
न कोई पुंन दान है, न कोई लाग दस्तूर।
बुल्लिआ आउंदा साजन वेख के, जांदा मूल न वेख।
मारे दरद फ़राक दे, बन बैठे बाहमण शेख।
बुल्लिआ अच्छे दिन तो पिच्छे गए, जब हर से किया न हेत[1]।
अब पछतावा क्या करे, जब चिड़ियां चुग गईं खेत।
बुल्लिया कनक कौडी कामनी, तीनों की तलवार।
आए थे नाम जपन को, और विचे लीते मार।
कनक कौड़ी कामनी, तीनों की तलवार।
आया सैं जिस बात को, भूल गई वोह बात।
इस का मुख इक जोत है, घुंघट है संसार।
घुंघट में वोह छुप गया, मुख पर आंचल डार।
उन को मुख दिखलाए हैं, जिन से इस की प्रीत।
इनको ही मिलता है वोह, जो इस के हैं मीत।
मुंह दिखलावे और छपे, छल बल है जगदीस।
पास रहे हर न मिले, इस को बिसवे बीस[2]।
न खुदा मसीते लभदा[3], न खुदा विच काअबे।
न खुदा कुरान किताबां, न खुदा निमाज़े।
न खुदा मैं तीरथ डिट्ठा, ऐवें पैंडे झागे।
बुल्ला शहु जद मुरशद मिल गया, छुट्टे सभी तगादे।
अरबा-अनासर महिल बनायों[4], विच वड़ बैठा आपे।
आपे कुड़ियां आपे नींगर, आपे बनना एं मापे[5]।

---

1. प्यार 2. बिसवे बीस=यह सही बात है कि जिसको वह दर्शन नहीं देना चाहता, उसे नहीं देता चाहे वह उसके निकट ही क्यों न रहता हो 3. मिलता 4. अरबा-अनासर=पाँच तत्व; पाँच तत्वों से शरीर रूपी महल बना है 5. नींगर=लड़का, दूल्हा, कुड़ी=लड़की, दुल्हिन।

आपे मरें ते आपे जीवें, आपे करें सिआपे।
बुल्लिआ जो कुझ कुदरत रब्ब दी, आपे आप संझापे[1]।
बुल्लिआ धरमसाला धड़वाई[2] रहिंदे, रहिंदे, ठाकुर-द्वारे ठग।
विच मसीतां कुसत्तीए[3] रहिंदे, आशिक रहिन अलग।
बुल्लिआ ग़ैन ग़रूरत साड़ सुट, ते मान खूहे विच पा[4]।
तन मन दी सूरत गवा दे, घर आप मिलेगा आ।
बुल्लिआ वारे जाइए ओन्हां तो, जिहड़े गल्लीं देन परचा।
सूई सलाई दान करन, ते आहरण लैन छुपा।
बुल्लिआ वारे जाइए ओहनां तों, जिहड़े मारन गप-शड़प्प।
कौडी लम्भी देन चा, ते बुगचा घाऊं-घप्प।
बुल्लिआ परसों काफ़र थी गइओं, बुत्त पूजा कीती कल।
असीं जा बैठे घर आपने, ओथे करन न मिलियां गल।
भट्ठ नमाज़ां ते चिक्कड़ रोज़े, कलमे ते फिर गई सिआही।
बुल्ले शाह शहु अंदरों मिलिया, भुल्ली फिरे लोकाई।
बुल्ले नू लोक मत्तीं देंदे, बुल्लिआ तू जा बहु विच मसीती।
विच मसीतां की कुझ हुंदा, जे दिलों नमाज़ न कीती।
बाहरों पाक[5] कीते की हुंदा, जे अंदरों न गई पलीती[6]।
बिन मुर्शिद कामल बुल्लिआ, तेरी ऐवें गई इबादत कीती।
बुल्लिआ हरिमंदर में आए के, कहो लेखा दियो बता।
पढ़े पंडित पांधो दूर कीए, अहिमक लिए बुला[7]।
वहदत दे दरिआ दसेंदे, मेरी वहदत कित वल्ल धाई।
मुर्शिद कामिल पार लंघाया, बाझ तुल्हे सुरनाही[8]।
बुल्ले जाह चल ओत्थे चल्लिए, जित्थे सारे होवन अन्हें[9]।
न कोई साडी कदर पहचाने, न कोई सानूं मंने।

---

1. संझापे=पहचानना 2. डाकू, लुटेरे 3. झूठे, नीच 4. ग़रूरत=अहंकार, अहम् को मारने से अपने आप परमात्मा मिल जायेगा। 5. सफ़ाई 6. गन्दगी 7. अहिमक=मूर्ख; परमात्मा की दरगाह में कर्म देखे जाते हैं, विद्या नहीं 8. तुल्हा=बेड़ी; सुरनाही=मश्क; मुर्शिद ने बिना किसी साधन के पार कर दिया 9. हमें कोई न पहचाने।

बुल्लिआ धर्मशाला विच न रहीं, जित्थे मोमन भोग पवाए।
विच मसीतां धक्के मिलदे, मुल्लां तिओड़ी पाए।
दौलतमंदा ने बूहियां उत्ते, चोबदार बहाए।
पकड़ दरवाज़ा हरि सच्चे दा, जित्थों दुख्ख दिल दा मिट जाए।
अपने तन दी खबर न काई, साजन दी खबर लिआवे कौन।
न हूं खाकी न हूं आतिश, न हूं पानी पौन[1]।
कुप्पे दे विच रोड़ खड़कदा, मूरख आखन बोले कौन[2]।
बुल्ला साईं घट घट रविआ, ज्यों आटे विच लौन।
बुल्ले शाह ओह कौन है, उत्तम तेरा यार।
ओसे के हाथ कुरान है, ओसे गल ज़ुनार[3]।
बुल्लिआ जैसी सूरत ऐन दी, तैसी ग़ैन पछान।
इक नुकते दा फेर है, भुल्ला फिरे जहान।
बुल्लिआ खा हराम ते पढ़ शुकराना, कर तौवा तरक सवाबों[4]।
छोड़ मसीत ते पकड़ किनारा, तेरी छुट्टसी जान अजाबों[5]।
बुल्लिआ जे तूं ग़ाज़ी बनना ए, लक्क बन्ह तलवार।
पहिलों रंघड़ मार के, पिच्छों काफ़र मार[6]।
बुल्लिआ सभ मजाज़ी पौड़िआं, तूं हाल हकीकत वेख।
जो कोई ओत्थे पहुंचिया, चाहे भुल्ल जाए सलाम अलेक[7]।
बुल्लिआ काज़ी राज़ी रिश्वतें[8], मुल्ला राज़ी मौत।
आशिक राज़ी राम ते, न परतीत घट होत।
ठाकुर-द्वारे ठग्ग बसें, भाई-द्वार मसीत।
हरि के द्वारे भिख्ख बसे, हमरी इह परतीत[9]।

---

1. आत्मा तत्वों से ऊपर है 2. शरीर रूपी कुप्पे में आत्मा रूपी 'रोड़' सार-वस्तु है, परन्तु अज्ञानी को इसका ज्ञान नहीं 3. यज्ञोपवीत 4-5. सवाब=पुण्य; तरक=छोड़ दे; अजाबों=दु:खों से, न करने वाले कर्म कर अर्थात् कर्मकाण्ड त्याग कर प्रेम के रास्ते पर चल 6. गाज़ी=धर्म युद्ध करने वाला; रंघड़=नफ़स; काफर=मन; भाव नफ़स को मारने वाला सच्चा गाज़ी है, 7. मजाज़ी=देह का प्यार, हकीकत, सलाम अलेक=मुसलमान आपस में मिलते समय आदर से सलाम कहते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि हकीकत में पहुँचा हुआ इनसान सांसारिक रिवाजों से ऊपर उठ जाता है 8. रिश्वते=रिश्वत पर 9. भिख्ख=भिखारी, परतीत=विश्वास।

वाणी अनुक्रमणिका

अंमा बाबे दी भलिआई	203
अपना दस्स ठिकाना	204
अपने संग रलाईं प्यारे	205
अब क्यों साजन चिर लाइओ रे	206
अब लगन लग्गी किह करीए	27
अब हम गुम हुए	30
अस्सू लिखूं संदेसड़ा	321
अलिफ़ अल्ला नाल रत्ता दिल मेरा	153
आओ फ़कीरो मेले चल्लिए	110
आओ सइओ रल दिओ नी वधाई	207
आ मिल यार सार लै मेरी	208
इक अलिफ़ पढ़ो छुटकारा ए	210
इक टूना अचंभा गावांगी	211
इक नुकता यार पढ़ाया ए	212
इक नुकते विच गल मुकदी ए	213
इक रांझा मैनूं लोड़ीदा	214
इल्मो बस करीं ओ यार	215
इश्क असां नाल केही कीती	218
इश्क दी नवीउं नवीं बहार	219
इश्क हकीकी ने मुट्ठी कुड़े	165
इह अचरज साधो कौन लखावे	220
इह दुख जा कहुं किस आगे	221
उठ जाग घुराड़े मार नहीं	222
उलटी गंग बहाइओ रे साधो	92
उलटे होर ज़माने आए	225
ऐसा जगिया ज्ञान पलीता	226
कत्त कुड़े न वत्त कुड़े	227
कदी आ मिल बिरहों सताई नूं	228
कदी आ मिल यार प्यारिआ	229
क्यों ओहले बहि बहि झाकीदा	230
कर कत्तण वल ध्यान कूड़े	232
कहो सुरती गल्ल काज दी	329
की करदा नी की करदा नी	235
की जाना मैं कोई वे अड़िआ	236
की बदरदां संग यारी	237
कीहनूं ला-मकानी दसदे हो	238
केहे लारे देना एं सानूं	239
गल्ल रौले लोकां पाई ए	172
गुर जो चाहे सो करदा ए	241
घड़िआली दिओ निकाल नी	242
घर में गंगा आई संतो	243
घुंघट चुक ओ सज्जना वे	244
चलो देखिए उस मस्तानड़े नूं	245
चीना ईं छडींदा यार	318
चुप्प करके करीं गुज़ारे नूं	168
छनिछरवार उतावले वेख	333
जिचर न इश्क-मजाज़ी लागे	247
जिस तन लगिआ इश्क कमाल	247
जो रंग रंगिया गूढ़ा रंगिया	249
टुक बूझ कौन छप आया ए	250
ढिलक गई मेरे चरखे दी हत्थी	253
ढोला आदमी बन आया	254
तूहीउं हैं मैं नाहीं वे सज्जनां	255
तेरे इश्क नचाइआ कर थइआ	256

तैं कित वल पाउं पसारा ए	189
दिल लोचे माही यार नूं	257
न जीवां महाराज	258
नित्त पढ़ना एं इस्तग़फ़ार	46
नी कुटीचल मेरा नां	259
नी मैनूं लगड़ा इश्क	51
नी मैं हुन सुनिया	182
पत्तियां लिखां मैं शाम नूं	260
प्यारिया संभल के नेहूं ला	261
प्यारे! बिन मसल्हत उठ जाना	263
पाया है कुछ पाया है	264
पिया पिया करते हमीं पिया होए	265
बंसी अचरज कान्ह बजाई	108
बस कर जी हुन बस कर जी	266
बुल्ला की जाने ज़ात इश्क दी	267
बुल्ला की जाना मैं कौन	37
बुल्ले नूं समझावन आइआं	268
भरवासा की अशनाई दा	269
भावें जान न जान वे	270
भैणां मैं कतदी कतदी हुट्टी	270
मन अटकिउ शाम सुंदर सों	271
माए न मुड़दा इश्क दीवाना	181
मुंह आई बात न रहिंदी ए	272
मुरली बाज उठी अनघातां	274
मेरी बुक्कल दे विच चोर नी	275
मेरे घर आया पिया हमरा	277
मेरे माही क्यों चिर लाया ए	28
मैं उडीकां कर रही	278
मैं क्योंकर जावां काअबे नूं	280
मैं कुसुंबड़ा चुन-चुन हारी	281
मैं गल्ल ओथे दी करदा हां	283
मैं चूढ़ेटड़ी आं	284
मैं पुच्छां शहु दीआं वाटां नी	285
मैं बे कैद मैं बे कैद	200
मैंनूं छड गए आप लद गए	27
मैं विच मैं न रह गई	286
मैं वैसां जोगी दे नाल	288
रहु रहु वे इश्का मारिया ई	292
रांझा जोगीड़ा बन आया	142
रांझा रांझा करदी नी मैं	30
रातीं जागें करें इबादत	295
रैन गई लटके सभ तारे	188
रोज़े हज्ज नमाज़ नी माए	180
लागी रे लागी बल बल जावे	327
वत्त न करसां मान	296
वाह वाह माटी दी गुलज़ार	42
वेखो नी की कर गया माही	296
वेखो नी शहु अनायत साईं	298
सब इक्को रंग कपाहीं दा	298
साईं छप तमाशे नूं आया	299
साडे वल्ल मुखड़ा मोड़ वे	300
सानूं आ मिल यार प्यारिया	301
सुनो तुम इश्क की बाज़ी	302
से वणजारे आए नी माए	303
हजाब करें दरवेशी कोलो	305
हाजी लोक मक्के नूं जांदे	308
हिंदू नहीं न मुसलमान	309
हुन किस थीं आप छुपाइदा	310
हुन मैनू कौन पछाने	312
हुन मैं लखिया सोहना यार	313

सन्दर्भ-ग्रन्थ

उर्दू

नज़ीर अहमद डॉ., '**कलाम बुल्लेशाह**', लाहौर : पाकिस्तान इन्टरनैशनल प्रिंटर्ज़, 1176.

फ़कीर मुहम्मद डॉ., '**काफ़ियाँ बुल्लेशाह**', अमृतसर : आज़ाद बुक डिपो, हाल बाज़ार।

भट्टी, अब्दुल मजीद, '**काफ़ियाँ बुल्लेशाह**', इस्लामावाद : लोक विरसे दा कौमी अदारा, 1975.

रोहतकी, अनवर अली, '**कानूने इश्क**', लाहौर : नवलकिशोर प्रेस।

पंजाबी

गुरदेवसिंह, '**कलाम बुल्लेशाह**', लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1970.

दीवानसिंह और बिक्रमसिंह घुम्मन', '**बुल्लेशाह दा काव्य लोक**', जालन्धर : न्यू बुक कम्पनी, 1976.

पदम, प्यारासिंह, '**साईं बुल्लेशाह**' पटियाला : सरदार साहित्य भवन, 1973.

शर्मा, जी. एल., '**बल्लेशाह विवेचन ते रचना**', अमृतसर : सुन्दरदास एण्ड सन्ज़, 1974.

शीतल, जीतसिंह, '**बुल्लेशाह जीवन ते रचना**', पटियाला : पंजाबी विश्वविद्यालय, 1970.

अंग्रेज़ी

Abdulla Yusuf, **The Holy Quran,** (Text, Tr. & Commentary), Lahore: Mohammad Ashraf, Kashmiri Bazar, 1938.

Ansari, Abdulla Haq & others, ed. **Islam,** Patiala : Panjabi University, 1969.

Behari, Banke, **Sufis, Mystics and Yogis of India,** Bombay : Bhartiya Vidya Bhavan. 1971.

Arberry, A.L., **Sufism,** London : George Allen & Unwin Ltd. 1950.

Arthur Jeffery, **A Reader on Islam,** Netherlands: Monton & Co., Gravenhage, 1962.

Charan Singh, Maharaj, **Saint John : The Great Mystic,** Beas·

Radhasoami Satsang Beas, District Amritsar, 1974, 3rd ed.

Dictionary of Comparative Religions, London : Weildenfield, 1970.

Encyclopaedia of Islam, London : Luzac & Co., (Old & New ed.)

Encyclopaedia of Religion and Ethics, Hastings James, (ed.) Edinburgh : T &T Clark, 1971.

Greenless, Duncan, **Gospel of Islam,** Madras : Theosophical Publishing House, 1951.

Iqbal Ali Shah Sirdar, **Islamic Sufism,** New York : Samuel Weiser Inc., 1971.

Jalal-ud-din Rumi, **Masnawi,** ed. R. A Nicholson, London : Luzac & Co., 1933.

.... Qazi Sajjad Hussain (Tr), Delhi : Sarbrang Kitab Ghar, 1978.

Mohhamad Ali (Maulana), **The Religion of Islam,** New Delhi : S. Chand & Co.

Muhammad Dara Shikoh, **Risala-I-Haq- Numa:** The Compass of Truth (Eng. rendering by Srisa Chandra Vasu) Allahabad : Panini Office, Bhuvaneswari, 1912.

Nicholson, **R.A. The Mystics of Islam,** London : Routledge & Kegan Paul, 1966.

.... **Studies In Islamic Mysticism,** London : University Printing Press, (Reprint) New York, 1976.

.... **The Idea of Personality in Sufism,** Lahore : Sh. Mohammad Ashraf, Kashmiri Bazar, 1970.

Nasrollah S. Fatemi and other, **Sufism,** South Brunswick and New York, 1976.

Puran Singh, **The Spirit of Oriental Poetry**, Patiala : Punjabi University, 1969.

Rama Krishna Lajwanti, **Punjabi Sufi Poets,** New Delhi : Ashaanak Publishers, 1973.

Rizvi, Saiyid Athar Abbas, **A History of Sufism in India,** Munshiram Manoharlal Pvt. Ltd. Vol. I, 1978, Vol II, 1983.

Sharda, S.R., **Sufi Thought,** New Delhi : Munshiram Manoharlal Pvt. Ltd., 1974.

Titus Burckhardt, (Tr. D.M. Matheson), **An Introduction to Sufi Doctrine,** Lahore : Mohammad Ashraf, Kashmiri Gate, 1958.

Subhan John A (Bishop), **Sufism : Saints and Shrines,** Luchnow : The Lucknow Publishing House, 1960.

Valiu Din, Mir, **The Quranic Sufism,** Delhi : Moti Lal Banarsi Dass, 1959.

SAIN BULLEH SHAH

(Hindi)